श्रीहरिः

आशाकी नयी किरणें

(शक्ति, सामर्थ्य और सफलता)

[शिथिल और निर्बल जीवनमें शक्ति, साहस और नवप्रेरणा देनेवाले जीवनपूर्ण निबन्ध]

लेखक—

डा० रामचरण महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०

शक्तिका केन्द्र आपमें है

आप्नुहि श्रेयांसम् अति समं क्राम। (अथर्व० २। ११। ४)

आओ, जिनके बराबर तुम खड़े हो, उनसे आगे बढ़ो। आओ, जो तुमसे बड़े हुए हैं, उनतक पहुँचनेका प्रयत्न करो।

भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है 'अपना उद्धार तुम स्वयं करो।' अपने आपको हीन मत समझो। मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र अथवा शत्रु है। जब मनुष्य अपनी हिंसा स्वयं नहीं करता तभी वह अपनी उन्नति कर सकता है। अतः अपनेको हीन समझना निकृष्टतम हिंसा है।

सच मानिये, आप अनन्त शक्तियों, सिद्धियों और सफलताओंके भंडार हैं। संसारकी उच्चतम योग्यताएँ आपके हिस्सेमें आयी हैं। परमेश्वरने सबको समान उच्च शक्तियाँ प्रदान की हैं। यह बात नहीं कि किसीको कम और किसीको अधिक मिल गयी हों। किसीके साथ रियायत या पक्षपात नहीं किया गया है। परमेश्वरके यहाँ अन्याय नहीं है। समस्त अद्भुत शक्तियाँ आपके शरीर, मन और आत्मामें विद्यमान हैं। आप केवल आलस्यवश उन्हें जाग्रत् और विकसित करनेका कष्ट नहीं करते, कितनी ही शक्तियोंसे कार्य न लेकर आप उन्हें कुंठित कर डालते हैं, जब कि अन्य कुशाग्रबुद्धि व्यक्ति उसी शक्तिको किसी विशेष दिशामें अभ्यास कर परिपुष्ट कर लेते हैं। अपनी शक्तियोंको जाग्रत् तथा विकसित कर लेना या काम न कर उन्हें पंगु बना लेना स्वयं आपके हाथमें है।

स्मरण रखिये, प्रत्येक उत्तम वस्तुपर आपका अधिकार है। यदि आप अपने पुरुषार्थ, उद्योग और सतत अभ्याससे अपने गुप्त सामर्थ्योंको जाग्रत् कर लें, तो निश्चय ही अपने क्षेत्रमें सफल हो सकते हैं। यदि दृढ़ प्रयत्न चलता रहे, तो मनुष्य जिस वस्तुकी आकांक्षा करता है, वह अवश्य प्राप्त कर सकता है। अतएव प्रतिज्ञा कर लीजिये कि आप चाहे जो कुछ हों, जिस स्थिति या जिस वातावरणमें हों, आप एक कार्य अवश्य करेंगे, वह यही कि अपनी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियोंको ऊँची-से-ऊँची बनायेंगे। कहा भी है—

"पौरुषं श्रय, शोकस्य नान्तरं दातुमर्हसि"

हे मानव! पुरुषार्थका आश्रय ले। शोकको अवसर मत दे।

—रामचरण महेन्द्र

एम्० ए०, पी-एच्० डी०

विषय-सूची

श्रीहरिः

आशाकी नयी किरणें

(शक्ति, सामर्थ्य और सफलता)

अपने-आपको हीन समझना एक भयंकर भूल

आपके हृदय-सरोवरमें जिन शुभ या अशुभ विचारों, भद्र या अभद्र भावनाओं या उच्च अथवा निकृष्ट कल्पनाओंका प्रवाह चलता रहता है, वही अप्रत्यक्ष रूपसे आपके व्यक्तित्वका निर्माण करता रहता है। आपका एक-एक विचार, आपकी एक-एक आकाङ्क्षा, एक-एक कल्पना वे दृढ़ आधारशिलाएँ हैं, जो धीरे-धीरे आपके गुप्त मनको बनाया करती हैं।

जैसा अच्छा-बुरा आप स्वयं अपने-आपको मानते हैं, वैसा ही मानस-चित्र आपके हृदयपटलपर अंकित होता है; फिर तदनुरूप गुप्त मनोभाव आपकी नित्यप्रतिकी क्रियाओंमें प्रकट होकर समाजके समक्ष प्रकट होते हैं। अपने विषयमें जैसी आपकी अपनी राय है, वस्तुतः वैसी ही धारणा संसार आपके विषयमें बनाया करता है। विश्वके सर्वोत्कृष्ट महापुरुष अपनी योजनाओं और शक्तिके विषयमें जो कुछ स्वयं अपनेको मानते थे, उसी उत्कृष्ट भावनाके अनुसार उन्होंने संसारमें सफलताएँ प्राप्त की हैं। आपके गुप्त निश्चय एवं प्रिय आदर्श ही आपका पथ उच्च और प्रशान्त करते हैं।

यदि आपके ये आधारभूत विचार या अपने सम्बन्धमें बनायी हुई गुप्त धारणाएँ ही निर्बल होंगी तो निश्चय ही आप निर्बल बनेंगे। आपका आत्मबल, आपका साहस और आपका पौरुष भी कमजोर ही रहेगा। आपकी शक्तियाँ भी उसी अनुपातमें कार्य करेंगी और क्रमशः जीवनके प्रति आपकी वैसी ही मनोवृत्ति भी बनेगी।

दुर्बलता शरीरकी नहीं होती। उसका केन्द्र मनमें रहनेवाले विचार हैं। कमजोर व्यक्ति पहले मनमें अपनेको दीन-हीन विचारोंमें डुबाता है; उसका दूषित मानसिक विष उसकी तमाम उत्पादक शक्तियोंको पंगु बना देता है। उसके चारों ओर इसी प्रकारका निर्बल वातावरण निर्मित होता जाता है। स्वयं अपने ही विचारोंकी क्षुद्रताके कारण वह पतित या दीन-हीन दुःखद अवस्थाको प्राप्त होता है।

तनिक उस मूर्खके मनकी स्थितिका अनुमान कीजिये जो स्वयं अपने विषयमें अपनी योग्यताओं और भाग्यके विषयमें तुच्छ विचार

रखता है, अपने अंदर निवास करनेवाले सत्-चित्-आनन्दस्वरूप आत्माकी बेकदरी करता है। स्वयं अपने विषयमें हीनत्वकी भावना रखनेसे वह मानो सच्चिदानन्द ईश्वरकी निन्दा करता है। ऐसा अदूरदर्शी व्यक्ति स्वयं मानो अपने ही हाथोंसे अपना भाग्य फोड़ता है। संसारभरकी चिन्ताओं, कठिनाइयों एवं कल्पित भयोंको आमन्त्रित करता है।

याद रखिये, अपनेको तुच्छ या नगण्य समझनेवाला व्यक्ति संसारमें कभी कुछ नहीं कर सकता, वह सुस्त और निराश दिखायी देता है; उसे सब अपनेसे बड़े और सशक्त दिखायी देते हैं; वह बोलते भी डरता है। सदा सबके पीछे ही चलता है।

यदि इस प्रकार आप पिछड़ते गये, हीनत्वको पालते-पोसते गये तो आपको कंधेपर उठाकर कोई नहीं ले चलेगा। यदि स्वयं आपने अपने-आपको ठोकर मार दी, तो स्मरण रखिये, प्रत्येक व्यक्ति आपको ठोकर ही लगाता जायेगा, गाली देगा और कुचलता हुआ आगे बढ़ता चलेगा। यह संसार, यह समाज, यह युग हँसते हुएके साथ हँसता है, रोतेको छोड़ देता है। बढ़ते और दौड़तेका साथी है, मरे हुएको फूँककर अथवा दफनाकर शीघ्र ही भुला देता है। दीन-हीनके लिये यहाँ कोई स्थान नहीं है।

मनोविज्ञानका यह सिद्धान्त है कि चिन्तनसे उसी भाव या गुणकी वृद्धि होती है, जिसके विषयमें आप निरन्तर सोचते-विचारते रहते हैं। यदि आप जीवनके कष्टप्रद, कटु, त्रुटिपूर्ण पक्षों या अपनी निर्बलताओंमें विचरण करते रहेंगे तो अपने दोषोंकी ही वृद्धि करेंगे।

कुछ मनुष्योंमें ऐसा विश्वास जम जाता है कि मेरा अमुक दोष, मेरी अमुक त्रुटि, अमुक न्यूनता मेरे पूर्वजोंसे आ गयी है और मैं विवश हूँ। यह गलत विचारधारा है। मनुष्य स्वभाव, गुण और चरित्रको जब, जैसे, चाहे आत्मबलसे नये मार्गोंमें मोड़ सकता है। ऐसी गलत विचारधारा मनसे निकाल देनी चाहिये। कुत्सित कल्पनासे धीरे-धीरे मानसिक रोग उत्पन्न होकर मनुष्यका नाश कर देते हैं।

यदि कोई व्यक्ति आपको दीन-हीन कहता है, तो कभी उसकी बातोंको स्वीकार न कीजिये। उसे नम्र भाषामें किंतु साहस तथा विश्वासके साथ ऐसा जवाब दीजिये जिससे उसे पुनः कभी वैसी ओछी बात मुँहसे उच्चारण करनेका प्रलोभन न हो।

एक बार किसी राजासे एक व्यक्तिने कहा कि 'आपके राज्यमें अमुक पुरुष ऐसा है, जिसका मुख देखनेसे दिनभर भोजन भी नहीं मिलता।' राजाने कहा—

'यदि ऐसा है, तो हम कल सबसे पहले उसका मुख देखकर तुम्हारे कथनकी परीक्षा करेंगे। देखें, हमें भोजन मिलता है या नहीं ?'

राजाने उस अभागेका मुँह देखा। संयोग ऐसा हुआ कि उस दिन राजाको दिनभर भोजन करनेका सुभीता न हुआ।

राजाने सोचा कि यह व्यक्ति सचमुच मन्दभागी है। हमारे राज्यके लिये अहितकर है। ऐसा बदकिस्मत आदमी राज्यमें नहीं रहना चाहिये। अतः राजाने उससे कहा—

'देखो, तुम अभागे हो। सुबह हमने तुम्हारा मुँह देखा तो दिन-

भर हमें भोजन न मिला। यदि तुम हमारे राज्यमें रहोगे, तो न जाने तुम्हारा दर्शन करनेकी सजाके रूपमें कितनोंको भूखा रहना पड़ेगा। हम तुम्हें फाँसीकी सजा देते हैं।'

वह व्यक्ति सजा सुनकर स्तब्ध रह गया। पर वह अपनेको कभी हीन माननेके लिये तैयार नहीं था।

उसने धैर्यसे कहा—'राजन्! मैं तुच्छ नहीं हूँ। अपने मनसे मेरे प्रति यह दुर्भावना निकाल दीजिये। आपका मेरे ऊपर यह मिथ्या आरोप है कि मेरा मुख देखनेसे आपको भोजन नहीं मिला। मुझे आपका मुँह देखकर फाँसीका हुक्म मिला है। मेरी अपेक्षा तो आप तुच्छ और अभागे प्रमाणित हो रहे हैं।'

राजाने इस सूक्तिपर विचार किया, तो संदेहके काले बादल छँट गये। आत्मग्लानिके दिव्य प्रकाशमें उन्हें यह आत्मबोध हुआ कि किसीको तुच्छ नहीं समझना चाहिये। जैसे हम अपने आपको हीन न समझें, वैसे ही हम दूसरोंको भी तुच्छताका भ्रम न करायें, न गलत अनर्थकारी संकेत ही दें।

जिस प्रकार अपनेको दीन-हीन समझना आत्महत्याके समान है, उसी प्रकार दूसरोंको तुच्छताका भ्रम कराना पाप है।

बहुत-से शिक्षकों तथा माता-पिताओंमें यह बुरी आदत होती है कि वे अपने बच्चों तथा शिष्योंकी तनिक-तनिक-सी भूलें निकाला करते हैं और विस्तारसे उनका वर्णन करते हैं। क्रोधसे कहते हैं, तुम यह काम न कर सकोगे। तुममें बुद्धि और प्रतिभा कहाँ है? तुम्हारा जीवन तो बेकार है। तुम तो हमेशा नीचे ही पड़े रहोगे।

इन बुरे संकेतोंका कोमलमति सुकुमार हृदयोंपर या अल्पवयस्क किशोर-किशोरियोंके मनपर बहुत गहरा और हानिकर प्रभाव पड़ता है। बच्चे भावुक होते हैं, बातको पकड़ लेते हैं और उसे अनायास ही नहीं भूल पाते। वह संस्कार गहराईसे उनकी चेतनामें अंकित हो जाता है। परिणामस्वरूप वे निराश होकर बुरा बननेको कटिबद्ध हो जाते हैं अथवा अन्तश्चेतनाके इस कुसंस्कारके कारण निष्क्रिय विद्रोह करते हैं। किसी भी कामको आत्मविश्वासजनित उत्साहसे वे नहीं कर पाते। असफलता, निराशा, कसक और वेदनाके निश्चित चित्र, लोकनिन्दाका मिथ्या भय उनके मनकी दृढ़ता और कार्यकारिणी शक्तियोंको निर्जीव बनाता रहता है। फलतः उनकी शारीरिक, मानसिक, नैतिक शक्तियोंकी उन्नतिका मार्ग अवरुद्ध हो जाता है और जीवन नीरस हो जाता है। यह है आपके द्वारा दूसरेको तुच्छताका भ्रम करानेका दुष्परिणाम। अतएव यह प्रतिज्ञा कर लीजिये कि चाहे कुछ भी हो, आप निन्दाके विषाक्त व्यंग-बाण न चलाकर किसीका भविष्य अन्धकारमय नहीं बनायेंगे।

जैसा तुच्छ, दीन, हीन, निर्बल या घृणित आप अपने-आपको समझते हैं, वैसे ही अलक्षित गुप्त मानसिक वातावरण आपके इर्द-गिर्द निर्मित होता है। वैसी ही आपकी शक्ल-सूरत, मनोभाव, कार्य और चरित्रका निर्माण होता है। वैसे ही चरित्रवाले व्यक्ति आपके चारों ओर आकर्षित होकर आते हैं। आपके गुप्त विश्वासों, संकल्पों, मन्तव्योंसे आपके आन्तरिक जगत्का निर्माण होता है और उन्हींके अनुसार बाहरी परिस्थितियोंका निर्माण होता है। बाहरी

दुनियाँ आपकी आन्तरिक दुनियाँका चित्र मात्र है। आपके मनमें जैसी भावनाएँ घुमड़ती हैं, बाहरी परिस्थितियाँ उन्हींके अनुकूल तैयार होती हैं। दीन-हीन भाव रखनेसे शरीर, मन और आत्माका विकास रुक जाता है। जैसे रक्तमें विषैले प्रभाव बढ़ जानेसे शरीरमें फूट निकलते हैं, उसी प्रकार आत्महीनताके भय, संदेह, अविश्वास, असंतोष, रोष, ईर्ष्या, प्रतिशोध और प्रतिस्पर्धाके विषैले मनोभाव भयंकर रूपमें फूट पड़ते हैं, रक्तमें जिस प्रकार जबतक विष है, तबतक नीरोगता नहीं रह सकती, इसी प्रकार अन्यायमूलक हीनत्वकी दुर्भावनासे मानसिक स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है।

अपना जैसा अच्छा या बुरा मानस-चित्र आप अपने अन्तः-करणमें निर्माण करते हैं, वही आपका यथार्थ रूप हो जाता है। यदि आप अपने-आपको संसारमें निम्न पाते हैं, दब्बू पाते हैं, दूसरोंसे अन्यायपूर्वक दबते हुए पाते हैं, तो इसके उत्तरदायी आप स्वयं ही हैं। बाह्य शक्तियाँ आपके ऊपर इतना प्रभाव नहीं डालतीं, जितना आपके अपने गुप्त मनोभाव, आन्तरिक कल्पनाएँ, मानसिक चिन्तन और विचार डालते हैं। अपने चारों ओर जो वातावरण आप देखते हैं, वह स्वयं आपके मानसिक जगत्की ही प्रतिच्छाया है। दोषी आप स्वयं ही हैं, बाह्य जगत् नहीं। मनमें हीनत्वकी बुरी भावना रखकर ही आपने अपनी यह अधोगति की है, आप इस दयनीय स्थितितक गिर गये हैं और अपनी आत्माका तिरस्कार किया है। इस घृणित दलदलसे आज ही अपनेको निकालिये।

क्या हुआ यदि आपके पास धन नहीं है। संसारके अनेक

महान् व्यक्ति बिना धनके पूज्य हुए। धनका महानतासे बहुत कम सम्बन्ध है। क्या हुआ यदि आपके पास आलीशान मकान, तड़क-भड़कके वस्त्र, आभूषण, मोटर, बँगला आदि विलासके साधन नहीं हैं। संसारमें बहुत कम ऐसे व्यक्ति हैं जिनके पास ये सब हैं। क्या हुआ आप कुरूप हैं। महानता रूपमें नहीं है। यदि बाहरी रूपसे ही कोई ऊँचा उठा करता, तो वेश्याएँ पूज्य होतीं और प्रतिष्ठित समझी जातीं। लेकिन नहीं, यह कभी नहीं हुआ। वे कभी प्रतिष्ठित नहीं समझी गयीं। चरित्रशीलता, विद्वत्ता, ठोस कार्य, परिश्रम, इन्द्रिय-निग्रह आदि ऐसी विभूतियाँ हैं जिनसे महानता प्राप्त होती है और मनुष्य प्रतिष्ठित समझा जाता है।

आचार्य श्रीराम शर्माने सत्य ही लिखा है कि 'मनुष्य अनन्त ईश्वरीय शक्तियोंका महाभण्डार है। उसके अंदर ऐसी महानता संनिहित है, जिसके एक-एक कणद्वारा एक-एक जड-जगत्का निर्माण हो सकता है। जितना बल उसके अंदर मौजूद है, उसका लाखवाँ भाग भी वह अपने प्रयोगमें नहीं ला पाता।'

इस छिपे हुए महाभण्डारमें अगणित, अतुलित रत्न-राशि छिपी पड़ी है। जो कोई इसमेंसे जितना निकाल लेता है, वह उतना ही धनी बन जाता है। परमात्माका अमर राजकुमार अपनेमें अपने पिताकी सम्पूर्ण दिव्य शक्तियोंका सच्चा उत्तराधिकारी है। इच्छा और प्रयत्न करनेपर सब कुछ उसे मिल सकता है। कोई भी दिव्य गुण ऐसा नहीं है, जो वह अपने परम पिताके खजानेसे न पा सके। जितनी सिद्धियाँ अबतक सुनी गयी हैं, या देखी गयी हैं, वे सब बहुत थोड़ी

हैं; अभी इनसे भी अनेकगुनी, अनन्तगुनी शक्तियाँ छिपी पड़ी हैं। जब मनुष्य विकसित होते-होते परमात्माको प्राप्त कर सकता है, स्वयं परमात्मा बन सकता है, तो उन सब महानताओं और शक्तियोंको भी प्राप्त कर सकता है, जो परमात्माके हाथमें हैं। सिद्धियाँ असम्भव हैं, ऐसा कहना भ्रममूलक है। एक-से-एक आश्चर्यजनक चमत्कारी कार्य मनुष्योंके द्वारा हुए हैं, हो रहे हैं और आगे भी होंगे।

आपकी क्षमताओं, आपकी योजनाओं, आपके गुणों और आपकी शक्तियोंकी सम्भावना इतनी ऊँची है कि साधारण बुद्धिसे उनकी कल्पना सम्भव नहीं है। हर एक असम्भव बात मानव-प्रयत्नके द्वारा सम्भव हुई है और आपके सम्बन्धमें भी अवश्य सम्भव हो सकती है।

आप अपनी उन्नति चाहते हैं, दुनियाँमें सम्मान चाहते हैं, आत्मसंतोष चाहते हैं तो गुप्त विचारोंको आजसे ही बदल दीजिये। मानसिक दृष्टिसे अपने हितैषी बनिये अर्थात् अपने विषयमें उच्च नैतिक, बौद्धिक मनोधारणाएँ और नये विश्वास ही जमाइये। दूसरोंके अनिष्टकर संकेतोंको कदापि स्वीकार मत कीजिये। जितना दूसरोंकी बेइज्जती करनेमें पाप है, उससे अधिक अपनी बेइज्जती करनेमें पाप है।

निश्चय जानिये, आप तुच्छ नहीं हैं। आप परमात्मस्वरूप हैं। आप महान् शक्तियोंके स्वामी हैं। आप उन्नतिके लिये बने हैं। आप स्वाधीन हैं। आप उन सिद्धियोंके स्वामी हैं, जो दुनियाँको आश्चर्यमें डालनेवाली हैं।

आपकी अपने प्रति जैसी श्रद्धा है, वैसा ही रूप बननेवाला है। आत्मश्रद्धा ही निर्माण करनेवाली महाशक्ति है। अपनी श्रद्धा अर्थात् अपने विषयमें जैसी भी धारणा है, वही आपके स्वरूपका, आपकी शक्तियोंका, आपके चरित्रका निर्माण करनेवाली है। आत्म-श्रद्धा ही वह आधार है जो आपको ऊँचा उठानेवाली है। अतः खोयी हुई आत्मश्रद्धाको एक बार फिर जगाइये।

भगवान् श्रीकृष्ण गीतामें कहते हैं—

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु॥
सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥

(अध्याय १७, श्लोक २-३)

'मनुष्योंकी वह बिना शास्त्रीय संस्कारोंके केवल स्वभावसे उत्पन्न हुई श्रद्धा सात्त्विकी, राजसी और तामसी—ऐसे तीन प्रकारकी होती है। हे भारत! सभी मनुष्योंकी श्रद्धा उनके अन्तःकरणके अनुरूप होती है। यह पुरुष श्रद्धामय है इसलिये जैसी जिसकी श्रद्धा है, वैसा ही उसका स्वरूप भी है।'

श्रद्धा व्यक्तिके चरित्रको प्रकट करती है। ईश्वरमें, उनकी कृपामें, उनके नामकी शक्तिमें सच्चा, पूर्ण, जीवन्त और अटल श्रद्धा रक्खो। ध्यान करो और अपनेको दिव्य प्रकाशकी ओर अनावृत कर दो।

दुर्बलता एक पाप है

हिंदूधर्ममें तीन शक्तियों—लक्ष्मी, सरस्वती तथा दुर्गामें गुप्त-रूपसे धन, ज्ञान और शारीरिक शक्तियोंकी साधना करनेका गुप्त संकेत छिपा हुआ है। हिंदूधर्ममें शक्तिका बड़ा महत्त्व है। दुर्बल-को मुक्ति नहीं मिलती। जबतक साधक शक्तिमान् न बने, तबतक उसकी मुक्ति नहीं हो सकती। शक्तिमान्‌का ही संसारमें आदर होता हैं। शक्तिकी इतनी उपयोगिता देखकर ही हमारे यहाँ शाक्त-धर्मतक-की स्थापना हुई है। शक्तिकी देवीको महत्त्व प्रदान करनेके लिये उनके नाना नाम रक्खे गये—दुर्गा, देवी, चण्डी, काली, भवानी। उन्हें असुरोंको पराजित करनेवाली देवी माना गया है। वे धर्मकी

स्थापनाके लिये युद्ध करती और अत्याचार, अन्याय, विलास और कामुकताका विनाश करती हैं। तात्पर्य यह कि इन सब रूपोंके विधानमें शक्तिके नाना रूपोंका महत्त्व जनताके हृदयतक पहुँचाया गया है। एक युग था जब भारतवासी सुशिक्षित थे और इन प्रतीकों-का अर्थ समझते थे। खेद है कि अब इनका गुप्त भेद विस्मृत हो गया है और केवल बाह्य पूजाकी भावनामात्र शेष रह गयी है, फिर भी इससे शक्तिका महत्त्व स्पष्ट हो जाता है!

बलवान् बनो! शक्तिकी पूजा करो। जब हम यह सलाह देते हैं, तो हमारा गुप्त मन्तव्य यह होता है कि दुर्बल मत बनो। कमजोर मत बनो। जिधरसे कमजोरी आती है, उधर ध्यान दो और निर्बलताको दूर भगाओ। अपने शरीर, मन, आत्मामें शक्ति भर लो।

संसारमें अनेक पाप हैं। आप गौको मार देते हैं, तो गोहत्या-का जघन्य पाप आपके सिरपर पड़ता है। किसी बच्चेको मार देते हैं, तो बालहत्याके अपराधी होते हैं। किसी ब्राह्मणका वध कर डालते हैं, तो ब्रह्महत्याका पाप लगता है। इसी प्रकार हमारे शास्त्रोंमें अन्य भी अनेक पापोंका उल्लेख है, किंतु एक बहुत बड़ा पाप दुर्बलता है। शरीर, मन या आत्माका कमजोर होना मनुष्यका बहुत बड़ा पाप है। इसका कारण यह है कि दुर्बलताके साथ अन्य भी समस्त पाप एक-एक करके मनुष्यके चरित्रमें प्रविष्ट हो जाते हैं। दुर्बलता सब प्रकारके पापोंकी जननी है।

यदि आप दुर्बल हैं, शरीरसे कृशकाय और मनमें साहसविहीन हैं, तो अपने या अपने परिवार-पड़ोस इत्यादिपर किये गये अत्याचार-

को नहीं रोक सकते, न उसके विरुद्ध आवाज ही उठा सकते हैं । पातकी वह है, जो अत्याचार सहता है; क्योंकि उसकी कमजोरी देखकर ही दूसरेको उसपर जुल्म करनेकी दुष्प्रवृत्ति आती है ।

मनुष्यो ! दुर्बलतासे बचो ! दुर्बलतामें एक ऐसी गुप्त आकर्षण-शक्ति है, जो अत्याचारीको दूरसे खींचकर आपके ऊपर अत्याचार करानेके लिये आमन्त्रित करती है । मजबूत तो हमेशा ऐसे कायरकी तलाशमें रहता है । वह प्रतीक्षा करता रहता है कि कब अवसर मिले और कब मैं अपना आतंक जमाऊँ । दूसरे शब्दोंमें यदि आप निर्बल न रहें, तो सबलको अत्याचार करनेका प्रलोभन ही न हो, बेइन्साफीको पनपनेका अवसर ही प्राप्त न हो । जहाँ प्रकाश नहीं होता, वहाँ अन्धकार अपना आसन जमाता है । इस प्रकार जहाँ निर्बलता, अशिक्षा, अंधरूढ़िवादिता या किसी प्रकारकी कमजोरी होती है, वहींपर अत्याचार और अन्याय पनपता है ।

शक्ति ऐसा तत्त्व है, जो प्रत्येक क्षेत्रमें अपना अद्भुत प्रकाश दिखाता है और संसारको चमत्कृत कर देता है । व्यापार, शिक्षा, स्वास्थ्य, योग्यता—चाहे किसी क्षेत्रमें आप शक्तिका उपार्जन प्रारम्भ कर दें, आप प्रतिभावान् बन जायँगे ।

एक विद्वान्‌के ये वचन अक्षरशः सत्य हैं—'शक्तिकी विद्युत्-धारामें ही बल है कि वह मृतक व्यक्ति या समाजकी नसोंमें प्राण संचार करे और उसे सशक्त एवं सतेज बनाये ।'

शक्ति एक तत्त्व है, जिसका आह्वान करके जीवनके विभिन्न

विभागोंमें भरा जा सकता है और उसी अङ्गमें तेज और सौन्दर्यका दर्शन किया जा सकता है । शरीरमें शक्तिका आविर्भाव होनेपर देह कुन्दन-जैसी चमकदार, हथौड़े-जैसी गठी हुई, चन्दन-जैसी सुगन्धित एवं अष्टधातु-सी नीरोग बन जाती है । बलवान् शरीरका सौन्दर्य देखते ही बनता है । मनमें शक्तिका उदय होनेपर साधारण-से-साधारण मनुष्य कोलम्बस, लेनिन, गाँधी-जैसी हस्ती बन जाते हैं और बड़े-बड़े महापुरुषोंके समान असाधारण कार्य अपने मामूली शरीरोंद्वारा ही करके दिखा देते हैं । बुद्धिका बल महान् है । तनिक-से बौद्धिक बलकी चिनगारी बड़े-बड़े तत्त्वज्ञानोंकी रचना करती है और वर्तमान युगमें वैज्ञानिक आविष्कारकी भाँति चमत्कारिक वस्तुओंमें अनेकानेक वस्तुएँ निर्माण कर डालती है । अधिक बलका थोड़ा-सा प्रसाद हमारे आस-पास चकाचौंध उत्पन्न कर देता है । आत्माकी मुक्ति भी ज्ञान, शक्ति एवं साधनासे होती आयी है । अकर्मण्य और निर्बल मनवाला व्यक्ति आत्मोद्धार नहीं कर सकता । तात्पर्य यह है कि लौकिक और पारलौकिक सब प्रकारके दुःखद्वन्द्वोंसे छुटकारा पानेके लिये शक्तिकी ही उपासना करनी पड़ेगी ।

शक्तिमान् बनिये । जीवनके हर क्षेत्रमें लोग पुकार-पुकारकर आपको शक्ति अर्पित करनेकी सलाह दे रहे हैं । जो जिस मात्रामें शक्ति प्राप्त कर लेता है, वह उतना ही समुन्नत समझा जाता है । उन्नतिका रहस्य शक्ति-संचयका ही मार्ग है ।

भगवान् शंकराचार्यके ये वचन स्मरण रखिये, 'शक्तिके बिना (अर्थात् बलवान् बने बिना) शिवका स्पन्दन नहीं होता । शिवकी

उन्नति देहकी सहायतासे होती है, वैसे ही शिव-तत्त्वका स्पन्दन शक्तिद्वारा होता है । यदि भक्तिके बिना ईश्वर नहीं, तो शक्तिके बिना शिव नहीं मिलते—अर्थात् कल्याणका मार्ग प्राप्त नहीं होता । ब्रह्मप्राप्तिमें—आत्मिक उन्नतिमें भगवती आद्या-शक्तिकी सहायता आवश्यक है ।'

मित्रो ! आपके शरीरमें, मनमें, आत्मामें उच्च कोटिकी शक्तियाँ भरी पड़ी हैं । सतत परिश्रमसे इनका विकास कीजिये । ये अतीव आवश्यक हैं, ये आपकी वैयक्तिक सम्पत्तियाँ हैं । पर इनके अतिरिक्त दो शक्तियाँ और हैं, जिनकी आपको विशेष आवश्यकता है—(१) अर्थ-शक्ति, (२) संगठन-शक्ति । हम जिस युगमें रह रहे हैं, वह रुपये-पैसेका युग है । पैसेके बलसे समस्त उन्नतिके साधन सुख-समृद्धि इस भूलोकमें मिल सकती है । संगठन-बलमें गजबकी ताकत है । आज जो प्रान्त, जो देश संगठित है, वही शक्तिशाली है । एक-एक सूत मिलकर मोटी मजबूत रस्सी बनती है, एक-एक बूँदसे तालाब बनता है, एक-एक पैसेके संग्रहसे मनुष्य सम्पत्तिमान् बनता है; एक-एक व्यक्तिका बल संगठित होकर ग्यारह मनुष्योंका बल बन जाता है । अतः सच्चे दिलसे, सच्चे कामोंके लिये, सद् उद्देश्यों-की प्राप्तिके लिये संगठित हूजिये । मित्रताएँ कायम कीजिये और जितने अधिक लोगोंसे सम्भव हो एकता, मेल या सम्पर्क स्थापित कीजिये । बस, आप उसी अनुपातमें शक्तिशाली बन जायँगे । मेलसे एक ऐसा केन्द्र स्थापित होता है, जिसमें सब एक दूसरेको सेवा, सहयोग और सहायता देते हैं । इस पारस्परिक आदान-प्रदानसे

मनुष्यकी शक्ति बहुत बढ़ जाती है ।

आचार्य श्रीराम शर्माजीके ये शब्द बहुमूल्य हैं—'जो व्यक्ति किसी विशेष दिशामें महत्त्व प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें चाहिये कि अपने इच्छित मार्गके लिये शक्ति-सम्पादन करें । सच्ची लगन और निरन्तर प्रयत्न—यही दो महान् साधनाएँ हैं, जिनसे भगवती शक्तिको प्रसन्न करके उनसे इच्छित वरदान प्राप्त किया जा सकता है । आपने अपना जो भी जीवनोद्देश्य बनाया है, उसे पूरा करनेमें जी-जानसे जुट जाइये । सोते-जागते उसीके सम्बन्धमें सोच-विचार करते रहिये और आगेका मार्ग तलाश करते रहिये । परिश्रम, परिश्रम, घोर परिश्रम आपकी आदतमें शामिल होना चाहिये । स्मरण रखिये, अपना कोई भी मनोरथ क्यों न हो, वह शक्तिद्वारा ही पूर्ण हो सकता है । इधर-उधर बगलें झाँकनेसे कुछ नहीं हो सकता ।'

वेदोंने शक्ति-उपार्जनका दिव्य संदेश दिया था, जो आज भी इस भारतभूमिके कण-कणसे गुंजरित हो रहा है ।

यजुर्वेदमें कहा गया है—**'क्षिपो मृजन्ति'** अर्थात् पुरुषार्थी लोग ही पवित्र होते हैं और पवित्र कार्य करते हैं ।

स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसः । (शु० य० २५ । २१)

अर्थात् बलवान् अवयवोंद्वारा ही ईश्वरकी उपासना करेंगे ।

आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्यो अतिव्याधी महारथो जायताम् । (शु० य० २२ । २२)

अर्थात् 'हमारे राष्ट्रमें शूरलोग उत्तम प्रभावशाली वीर बनें !'

उग्राय तपसे सुवृत्तिं प्रेरय ।

'श्रेष्ठ बलके लिये उत्तम भाषण और उत्तम कर्म करो ।'

आप्नुहि श्रेयांसमति समक्राम ।

'हे मनुष्य ! अपने समान लोगोंमें आगे बढ़ और श्रेयको प्राप्त कर ।'

असश्चतः शतधारा अभिश्रियः (ऋ० ९ । २१ । २७)

'सतत परिश्रम करनेवालेको सैकड़ों प्रवाहोंसे यश प्राप्त होता है ।'

दृते दृꣳह मां, ज्योक्ते संदृशि जीव्यासम् । ज्योक्ते संदृशि जीव्यासम् ॥ (शु० य० ३६ । १९)

'हे समर्थ परम दृढ़ परमेश्वर ! मुझे दृढ़ बना दे, जिससे मैं तेरे संदर्शनमें, तेरी ठीक दृष्टिमें चिरकालतक जीता रहूँ । तेरे सम्यक् दर्शनमें दीर्घ आयुतक जीता रहूँ ।'

अन्तमें एक बार फिर हम आपको यही सलाह देंगे कि इस संसारमें आप जहाँ हों, जिस परिस्थितिमें हों, जीवनके किसी क्षेत्रमें अग्रसर हो रहे हों उसी प्रकारकी शक्ति अर्जन कीजिये । इस संसारमें दुर्बलता सबसे बड़ा महा घोर पाप है । दुर्बलको सब कोई दबाता है । कमजोर सर्वत्र नारकीय यन्त्रणाएँ भोगते देखे जाते हैं । यहाँतक कि निर्बलकी मुक्तितक नहीं होती—

'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः' (मु० उ० ३ । २ । ४)

'यह आत्मा निर्बलोंको प्राप्त नहीं होता ।'

आप और आपका संसार

दार्शनिक स्पिनोजाने मनुष्यकी तुलना रेशमके कीड़ेसे की है। उनका कथन है कि जिस प्रकार रेशमका कीड़ा अपने चारों ओर एक छोटा-सा घर बुनता है और स्वयं उसके मध्यमें रहता है, उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अपने इर्द-गिर्द विचारों, मान्यताओं, विश्वासों तथा शुभ-अशुभ भावनाओं और कल्पनाओंका एक अलक्षित मानसिक वातावरणका निर्माण करता है।

चाहे बाहर नगर और समाज कैसा ही क्यों न हो, व्यक्तिका यह मानसिक भावात्मक और काल्पनिक संसार छायाकी तरह सदा-सर्वदा उसके चारों ओर लगा रहता है। जानकर अथवा अनजानमें वह सदैव इसी संसारमें सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, कसक-पीड़ा, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, शान्ति या असंतोषका अनुभव किया करता है।

मनुष्यके चारों ओर अलक्षित और सतत प्रभावित करनेवाला यह वातावरण क्या है? क्या हमारे घर-बार, वस्तुएँ, व्यक्ति अथवा नाना निकट सम्बन्धी इसका निर्माण करते हैं?

नहीं, हमारे मनमें रहनेवाले विचार, मान्यताएँ, जीवनसम्बन्धी मूल्य, हमारा आत्मबल और हमारे निश्चय ही वे मानसिक सूक्ष्म तत्त्व हैं, जो हमारे अलक्षित वातावरणमें विचरण कर हमारे संसारका निर्माण करते हैं ।

मनुष्य स्वयं ही इस अलक्षित वातावरणका स्रष्टा है । वह एक ऐसा कलाकार है, जो चुपचाप बिना जाने-पहिचाने अपने चारों ओर सुखद, उत्साहप्रद अथवा दुःखद, परितापमय मानसिक वातावरणकी सृष्टि किया करता है । मानसिक वातावरणका प्रभाव रहस्यमय होता है । वह न वायुमें, न आकाशमें, न पातालमें, न घर-बार अथवा आसपासमें अथवा आसपास निवास करनेवाले व्यक्तियोंमें है, उसका केन्द्र प्रत्येक व्यक्तिके मस्तिष्कमें है, आत्मामें है ।

कार्ट राइट नामक विद्वान्ने लिखा है—'हम सबके मनके भीतर ऐसी शक्ति है, जो कष्ट-क्लेशोंको दूर करती है; आशा-निराशा, उत्साह एवं वेदना देती है ।'

स्वेट मार्डन लिखते हैं—'मनके हीन विचारोंके कारण ही हम दीन बने रहते हैं । दरिद्रतासे अधिक बुरा हमारा दरिद्रतापूर्ण विचार है; क्योंकि यह चारों ओर एक कुत्सित वातावरणकी सृष्टि करता है ।

दैवी शक्ति जो हमारे ध्येयोंको निर्मित करती है, हमारे भीतर है और वह हमारी सत्, चित्, आनन्दमय आत्मा है । हमारा भाग्य हमारे विचारोंके साथ परिवर्तित होता रहता है । विचारोंको स्वेच्छानुसार बदलकर हम जैसे चाहें बन सकते हैं ।'

तो क्या हम अपने संसारका स्वयं निर्माण कर सकते हैं ?

अवश्य। आप स्वयं अपने चारों ओर रहनेवाले इस अलक्षित मानसिक संसारके निर्माता हैं। जब चाहें यह कार्य प्रारम्भ कर सकते हैं। इस परिवर्तनका प्रारम्भ आप मनमें शुभ संकल्प और अपने प्रति हितैषी भावनाओंसे धारण करें। वेदमें कहा गया है—

'यद्भद्रं तन्न आसुव'—जो शुभ हो उसीकी हमारे लिये सृष्टि करें। **'श्रद्धे श्रद्धापयेह नः'**—श्रद्धे! हमें श्रद्धा-सम्पन्न बनाओ। हम अपने मनको अपवित्र, अहितैषी घातक विचारोंसे रोकें और आत्मबलसे पूर्ण पवित्र हितैषी, उन्नति और प्रेमपूर्ण सद्भाव धारण करें।

'सत्यपूतां वदेद्वाचं'—वाणीको सत्यद्वारा शुद्ध करके बोलें। दूसरोंसे ऐसा ही व्यवहार करें

अपने विषयमें हितैषी भावनाएँ रक्खें। अपनेको ईश्वरका दिव्य रूप समझें, अपनी निन्दा या अपमान न करें; क्योंकि अपनी निन्दाका दूसरा मतलब अपनी आत्मा ईश्वरका अपमान है।

आपके विचार जितने शुभ, सात्त्विक, आशावादी होते चलेंगे और हितैषी भावनाओंसे जितने स्निग्ध बनेंगे, उतना ही उत्तम आपका संसार होगा।

आपका अधिक बल, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष और दूसरोंसे प्रतिशोध लेनेकी कटु भावनामें क्षीण होता है। यह न केवल अस्वास्थ्यकर और हानिकर है, प्रत्युत आपके संसारको भी रोग-शोकमय बनानेवाला है। तेज और मुखकान्तिको नष्ट करनेवाला है। अतः ईर्ष्या, द्वेष, निन्दा, घृणा-जैसे विषैले तत्त्वोंको मनमें स्थान न दें।

अपने वास्तविक स्वरूपको समझिये

मानव-जगत्का एक विशाल भाग इस कारण अधोगतिको प्राप्त हो रहा है कि उसे जो कार्य सम्पादन करना चाहिये, वह नहीं करता। अहो ! शोक है कि हम पूर्ण परिपक्व और बुद्धिमान् होकर भी उस मार्गका अनुसरण नहीं करते, जो कल्याणकारी है और जो जीवनमें सुखकी वृद्धि कर सकता है। थोड़े-से मोहके चक्करमें फँसकर हम अयोग्य कार्योंकी ओर प्रेरित होते हैं, उन्हें ही वास्तविक उन्नतिका मूल समझ अपने वास्तविक स्वरूपको भूले रहते हैं। माया-मोहका जाल हमें अविवेककी गलियोंमें इधर-उधर भटकाया करता है। इसी भोग और ऐश्वर्यमें हम निज जीवनकी इतिश्री कर देते हैं। कभी गहराईमें उतरकर आत्मतत्त्वपर विचार नहीं करते। उफ़ ! यह हमारी कैसी मूढ़ता है !

अनेक व्यक्ति इसी कारण उन्नति नहीं कर सके; क्योंकि उन्होंने अपने-आपको समझनेका प्रयत्न नहीं किया। वे स्वयं ही एक विषम प्रहेलिका बने हुए हैं। उन्होंने स्वयं अपनेको

ऐसे बन्धनोंसे जकड़ रक्खा है कि इधर-उधर हिलने-डुलने, फैलनेके सब अवसर खो दिये हैं। वे अपने चारों ओर ऐसी दीवारें खड़ी किये हुए हैं कि उन्हें उन्मुक्त वायु उपलब्ध नहीं होती। मायाकी सृष्टि करनेवाली महान् शक्तिने प्रत्येक व्यक्तिके अन्तरमें एक ऐसी निगूढ़ इच्छाकी रचना की है, जिसका अनुसरण करनेसे वह अपने लक्ष्यपर शीघ्र पहुँच सकता है। यदि हम अत्यन्त एकाग्र होकर श्रद्धासहित इसे श्रवण करनेका प्रयत्न करें तो यह ईश्वरीय इच्छा स्फुरणके रूपमें हमें अवश्य प्रतीत होगी। सम्पद्में, विपद्में तथा प्रतिकूलताओंसे आबद्ध रहनेपर हमारी रक्षा करेगी और सदा-सर्वदा सन्मार्ग प्रदर्शित करती रहेगी। अन्तरात्माकी दिव्य प्रेरणामें बड़ा भारी बल है; जो भौतिक अवस्थाओंकी किञ्चित् भी परवा नहीं करता। जो व्यक्ति संसारके भोग-विलासकी प्रेरणाका तिरस्कार कर परमेश्वरको सर्वत्र उपस्थित मानता हुआ अन्तःप्रेरणाके मार्गपर आरूढ़ रहता है, उसे सहारेके लिये किसीका हाथ पकड़ने या टेकनेके लिये लाठी माँगनेकी आवश्यकता नहीं है।

सफल जीवन व्यतीत करनेके अभिलाषीको तीन तत्त्वोंका अध्ययन करना अपेक्षित है। ईश्वरको प्रत्यक्ष करनेके हेतु उसे प्राचीन धर्मग्रन्थ, सृष्टि और अध्यात्मकी खोज करनी चाहिये। अपने-आपको पहचाननेके लिये उसे अपनी आत्मा, मनोवृत्तियाँ, स्वभाव तथा विचारोंका निरीक्षण करना चाहिये तथा अपने निकटवर्ती व्यक्तियोंसे स्नेह करनेके लिये समभाव उत्पन्न करनेवाली पुस्तकोंका पठन-पाठन करना चाहिये। इस प्रकारके अध्ययनसे आशा, विश्वास तथा उत्कृष्ट मानस स्थिति प्रकट होगी।

इन तीनों विषयोंमें अपना अध्ययन सबसे अधिक महत्त्वका है। इसी कारण प्राचीन ग्रीक लोगोंने Know Thyself (अपने आपको पहचानो)—इसपर विशेष जोर दिया है।

जीवनमें अनेक बार ऐसे विषम अवसर उपस्थित होते हैं, जब मनुष्य यह निश्चय नहीं कर पाता कि वह क्या करे। किस ओर प्रवृत्त हो। ऐसे अवसरपर अन्तरात्माकी प्रेरणा ही सच्चे पथ-प्रदर्शकका कार्य करती है। जो मूढ़ व्यक्ति अपनी इस दिव्य शक्तिको जाग्रत् नहीं करते वरं अन्तर्ध्वनि होते ही उसका गला घोंट देते हैं, उनमें यह निस्तेज हो जाती है। ऐसे मनुष्यका कोई स्वतन्त्र विचार नहीं होता, उनका विकास भी रुक-सा जाता है। ऐसे लोग साधारणतः खा-पकाकर ही जीवन-लीला समाप्त कर दिया करते हैं। वे उसी नारकीय स्थितिमें पड़े रहते हैं, जिसमें वे जन्म लेते हैं।

हे अविनाशी आत्माओ! तुम्हारे जीवनका ध्येय केवल खा-पकाकर जीवनकी इतिश्री कर देना ही नहीं है। तुम इस अस्थि-चर्मयुक्त शरीरमें प्रतीत होनेवाले क्षणिक आवेशोंके झमेलोंमें फँसे रहनेके लिये नहीं बने हो। तुम इस चञ्चल एवं अस्थिर मनकी छीना-झपटीमें लगे रहनेके हेतु पृथ्वीपर नहीं आये हो। तुम्हारा जन्म स्वेच्छानुसार निरङ्कुश होकर विषय-वाटिकामें विचरनेके लिये नहीं हुआ है। तुम अपनी इन्द्रियोंके दास नहीं हो। तुम्हारी आदतें तुम्हें अपने हाथका खिलौना नहीं बना सकतीं। निम्न प्रवृत्तियोंमें इतनी शक्ति नहीं कि वे तुम्हारे ऊपर शासन कर सकें। प्रकृतिने तुम्हें यथेष्ट साधन अपनी अभीष्ट-सिद्धिके लिये

प्रदान किये हैं । तुम जितना उच्च बनना चाहो, बन सकते हो । अपनेको दीन-हीन माननेसे तुम अपने उज्ज्वल भविष्यको कालिमामय बनाते हो । उठो, जाग जाओ और निज महत्ताको पहचानो । अपना अध्ययन करो । मनसे अलग होकर निरन्तर अपने मनके कार्योंको सूक्ष्म रीतिसे देखो । वह मनकी उछल-कूद ही तुम्हें अस्त-व्यस्त करती है—

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥

(गीता ६ । ३४)

विचारोंको उत्पन्न करनेवाली कल्पनाशक्ति मनकी सर्जनशक्ति है—यदि तुम्हें उत्कृष्ट, स्वस्थ एवं दिव्य विचारका सर्जन करना है और विशेष विशाल वस्तुओंकी रचना करनी है, तो तुम्हें अपनी कल्पनाशक्तिको निर्मल, हितकारक तथा विस्तृत बना लेना चाहिये । जब तुम स्वयं अपने विषयमें खोज करने निकलो तो आत्मतत्त्वको समझनेमें, खोजनेमें और प्राप्त करनेमें तत्परतापूर्वक जुट जाओ । तुम दैवी अंशयुक्त सत्, चित्, आनन्द हो । अपने असली स्वरूपको हृदयङ्गम करो । निष्फलता, आधि-व्याधियाँ अधिकांशमें निम्न विचारों, दूषित कल्पनाओंके ही फल हैं । अतएव अपने वास्तविक स्वरूपकी खोज करते समय कल्पनाशक्तिको पूर्णरूपसे निरामय रखनेके हेतु तुम्हें भय, क्रोध, तिरस्कार, शङ्का तथा अन्य दुविधामय मानसिक स्थितियोंका परित्याग करना होगा ।

तुम अकेले हो, पर शक्तिहीन नहीं !

पक्षी फल न रहनेपर वृक्षको छोड़ देते हैं, सारस जल सूख जानेपर सरोवरका परित्याग कर देते हैं, मृग दग्ध वनको छोड़कर भाग जाते हैं; वेश्या मनुष्यको तभीतक प्रेम करती है जबतक उसके पास धन रहता है, मन्त्रीगण श्रीहीन राजाको छोड़ देते हैं, आपको अपना मित्र कहनेवाले व्यक्ति आपत्तिकाल आनेपर हाथ झाड़कर दूर खड़े हो जाते हैं। परिवारके व्यक्तितक जब उनका स्वार्थ सिद्ध नहीं होता, तो मनुष्यका परित्याग कर देते हैं। सब लोग सांसारिकता, मिथ्या प्रदर्शन तथा झूठे सम्बन्धोंमें स्वार्थवश प्रेम करते हैं। वास्तवमें कौन किसका प्रिय है ? तुम अकेले हो।

कितने ही व्यक्ति इस संसारका यह अकेलापन न जानकर दूसरोंसे कटु या असहानुभूतिपूर्ण व्यवहार पाकर बड़े दुखी होते हैं। माता-पिता अपने पुत्र-पुत्रियोंकी गलतियाँ गिनाते हैं, उपदेशक अपने श्रोताओंकी, दूकानदार अपने ग्राहकोंकी खराबियाँ बखानते हैं, लेकिन संसारके अकेलेपनका अनुभव नहीं करते। जो व्यक्ति दूसरोंसे अनावश्यक झूठी आशाएँ लगाये रहते हैं, वे निराश होकर अन्तमें संसारकी कठोरताका अनुभव करते हैं।

अमुककी हमने पढ़ाई करायी थी, वह अब हमारी सहायता करेगा, अमुकसे हमें ऋण प्राप्त हो जायगा, अमुक चीज हमने माँगी हुई दी है, अब वह दुगुनी वापस आ जायगी। ये आशाएँ प्रायः पूर्ण नहीं होतीं।

लोग अपने दुःखों, तकलीफों तथा कठिनाइयोंके कटु अनुभव दूसरोंको सुनाते नहीं थकते। अपने ये अनुभव सुनाकर वे यह आशा लगाये रहते हैं कि दूसरे उनसे सहानुभूति प्रदर्शित करेंगे, रुपये-पैसेसे सहायता करेंगे, पुत्रीके लिये वर खोजनेमें मदद कर देंगे। ऐसी आशाएँ संसारकी कठोर चट्टानोंपर टकराकर चूर-चूर हो जाती हैं।

किसे पड़ी है कि आपके आँसू पोंछे। किसे आपकी हृदय-विदारक यन्त्रणाएँ सुननेका अवकाश है? किसके पास इतना रुपया है कि आकर आपके ऋणको उतार देगा और आपकी जीविकामें सहारा लगायेगा! कौन आपकी पुत्रीके लिये वर तलाश करनेका सरदर्द मोल लेगा? कौन बैठे-बिठाये व्यर्थ आपकी समस्याओंमें उलझेगा?

आप अकेले हैं! आप कहेंगे कि आपके पिता, माता, पुत्र, भाई, बहिन, परिवार, कुटुम्बी तथा इष्ट-मित्र हैं, फिर हम क्योंकर अकेले हैं?

आपका तर्क ऊपरी दृष्टिसे ठीक है। तत्त्वकी तहमें जाइये तो आपको धीरे-धीरे उनका स्वार्थ दिखायी देने लगेगा। जबतक आपके द्वारा उनकी स्वार्थ-सिद्धि होती है, ऊपरी रिश्ता चलता है। जिस दिन यह स्वार्थ-रज्जु टूट जायगी, सब अलग हो जायँगे।

मनुष्यका अकेलापन इस बातसे प्रकट होता है कि वह इस पृथ्वी-पर अकेला ही आया है। अकेला ही माताकी गोदमें पलता रहा और बड़ा हो गया। बड़ा होनेपर उसे भाई-बहिन, माता-पिता-परिवारका ज्ञान हुआ, किंतु फिर भी वह अनेक दृष्टियोंसे अकेला ही रहा।

अपने स्वास्थ्य, विचार, चुनाव इत्यादिके विषयमें वह अकेला है। जब आपके स्वास्थ्यमें विकार होता है तो कौन आकर अपना अङ्ग उधार दे सकता है? आपके कान, नाक, मुँह, हाथ, पाँव बेकार होनेपर कौन उनकी जगह दे सकता है? आपके पाप, पुण्य, उत्कर्ष या सत्कार्योंका भार आपको छोड़कर किसके अन्तःकरणपर हो सकता है? आप जो असत्य भाषण करते हैं, उसके द्वारा होनेवाले मिथ्याचारका कौन उत्तरदायी है? हठात् उत्तेजना या प्रमादवश जब आप कुछ नासमझीका कार्य कर बैठते हैं, तो उसके द्वारा आप-पर आयी हुई आपत्तियोंके केवल आप ही जिम्मेदार हो सकते हैं।

अपने पापमें आप अकेले हैं। अपने पुण्योंका सुख भोग करनेमें भी आप अकेले हैं। अपने जीवनके दुःख, तकलीफ, लाभ, हानि, ज्ञान, अज्ञान, धन, गरीबी, बन्धन, मोह, स्वतन्त्रता, रोग, शोक, विवेक-दृष्टि, मन्दमतिके आप अकेले ही जिम्मेदार हैं। दूसरोंको अपनी असफलताओंका कारण मत समझिये। स्वयं आपकी बुद्धि, मनोविकार, सूझ-बूझ ही आपकी सफलता-असफलताके लिये जिम्मेदार है।

यदि आप अकेले हैं तो घबराने, दिल छोटा करने, निराश होनेकी आवश्यकता नहीं है। अकेले हैं, तो स्वयं अपने ऊपर भरोसा रक्खा कीजिये। अपने कार्यको दूसरेपर मत छोड़िये। 'मैं स्वयं ही इस कार्यको कर सकता हूँ। मेरे अंदर परमेश्वरकी शक्तियाँ जाग्रत् हैं। मैं ईश्वरीय नियमोंके अनुसार ही विश्वमें निज कर्तव्यकी पूर्ति कर रहा हूँ। मेरी शक्तियाँ असीम हैं।' इस भावनाको दृढ़ करनेकी आवश्यकता है।

तुम अकेले ही सब कुछ कार्य सफलतासे पूर्ण करनेमें सम्पन्न हो; तुम्हें किसीका आश्रय नहीं खोजना है। अनेक जन्मोंके उपरान्त इस परम पुरुषार्थके साधनरूप नरदेहको, जो अनित्य होनेपर भी परम दुर्लभ है, पाकर धीर पुरुषको उचित है कि स्वयं आगे बढ़ता रहे। दूसरोंका आश्रय ग्रहण करनेके लिये किसीकी प्रतीक्षा न करे।

तुम अकेले होते हुए भी परमेश्वरकी शक्तियाँ लेकर अवतरित हुए हो। तुम जगत्‌में व्याप्त हो। तुम ही जगत् हो, तुम्हीं ब्रह्म हो। तुम अजर, अमर, आत्मा हो; सच्चिदानन्दरूप हो, परमेश्वर तुममें बोलता है। तुम्हारे हृदय-मन्दिरमें विराजता है। प्रत्येक कीर्तनमें तुम्हारी प्रभुसे तदाकारवृत्ति होती है और प्रत्येक वृत्तिमें तुम्हें सच्चिदानन्दका अनुभव होता है। धैर्य जिसका पिता है, क्षमा माता है, नित्य शान्ति स्त्री है, सत्य पुत्र है, दया भगिनी है तथा मनःसंयम भ्राता है, ज्ञानामृत जिसका भोजन है, वह अकेला होकर भी निर्भय है, शक्तिमान् है।

तुम अकेले हो, पर शक्तिहीन नहीं! हे अविनाशी आत्माओ! तुम तुच्छ नहीं हो; कायर नहीं हो; तुम्हें कोई सता नहीं सकता। तुम्हें किसी अशक्तताका अनुभव नहीं करना है, कुछ माँगना नहीं है। तुम्हें आदिकर्ताने उन सभी शक्तियोंसे विभूषित करके पृथ्वीपर भेजा है, जिनके बलपर तुम आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकते हो?

'तुम अनन्त शक्तिशाली हो, तुम्हारे बलका पारावार नहीं। जिन साधनोंको लेकर तुम अवतीर्ण हुए हो वे अचूक ब्रह्मास्त्र हैं।

इनकी शक्ति अनेक इन्द्रबलोंसे अधिक है । सफलता और आनन्द तुम्हारे जन्मजात अधिकार हैं । उठो ! अपनेको, अपने हथियारोंको, भलीभाँति पहचानो और बुद्धिपूर्वक कर्तव्यमार्गमें अग्रसर होओ। दूसरे-की सहायता या प्रोत्साहनकी प्रतीक्षा मत करो । । दूसरा कोई तुम्हारी सहायता नहीं करेगा । तुम स्वयं कल्पवृक्ष हो, पारस हो, अमृत हो और सफलताकी साक्षात् मूर्ति हो । तुम शरीर नहीं हो; जीव नहीं हो; वरं आत्मा हो, परम आत्मा हो, तुम इन्द्रियोंके गुलाम नहीं हो; गंदी वासनाएँ तुम्हें मजबूर नहीं कर सकतीं । पाप और अज्ञानमें इतनी शक्ति नहीं कि वे तुम्हारे ऊपर शासन कर सकें । अपनेको दीन-हीन, पतित, पराधीन और दूसरोंपर आधारित मानना एक प्रकारकी आत्महत्या है । हे महान् पिताके महान् पुत्रो ! अपनी महानताको पहचानो ! उसे समझने, खोजने और प्राप्त करनेमें तत्परतासे जुट जाओ ।

अपनी वास्तविकताको पहचानना, अपनी कमजोरियों तथा शक्तियोंसे परिचित हो जाना ही स्वाधीनताका मार्ग है । गीताका यह वचन स्मरण रक्खो—

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥

(६ । ५)

अर्थात् 'हमें स्वयं अपना उद्धार करना चाहिये । अपनी हिम्मत हम कभी न हारें; क्योंकि हमारी आत्मा ही हमारा मित्र है और हमारी आत्मा ही हमारा शत्रु है । कोई दूसरा शत्रु-मित्र नहीं है ।'

कथनी और करनी ?

(१)

कथनी मीठी खाँड सी, करनी विष की लोय।
कथनी तज करनी करे, नारायण सो होय॥

(२)

कहते तो करते नहीं, मुँह के बड़े लबार।
तुलसी ऐसे नरनको, बार बार धिक्कार॥

आचार्य श्रीराम शर्माके ये शब्द देखिये कितने मार्मिक हैं—'कहीं आप भी तो शेखचिल्ली नहीं हैं ?'

एक शेखचिल्लीने मधुर कल्पनाओंमें मस्त होकर अपने सिरपर रक्खे हुए तेलके घड़ेको फोड़ दिया था और मजूरीके पैसे मिलना तो

दूर, उल्टे लात-घूँसोंसे पिटा था। वह शेखचिल्ली कहता तो बहुत था, बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनाता था, पर करता कुछ भी न था और उसकी बेवकूफीकी हँसी उड़ायी जाती थी। कहीं आप भी तो शेखचिल्ली नहीं हैं ? हम देखते हैं कि हम सब भी प्रकारान्तरसे शेखचिल्लीका अभिनय कर रहे हैं। कहते बहुत हैं, योजनाएँ बड़ी-बड़ी बनाते हैं, पर व्यवहारमें कुछ भी नहीं लाते। वस्तुतः हम जहाँके तहाँ पड़े रह जाते हैं।'

वास्तवमें समस्या यह नहीं कि हमारे पास उपयोगी विचार या सुन्दर योजनाएँ न हों। हमें क्या करना चाहिये ? किन बातोंसे बचना चाहिये ? क्या उचित है, क्या अनुचित है ? हम सब उस सम्बन्धमें बहुत कुछ जानते हैं। समस्या यह है कि अन्ततः हम कार्य कितना करते हैं। व्यवहारमें, उन्नतिकी योजनाओंको दैनिक जीवनमें कहाँतक उतारते हैं ? नवीन विचारोंपर व्यवहार कितना करते हैं ? जो हम सोचते हैं, क्या वह करते भी हैं। गुप्त भावनाओं-को कार्यरूपी प्राण कितना प्रदान करते हैं ?

वास्तवमें हम शुभ योजनाएँ तो बहुत बनाते हैं। उत्तमोत्तम विचारोंसे प्रसन्न होते हैं, किंतु उनपर कार्य नहीं करते। यही दुर्बलता है। हमें विचारके पश्चात् सतत कार्य करना चाहिये। कार्यसे ही सिद्धि प्राप्त होती है। कार्य ही सफलताका मूल मन्त्र है।

मनभर ज्ञानसे एक सेर क्रिया अधिक है। मनुका वचन है—

मनःपूतं समाचरेत्।

उन्नतिके लिये विचारपूर्वक कार्य करो। कार्यमें आलस्य करना मृत्युपद है।

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।

मन, वाणी और कार्यमें जो एक हो; वही सच्चा महात्मा है। जो काम नहीं करते, जो कार्यके महत्त्वको नहीं जानते, कोरा चिन्तन-ही-चिन्तन करते रहते हैं, वे निराशावादी हो जाते हैं। कार्य करनेसे आपका विचार अपना पूर्ण स्वरूप प्राप्त करता है। पुष्पित-फलित होता है—

शेक्सपीयरने एक स्थानपर कहा है—

'The flighty purpose never is overtook unless the deed go with it.' 'मनमें जो भव्य विचार या शुभ योजना उत्पन्न हो, उसे तुरंत कार्यरूपमें परिणत कर डालिये, अन्यथा वह जिस तेजीसे मनमें आया है, वैसे ही एकाएक गायब हो जायगा और आप उस सुअवसरसे लाभ न उठा सकेंगे।'

'काल्ह करे सो आज कर, आज करे सो अब्ब' वाली कहावतमें क्रियाशीलताका ही अमर संदेश छिपा हुआ है। जब कोई उत्तम योजना मनमें आये तो उसे कार्यान्वित करनेमें देरी नहीं करनी चाहिये; अन्यथा अन्य बहुत-से कार्य आ जायँगे और वह भव्य विचार नष्ट हो जायगा। अपनी अच्छी योजनाओंमें लगे रहिये जिससे आपकी प्रवृत्तियाँ शुभ कार्योंमें लगी रहें। कथनी और करनीमें सामञ्जस्य ही आत्मसुधारका श्रेष्ठ उपाय है।

शक्तिका ह्रास क्यों होता है ?

यदि जीवन-यापन ठीक तरह किया जाय तथा जीवन-तत्त्वोंको ह्राससे बचाया जाय, तो मनुष्य दीर्घकालतक जीवनका सुख लूट सकता है। प्रत्येक व्यक्तिको उन खतरोंसे सावधान रहना चाहिये, जिनसे जीवन-शक्तिका ह्रास होता है। सर्वप्रथम मनुष्यकी शक्तिका ह्रास करनेवाली चीज अधिक भोग-विलास है। संसारके समस्त पशु-पक्षियोंकी प्रजनन-शक्ति अत्यन्त परिमित है। वे केवल आनन्द, क्षणिक वासनाके वशीभूत होकर रमण नहीं करते। विशेष ऋतुओंमें ही प्रजनन-कार्य होता है। प्रकृति उन्हें विवश करती है, तब उनका गर्भाधान होता है। आजके मानव-समाजने नारीको केवल वासना-तृप्तिका साधनमात्र समझ लिया है। पति-पत्नीके संयोगकी मात्रा अनियमित हो रही है। हम संतानोत्पत्तिका उद्देश्य, आदर्श तथा प्रकृतिका आदेश नहीं मान रहे हैं। फलतः समाजमें आयुष्य-हीन, अकर्मण्य, निकम्मे बच्चे बढ़ रहे हैं। इन्द्रियोंकी चपलता, कामुकता बढ़ रही है। अधिक भोगविलाससे मनुष्य निर्बल होते जा रहे हैं। कामुक और कामुकतामें लगे रहनेवाले जीव या व्यक्तियोंके बच्चे कभी बलवान्, आचारवान्, संयमी, धीमान्, विचारवान् नहीं हो सकते। प्रत्येक वीर्यका विन्दु शक्तिका विन्दु है। एक विन्दुका भी ह्रास शक्तिको नष्ट करना है। यदि शक्ति, जीवन तथा आरोग्यकी रक्षा करना चाहते हैं तो भोगविलाससे दूर रहिये।

शक्तिका ह्रास अधिक दौड़-धूपसे होता है। आधुनिक मनुष्य

जल्दीमें है। उसे हजारों काम हैं। प्रातःसे सायंकालतक वह व्यस्त रहता है। उसका काम ही जैसे समाप्त होनेमें नहीं आता। बड़े नगरोंमें तो दौड़-धूप इतनी बढ़ गयी है कि मनुष्यको दम मारनेका अवकाश नहीं मिलता। वह क्लबों-होटलोंमें गपशप करता है; आफिसमें कार्य करता है, घरके लिये सामान लाता है, बाल-बच्चोंको मदरसे भेजता है, अस्पतालसे दवाई लाता है। यदि आप व्यापारी हैं तो व्यापारके चक्करमें प्रातःसे सायंकालतक दौड़-धूप करनी है। आजके सभ्य व्यक्तिको शान्तिसे बैठकर मनको एकाग्र करनेतकका अवसर नहीं मिलता। संसारके कोने-कोनेसे अशान्ति और उद्विग्नताकी चिल्लाहट सुनायी दे रही है। चित्तकी चञ्चलता इतनी बढ़ती जा रही है कि हम क्षुब्ध एवं संवेगशील बन रहे हैं। इस दौड़-धूपमें एक क्षण भी शान्ति नहीं। यदि हम इसी उद्विग्न एवं उत्तेजित अवस्थामें चलते रहें; तो जीवनमें कैसे आनन्द, प्रतिष्ठा एवं शान्ति पा सकते हैं। हमारे चारों ओरका वायुमण्डल जब विक्षुब्ध है, तो आत्माकी उच्चतम शक्ति क्योंकर सम्पादन कर सकते हैं। जो व्यक्ति शक्ति-संचय करना चाहते हैं, उन्हें चाहिये कि वे अधिक दौड़-धूपसे बचें, केवल अर्थ-उत्पादनको ही जीवनका लक्ष्य न समझें, शान्तिदायक विचारोंमें रमण करें। जिस साधकके हृदयमें शान्तिदेवीका निवास है, जिसके हृदयमें ब्रह्मनिष्ठा एवं संतोष है उसकी मुखाकृति दिव्य आलोकसे चमकती है। जो ब्रह्मविचारमें लगता है, वह अपने आपको निर्बलता, प्रलोभन, पापसे बचाता है।

शक्तिके ह्रासका तीसरा कारण है अधिक बोलना। जिस

प्रकार अधिक चलनेसे जीवन क्षय होता है, उसी प्रकार अधिक बोलने, बातें बनाने, अधिक भाषण देने, बड़बड़ाने, गाली-गलौज देने, चिढ़कर काँव-काँव करनेसे फेफड़े कमजोर बन जाते हैं। पुनः-पुनः तेज आवाज निकालनेसे फेफड़ोंका निर्बल हो जाना स्वाभाविक है। यही नहीं, गलेमें खराश तथा खुश्कीसे खाँसी उत्पन्न होती है। खाँसी बनी रहनेसे क्षयरोग होकर मनुष्य मृत्युको प्राप्त होता है। प्रायः देखा गया है कि व्याख्याता, अध्यापक, लेक्चरार, पतले-दुबले रहते हैं। यह शक्तिके क्षयका प्रत्यक्ष लक्षण है। अधिक बोलनेसे शारीरिक शक्तिका ह्रास अवश्यम्भावी है। यह अपनी शक्तिका अपव्यय है। अधिक बोलनेकी आदतसे मनुष्य बकवासी बनता है, लोग उसका विश्वास नहीं करते, ढपोरशंख कहते हैं। वह प्रायः दूसरोंकी भली-बुरी-खोटी आलोचना करता है, अनावश्यक बातें बनाता है, निन्दा करता है, अपनी गम्भीरता खो बैठता है। प्रायः ऐसा करनेवालोंका आदर कम हो जाता है। शक्तिको अपव्ययसे बचानेकी इच्छा रखनेवालोंको चाहिये कि मितभाषी बनें, मिष्टभाषी बनें। कम बोलें, किंतु जो कुछ बोलें, वह मनोहारी और दूसरे तथा अपने हृदयको प्रसन्न करनेवाला हो, सारयुक्त हो, शब्द-योजना सुन्दर हो, प्रेम तथा आनन्दका, आदर और स्नेहका परिचायक हो, शक्ति-संचयके लिये मितभाषी बनिये। अध्यात्म-चिन्तन, पठन-पाठन, अध्ययन, मौन, लिखना—मितभाषी बननेके सुन्दर उपाय हैं।

उन्नतिमें बाधक कौन ?

अमुक व्यक्ति हमारे कार्य, उद्देश्य और साधनोंसे ईर्ष्या-वैर करता है और हमारी उन्नतिमें बाधक हो रहा है । यदि अमुक व्यक्ति हमारी सिफारिश कर दे, तो हम उच्च पद प्राप्त कर लें । यदि पिछले जीवनमें हमें अमुक-अमुक सुविधाएँ प्राप्त हो जातीं, तो हम अवश्य उन्नति कर जाते । यदि हमारे पास पर्याप्त धन होता, तो हम उन्नतिके अनेक साधन एकत्रित कर लेते । संसारके स्वेच्छाचारने हमारी महत्त्वाकाङ्क्षाएँ कुचल दी हैं; हमारे उच्च अधिकारियोंने हमारी उन्नतिमें रोड़े अटकाये हैं । हमारा भाग्य खराब था, जो किसीने हमें आगे नहीं बढ़ाया, जहाँ-का-तहाँ रक्खा । रोज तेज लकड़ीकी जटिल गुत्थियोंमें ही हम अटके रहे । संसार और समाजने हमें निराशा, द्वन्द्व, उत्पीड़न, जलन और अविश्वास ही दिया । इन-जैसे अनेक बाह्य कारणोंसे हम जो कुछ करना चाहते थे, जहाँ पहुँचना हमारा उद्देश्य था, वह पूर्ण नहीं हो सका ।

वास्तवमें ये विचार ऐसे कारण हैं, जो केन्द्रित होकर मनुष्यके

गुप्त मन, चरित्र और व्यवहारमें समा जाते हैं। संसारमें कोई भी आपकी उन्नतिमें बाधक नहीं है। बाधक कौन है ?

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता॥

अर्थात् निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घसूत्रता— ये चरित्रके छः दोष मनुष्यकी उन्नतिके बाधक हैं। अतः उन्नति चाहनेवाले पुरुषको इनका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

निद्रा मनुष्यकी एक स्वाभाविक आवश्यकता है। छः-सात घंटेकी शान्त निश्चित निद्रा सभीको लेनी चाहिये; किंतु जब यह अधिक बढ़ने लगती है, तो अपने पाँव फैलाती ही जाती है। आठ, नौ, दस घंटेतक सोकर लोग बेकार नष्ट करते हैं; दिनमें अलग सोते रहते हैं। अधिक सोनेसे आलस्य एक जटिल आदतका रूप धारण कर लेता है। अधिक सोनेवाले बच्चे और व्यक्ति कभी भी फुर्तीले नहीं रह पाते। उनकी आँखोंमें सदा नींदकी खुमारी भरी रहती है। रातको देरतक मित्रोंमें गप्पें मारेंगे या सिनेमा देखेंगे। फिर सुबह आठ बजेतक सोते रहेंगे। दिनभर उनींदे रहेंगे। मन और शरीर भारी-भारी रहेगा। अतः उचित समयपर छः-सात घंटेकी नींद युवकोंके लिये पर्याप्त है। शेष समय काम करनेके लिये निकालना चाहिये। अधिक नींद एक तामसिक प्रवृत्ति है। उन्नतिके इच्छुकोंको व्यर्थकी निद्राका त्याग कर देना चाहिये।

निद्रा और पूर्ण जागरण अवस्थाके बीचमें जो उँघाई या हल्की बेहोशी होती है, जिसमें मनुष्यकी बुद्धि विवेकपूर्ण रूपसे काम

नहीं कर पाती, तन्द्रा कहलाती है। तन्द्रा मनुष्यकी वह अवस्था है, जिसमें नींद मालूम पड़नेके कारण मनुष्य कुछ सो जाय। तन्द्रामें वह व्यक्ति फँसा हुआ है, जो अल्पबुद्धिके कारण कार्य और साधना कुछ नहीं करता, श्रमसे दूर भागता है, पर मनमें यह समझता रहता है कि मैं बहुत काम कर रहा हूँ। तन्द्रामें न फँसकर विघ्नोंको साहससे हटाते हुए खूब दृढ़तासे साधन और प्रयत्नमें लगे रहना चाहिये। उन्नतिका मार्ग सच्चा परिश्रम है। सच्चे परिश्रमके अभ्याससे शक्तियोंका विकास होता है। अभ्यासमें धैर्य रखना आवश्यक है। अभ्यास पूरी श्रद्धाके साथ निरन्तर दीर्घकालतक करना चाहिये। जबतक अभीष्ट वस्तु न मिले, अधिक निद्रा और तन्द्राको समीप न आने देना चाहिये। इनके आक्रमणसे न सांसारिक फल मिलता है, न परमार्थकी ही प्राप्ति होती है।

भय जीवनका शत्रु है। बीमारीका भय, गरीबीका भय, दिवाला निकलनेका भय, व्यापार-हानिका भय, परीक्षामें फेल होनेका भय, मृत्युका भय—मनुष्यका जीवन इन नाना भयोंसे भरकर चिन्ता उत्पन्न करता है। इससे निराशा उत्पन्न होती है, इन्द्रियोंका स्वाभाविक कार्य रुक जाता है, हृदयकी गति बढ़ जाती है, लार बनानेवाली झिल्लियाँ अपना नियत कार्य बंद कर देती हैं और मनुष्यकी उत्पादक शक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। मनमें रहकर गुप्त भय नाना मानसिक विरूपताओंमें प्रकट होता है। अतः अनुचित भय मनमेंसे निकाल देना चाहिये।

क्रोध हमारी उन्नतिमें बाधक है । कबीरजीने कहा है—

कोटि करम लागै रहैं, एक क्रोध की लार।
किया कराया सब गया, जब आया अहँकार ॥
दसों दिसासे क्रोध की उठी अपरबल आगि।
सीतल संगति साधु की तहाँ उबरिये भागि ॥

क्रोध आनेपर मौन ही रहना उचित है । जिसके प्रति क्रोध आया है, उसके समीप न रहिये । किसीके कुछ कहनेपर अथवा अन्य किसी कारणसे क्रोधके लक्षण दीखनेपर अलग जा बैठिये और राम-कीर्तन कीजिये ।

महात्मा जेम्स एलनका विचार है कि मनुष्यका बहुत-सा बल क्रोधके उत्तेजनसे नष्ट हो जाता है । शरीरको भस्म करनेके लिये क्रोधसे बढ़कर अन्य कोई चीज नहीं है । क्रोधी मनुष्य दिन-रात अपनेको जलाता रहता है । सवेरेसे शामतक काम करके मनुष्य इतना नहीं थकता, जितना क्रोध अथवा चिन्ता करके थक जाता है । हमने देखा है कि कभी-कभी मनुष्य क्रोधके आवेशमें आकर बेहोश हो जाता है और आत्महत्या तक कर बैठता है ।

गाँधीजी कहा करते थे कि क्रोधके लक्षण शराब और अफीम दोनोंसे मिलते हैं । शराबीकी भाँति क्रोधी मनुष्य भी पहले लाल-पीला होता है; फिर आवेशके मन्द होनेपर भी क्रोध न घटा, तो वह अफीमका काम करता है और मनुष्यकी बुद्धिको मन्द बना देता है । अफीमकी तरह यह दिमागको कुरेद डालता है । क्रोधसे क्रमशः सम्मोह, स्मृतिभ्रंश और बुद्धिनाश माने गये हैं ।

आलस्य या दीर्घसूत्रता मनुष्यकी शिथिलता और सुस्तीको बताने-वाली मानसिक अवस्थाएँ हैं। आलसीमें शक्तियाँ तो उतनी ही होती हैं, किंतु सुस्तीके कारण वह उनका पूर्ण उपयोग नहीं कर पाता। मनमें आया तीव्रतासे काम करने लगे, फुरसत मिली कुछ कर लिया। फिर आलस्यका प्रकोप हुआ, तो कई दिनोंतक कुछ भी साधना या श्रम नहीं किया। ऐसा व्यक्ति पूरी लगन और उत्साहसे काममें नहीं लगता। यदि दीर्घसूत्रता त्यागकर अध्यवसाय और लगनसे कार्य करे, तो वह निश्चय ही उन्नति कर सकता है।

कछुए और खरगोशकी पुरानी कहानी आपको स्मरण है। धीरे-धीरे चलनेवाला कछुआ और हवाकी तरह तीव्रगतिसे चलने-वाला खरगोश—दोनोंमें जमीन-आसमानका अन्तर था। खरगोशको निद्रा और आलस्यने पछाड़ दिया। 'मैं बहुत आगे बढ़ आया हूँ। कुछ देर विश्राम कर लूँ, नींद ले लूँ। बादमें जल्दीसे आगे निकल जाऊँगा।'—यही सोचकर खरगोश एक नींद निकालने लगा। निरन्तर आगे बढ़नेवाला धीमा कछुआ उससे आगे निकल गया। खरगोश हार गया। कछुएमें प्रमाद नहीं था। आलस्यको उसने पास नहीं फटकने दिया। निद्राको त्याग दिया। सुस्तीके तामसिक दोषोंसे सजग रहा। फल यह हुआ कि उसने आलस्य-निद्रा-रत खरगोशको प्रतियोगितामें पछाड़ दिया।

विद्वान् श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारने इस दुर्गुणका उल्लेख करते हुए उचित ही लिखा है,—'आजकल लोगोंमें गाँजा-भाँग आदि पीने, व्यर्थ गप्पें मारने, इधर-उधरकी बातें करनेकी जो प्रवृत्ति देखी जाती

है उसका प्रधान कारण यही है कि उनके पास समय बहुत है, पर काम नहीं है; इसीसे कुसंगतिमें पड़कर वे लोग नाना प्रकारके बुरे व्यसनोंके वश हो जाते हैं। अमीरोंके लड़के ज्यादा बिगड़ते हैं, क्योंकि उनके पास समय बहुत रहता है, पर काम नहीं रहता। समय बितानेके लिये उन्हें व्यर्थके काम करने पड़ते हैं। नहीं तो क्या मनुष्य-जीवनका अमूल्य समय ताश, चौपड़, शतरंज खेलने, व्यर्थकी गप्पें उड़ाने, तीतर-बटेर लड़ाने, पर-चर्चा करने, दिनभर सोने, प्रमाद करने और पापोंके बटोरनेके लिये थोड़े ही मिला है ? अतएव साधकको चाहिये कि किसी-न-किसी जिम्मेदारीके कार्यमें अपनेको अवश्य लगाये रक्खे। वह काम परोपकारका हो या घरका हो, ईश्वरार्पित-बुद्धिसे आसक्ति छोड़कर किये जानेवाले सभी सत्कार्य ईश्वर-भजनमें शामिल हैं। काममें लगे रहनेसे मनको व्यर्थ चिन्तन या प्रमादके लिये समय नहीं मिलेगा। काम करते समय ईश्वर-चिन्तन नहीं छोड़ना चाहिये।'

दीर्घकाल साधन, निरन्तर उद्योग, अपनी शक्तियोंमें श्रद्धा, पापोंसे सावधानी, प्रभुपर विश्वास वे गुण हैं, जिनसे साधारण व्यक्ति भी समुन्नत हो सकता है। ईश्वरकी इच्छा है कि मनुष्य आगे बढ़े, विकसित हो और निरन्तर उन्नति करता चले। प्रकृतिका हर एक अणु-परमाणु, पशु-पक्षी आगे बढ़ रहा है। उन्नतिपथपर निरन्तर आगे बढ़नेकी क्षुधा ईश्वरप्रदत्त है। उसे पूरा कीजिये। विकसित हूजिये।

अभावोंकी अद्भुत प्रतिक्रिया

अंग्रेज उपन्यासकार चार्ल्स डिकेन्स अपने हाथोंकी अँगुलियोंमें कई अँगूठियाँ पहिनता था। प्रायः आभूषण धारण कर वह मन-ही-मन अपनी महत्ताकी धाक आस-पासवालों और मित्रोंपर जमाया करता। मनोविज्ञानवेत्ताओंने जब उसके मनका अध्ययन किया, तो ज्ञात हुआ कि यह उसके प्रारम्भिक गरीबी और अभावोंके जीवनकी एक प्रतिक्रियामात्र थी। सम्पन्न होनेपर भी वह इस समृद्धिके प्रदर्शनमें दिलचस्पी लेता रहा। उसका गुप्त मन यह नहीं चाहता था कि कोई उसे दीन-हीन या गरीब कहे।

प्रारम्भिक जीवनमें वस्त्रों या आभूषणोंका अभाव पानेवाली नारियाँ प्रायः सस्ती सिल्क या रंग-बिरंगे वस्त्रों और नकली गहनोंसे अपनेको सुसज्जित रखनेका प्रयत्न करती हैं। इसी प्रकार इत्र-फुलेल, अधिक बनाव-शृंगार भी पुराने अभावोंको ढकनेके विचित्र प्रयत्न हैं।

जिन बच्चोंको स्वच्छन्दता, प्रेम या सहानुभूतिका अभाव मिलता है, या जिन्हें कोई पर्याप्त प्यार और स्नेह नहीं देता, वे बड़े होकर उद्दण्ड, जिद्दी, झगड़ालू और दूसरोंपर अत्याचार करनेवाले बनते पाये गये हैं। जीवनभर वे दूसरोंसे अपने प्रति किये गये नाना दुर्व्यवहारोंका बदला निकालते रहते हैं।

जो बहू सासके अत्याचारोंको सहती रहती है, वह स्वयं बड़ी होकर जब सासका पद प्राप्त करती है, तो उससे भी कहीं कठोर, निर्मम, कटु और बुरे स्वभावकी बन जाती है। सज्जनताके व्यवहारका प्रारम्भिक अभाव उसकी इस कठोरताका कारण बन जाता है।

इसी प्रकार जो मातहत क्लर्क या छोटा अध्यापक अपने अफसरकी घुड़कियाँ या ताड़ना पाता है, वह स्वयं अफसर बनकर बड़ा कठोर निकलता है ।

जो व्यक्ति अपने धर्मवालोंकी ताड़ना, उपेक्षा या अत्याचारके शिकार बनकर धर्म-परिवर्तन करते हैं, वे उम्रभर अपने ही धर्म-वालोंसे बदला लेते रहते हैं ।

हमारे एक पचास वर्षीय सम्पन्न प्रोफेसर मित्र हैं । उनका शरीर स्थूल, बुद्धि परिपक्व, अभिरुचि साहित्यिक है । जब कभी उनके यहाँ जाते हैं तो वे मिठाई अवश्य खिलाते हैं । स्वयं भी मिठाईके प्रगाढ़ प्रेमी हैं । जब घरमें कुछ मीठा नहीं होता, तब शक्कर ही फाँकते रहते हैं । अधिक मीठेके उपयोगके कारण गर्मियोंमें उनके शरीरमें फोड़े-फुन्सियाँ फूट निकलती हैं । बड़ी बुरी हालत हो जाती है । फिर भी वे मित्र अपनी मिठाई खानेकी प्रवृत्तिको नहीं छोड़ पाते । इन्जेक्शन लगवाते हैं और बड़ी मुश्किलमें स्वस्थ हो पाते हैं ।

कारण ? एक दिन उनसे बातें चल निकलीं, तो अतीतकी स्मृतियोंसे मालूम हुआ कि एक गरीब-परिवारमें उनका जन्म हुआ था । खाने-पीने, विशेषतः मिठाईका नितान्त अभाव रहा । महीनों मीठा न मिलता । उसका मन मिठाई खानेको अति इच्छुक रहता । होते-होते मिठाईका अभाव उनके गुप्त मनमें एक भावना-ग्रन्थि बन गया और वृद्धावस्थातक उसकी प्रतिक्रिया उनके जीवनपर चलती रही । आजतक वे मिठाई और शक्कर खा-खाकर उस पुराने अभावकी पूर्ति करते हैं ।

वे प्रत्यक्ष रूपसे स्वीकार नहीं करते, पर वास्तवमें गुप्त मनका यही अद्भुत रहस्य है। एक बार किसी रूपमें जिस बातकी कमी या न्यूनता मनको झकझोर देती है, उसकी ठेस पूरी आयुभर बनी रहती है और वह हमारे अनेक कार्यों, बर्तावों, आचार-व्यवहारों, वस्त्र और आभूषणोंद्वारा कृत्रिम समृद्धि-प्रदर्शनमें अभिव्यक्त होती रहती है।

अस्वास्थ्यकर परिस्थितियोंमें रहनेवाले बच्चोंका जीवन अस्त-व्यस्त रहता है। उनके कमरेकी वस्तुएँ इधर-उधर बुरी तरह बिखरी रहती हैं। वस्त्र मैले रहते हैं। स्नानसे उन्हें आलस्य होता है। कई-कई दिनतक वे शरीर स्वच्छ नहीं करते, कमरोंमें झाड़ू नहीं देते, मेज, कुर्सी, कमरेकी पुस्तकें, चित्र, जूते इत्यादिकी सफाईकी ओर ध्यान नहीं देते, दाँत साफ नहीं करते।

बालोंको साबुनसे नहीं धोते। उनमें जुएँतक पड़ जाती हैं। खुजली आती है। रस्सीकी तरह बट जाते हैं, पर उन्हें बुरा नहीं मालूम होता। कुछ व्यक्ति बड़े हो जानेपर भी नाककी सफाई बिना रूमालके अपने हाथ या कमीजकी आस्तीन या पाजामेंसे करते रहते हैं। ये तथा इसी प्रकारसे और कार्य प्रारम्भिक जीवनके छोटे-छोटे अभावों—कम वस्त्रोंका होना, धोबीसे वस्त्र धुला सकनेकी सुविधा न होनेके कारण होते हैं।

चिन्ताकी आहटके कारणोंको खोजनेपर भी हमें प्रारम्भिक अभाव ही मिलते हैं। हमारे एक सम्पन्न मित्र सदैव यही चिन्ता करते रहते हैं कि कहीं वे गरीब न हो जायँ, उनकी नौकरी न छूट

जाय या जिस बैंकमें उनकी समस्त पूँजी जमा है, कहीं वह फेल न हो जाय। इस चिन्ताका कारण उनका प्रारम्भिक अभावपूर्ण जीवन है, जिसमें उन्हें निर्धनतासे भयंकर संघर्ष करना पड़ा था।

जिन स्त्री या पुरुषोंका सेक्स भाव संतुष्ट नहीं होता, वे जीवनमें चिन्तित और विक्षुब्ध रहते हैं और अतृप्त कामेच्छाकी तृप्तिके अनेक साधन ढूँढ़ते हैं। हँसी-मजाक करते और प्रायः गाली दिया करते हैं; फिल्मोंकी पत्रिकाएँ या प्रेम-कहानियाँ खूब पढ़ते हैं।

चार्ल्स डिकेन्सके 'ग्रेट एक्स्पेक्टेशन्स' में एक स्त्री प्रमुख पात्र है। नाम है मिस हैवीशाम। धनसम्पन्न और ऐश्वर्ययुक्त; हर तरह-की सुख-सुविधासे युक्त, लेकिन उसकी आदत है कि वह बड़ी उम्र होनेपर भी दुलहिन-जैसी पोशाक पहनती है। सजी-बजी रहती है, जैसे अभी-अभी उसका विवाह होनेवाला है। एक सजे हुए कमरेमें बैठी रहती है। बाजेका स्वर सुनते रहना चाहती है। घरसे बाहर नहीं निकलती। वह एक सुन्दर कन्याको गोद लेती है। उसे पढ़ा-लिखाकर रंग-बिरंगी तितली बनाये रहती है। इस कन्याका नाम है मिस ऐस्टला।

मिस ऐस्टलाको शिक्षा दी गयी है कि वह अधिक-से-अधिक युवकोंसे प्रेम करे; उनसे घनिष्ठता बढ़ाये, पर किसीसे विवाह न करे और इस प्रकार उनका हृदय तोड़ती रहे। उन्हें तरसाती-कलपाती रहे। ऐस्टला जितने अधिक युवकोंका हृदय तोड़ती है, उतनी ही मिस हैवीशाम प्रसन्न होती है।

इसका क्या कारण है?

मिस हैवीशामका एक अस्थिर चित्तवाले व्यक्तिसे प्रेम हो गया था। घनिष्ठता बढ़ी और बढ़ते-बढ़ते इस हदतक पहुँची कि एक दिन विवाहके लिये निश्चित किया गया। विवाहकी सब तैयारियाँ हो चुकीं। दुलहिनने बढ़िया वस्त्र पहने, साज-शृंगार किये, लेकिन ऐन समयपर मालूम हुआ कि उसके प्रेमीने किसी दूसरी युवतीसे विवाह कर लिया। इस धोखेका ही मिस हैवीशामको यह धक्का लगा कि वह सदा दुलहिनके ही वस्त्र पहिने रही; मानो अभी विवाहके लिये जा रही है। फिर मिस ऐस्टलाके रूपमें वह अपने प्रति किये गये धोखेका सदा युवकोंसे बदला लेती रही। यह प्रेम न पानेके अभावकी प्रतिक्रियाका एक अच्छा उदाहरण है।

शारीरिक हो या मानसिक, सभी प्रकारके अभाव मनुष्यके संतुलित विकासमें बाधक हैं। अभावोंमें पलनेवाले बच्चे बड़े होनेपर भीरु बने रहते हैं। उनमें न बुद्धि रह पाती है, न स्फूर्ति और न प्रेरणा!

यदि जीवनमें संयोगवश उन्हें वे अभाव दूर करनेका अवसर आ भी जाता है, तो उनके सब ज्ञान-तन्तु गुप्त दलित भावकी इच्छा-को पूरा करनेके लिये दौड़ते हैं। उस अवस्थामें मनुष्य न पाप देखता है न पुण्य, न बुरा न भला।

अधिक चिन्ता, कल्पित भयकी भावना, भ्रान्ति, आत्महत्याकी प्रवृत्ति, मतिभ्रम और आत्महीनताकी भावना हमारे प्रारम्भिक जीवन-में अभावपूर्ण परिस्थितियोंके दुष्परिणाम हैं।

बालकोंको अभावकी स्थितियोंसे बचाना परिवार और समाजका सर्वप्रथम कर्तव्य है।

अभावोंको चुनौती दीजिये

मिस हेलन केलर अंधी और गूँगी देवी हैं, जिनके मार्गमें प्रकृतिने नाना अभावोंकी अड़चनें डाली थीं; लेकिन हेलन केलर उनसे न डरीं और न घबरायीं, प्रत्युत कठोर संघर्ष किया और अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्तित्व प्राप्त किया। अपने जीवनके बारेमें उन्होंने लिखा है—"I have found life so beautiful" अर्थात् मुझे जीवन सौन्दर्यसे परिपूर्ण मिला है। हेलन केलरका दृष्टिकोण मनोवैज्ञानिक था। इसीलिये वे अभावोंपर विजय प्राप्त कर सकीं। आपके जीवनमें भी ऐसे ही अभाव हो सकते हैं, पर आप मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणसे इन्हें दूर कर सकते हैं।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण क्या है? अभावोंको अड़चनें न मानना, प्रत्युत उन्हें आत्मविकासमें एक चुनौतीके रूपमें स्वीकार करना। अभाव वास्तवमें हमारे व्यक्तित्वकी परीक्षा लेने आते हैं। हमें चाहिये कि हम इन्हें मार्गमें बाधक नहीं, सहायक समझें। ये एक प्रकारके अस्थायी अंधकार हैं, जो प्रयत्न करनेपर मानसिक क्षितिजसे दूर हो सकते हैं।

आप जीवनमें यह मानकर चलिये कि आपमें अभावोंसे युद्ध कर उनपर विजय प्राप्त करनेकी क्षमता है। आप अपने आपको संकेत या सजेशन देकर यह कल्पना किया कीजिये कि धीरे-धीरे आप उन संकेतोंको ग्रहण करते जा रहे हैं। सोनेसे पूर्व या पश्चात् ये संकेत दिये जायँ तो गुप्त मनपर स्थायी प्रभाव डालते हैं।

अपने चरित्रके मजबूत पहलुओं, गुणों, सम्पदाओंको मालूम

कीजिये और निरन्तर उन्हें बढ़ाते जाइये। ये सद्गुण परमेश्वरकी ओरसे विशेषरूपसे आपको प्राप्त हुए हैं। इसी क्षेत्रमें आपको महत्ता प्राप्त करनी चाहिये।

मनुष्यको जब अपने चरित्रकी कोई विशेषता मालूम हो जाती है, तो उसे एक ऐसा मार्ग प्राप्त हो जाता है, जिसके द्वारा वह सरलतासे आगे बढ़ सकता है। विकसित रुचिका ज्ञान मनुष्यको एक ऐसी दिशा प्रदान कर देता है, जो परमेश्वरने जन्मसे ही किसी व्यक्तिको दी है। स्मरण रखिये, यदि आपके व्यक्तित्वमें एक अभाव है, तो उसके साथ कई उत्तम गुण भी हैं। प्रकृति कमी पूरा करनेके लिये किसी अन्य गुणको और भी चमका डालती है। निश्चय ही आपमें कुछ विशेष गुण भरे पड़े हैं। सावधानीसे शान्तिपूर्वक उनकी खोज कीजिये और सतत अभ्यासद्वारा उन्हें विकसित कीजिये, अभाव दूर हो जायगा।

अभाव हमें संसारकी वास्तविकताके साथ कदम-से-कदम मिलाकर चलनेका साहस प्रदान करते हैं। अभाव हमारे परीक्षक हैं। क्या हम अपने परीक्षकोंसे भयभीत होते रहें? नहीं, उन्हें तो हमें अपनी सफलताओंका पत्थर मानना चाहिये।

हो सकता है कि आप निर्धन हों, विषम परिस्थितियाँ आपको घेरे हुए रहें, शरीरसे पीड़ित हों, मित्रोंसे शून्य हों, लेकिन इससे घबराना नहीं चाहिये। वरं दृढ़ इच्छाशक्तिसे बदलनेका प्रयत्न करना चाहिये। इसीमें मनुष्यकी महत्ता है कि कोई ऐसा क्षेत्र चुनिये, जो आपकी रुचि, प्रतिभा या परिस्थितिके अनुकूल हो। फिर हिम्मत

और विश्वासके साथ आगे बढ़िये । अपने अभावकी बात न सोचिये वरं अबाध गतिसे आत्मविश्वास धारण किये बढ़ते चले जाइये। भीरुता-की भावनासे लड़िये । साहस एक अमोघ शास्त्र है जो निरन्तर आगे बढ़नेकी प्रेरणा प्रदान करता है । शक्तिका स्रोत तो मनुष्यके अंदर छिपा हुआ है । उसीको खोज निकालिये ।

आपके अभाव और अधूरापन

प्रायेण सामग्र्यविधौ गुणानां
पराङ्मुखी विश्वसृजः प्रवृत्तिः ॥

अर्थात् 'ब्रह्माजीका स्वभाव सब गुणोंको एक ही स्थानमें एकत्र करनेके विरुद्ध है— वे कहीं कुछ रचते हैं तो कहीं कुछ ।'

आपके जीवनमें अतृप्ति, अभाव एवं असंतोष उत्पन्न होनेका एक कारण यह है कि आप अपनी स्थिति और जीवनको, अपने गुण या अभावोंको दूसरोंसे—विशेषतः अपनेसे अच्छी सामाजिक और आर्थिक स्थिति एवं अधिक योग्यतावालोंसे तथा हैसियतमें उच्च पद पानेवालोंसे तुलना करते हैं ।

आप दूसरोंके समान उच्च स्थिति, सुन्दर वस्तुएँ और नाना समृद्धियाँ तो ले नहीं पाते, उलटे अपनेको तुच्छ, निर्बल, दीन-हीन समझने लगते हैं । अपनी अपेक्षा उच्च स्थिति, बड़े ओहदे और समृद्धिवालोंसे तुलना करनेपर आपमें ईर्ष्याभाव उत्पन्न होता है। आप उनकी सुन्दर वस्तुएँ, उन्नत स्थिति और जीवनकी सुविधाएँ देखकर ईर्ष्याकी अग्निमें निरन्तर दग्ध होते रहते हैं ।

आपका मन चुपचाप आपसे कहा करता है, हाय ! हम न हुए बड़े-बड़े मकानोंके मालिक ! जमीनों-जायदादोंके अधिपति, मोटरकार और रेडियोंके स्वामी । हे परमेश्वर ! इस दुनियामें एक-से-एक बड़ा आदमी पड़ा है, किंतु क्या हमारे भाग्यमें यही गरीबी, यही बेबसी और अभाव लिखा है । हमारा यह पड़ोसी मजेमें रोज मेवा-मिष्टान्न उड़ाता है, फलोंके ढेर लगे रहते हैं, इसके यहाँ एक-से-एक उत्तम वस्त्र और फैशनेबल वस्तुएँ हैं और इसकी पत्नी कितनी सुन्दर है । हमारे भाग्यमें फूहड़ नारी ही लिखी है । हमारे पास ठीक तरह लज्जा ढकनेतकको वस्त्र नहीं हैं, दूसरा दर्जनों कपड़ोंको संदूकोंमें सड़ा-गला रहा है; उफ् ! हमारी कैसी विषम स्थिति है । हमारे पड़ोसीके दो पुत्र हैं, उधर हमारे तीन-तीन पुत्रियाँ हैं और सो भी निम्न मानसिक गुणोंवाली । हमारे चारों ओर वैभवका अमित भंडार बिखरा दीखता है, किंतु हमारे भाग्यमें टूटा मकान और रूखी-सूखी रोटियाँ ही बदी हैं । काश ! हम भी ऐसे ही ऊँचे पद, ऐसे ही समृद्धिके स्वामी, ऐसे ही स्वस्थ, सर्वगुणसम्पन्न, अमीर, प्रतिष्ठित और वैभवशाली होते ।'

आपके इन उद्गारोंमें ईर्ष्या बोल रही है । सावधान ! आप अपनी निम्न स्थितिको—जो आपके वशकी बात नहीं है—दूसरोंकी अच्छी स्थितिसे मिलाकर हीनत्वकी भावनाका अनुभव कर रहे हैं । सम्भव है, उनकी समृद्धिका कोई ऐसा गुप्त कारण हो, जो आपके वशकी बात नहीं है । अनेक गुप्त कारणोंसे चली आती हुई उस समुन्नत स्थितिसे तुलनामें आप अपनेको साधारण पाकर दुखी हो

रहे हैं । तुलना करनेमें आप उनकी केवल अच्छाई-ही-अच्छाईको तथा अपने जीवनकी बुराई-ही-बुराईको देख रहे हैं । आपका निर्णय एकपक्षीय है ।

अभाव, बुराइयाँ और निर्बलताएँ किसमें नहीं होतीं ? कौन हर दृष्टिसे पूर्ण है ? ये कमजोरियाँ मनुष्यमात्रमें सर्वत्र हैं । किसीमें शारीरिक, किसीमें नैतिक, तो किसीमें मानसिक या बौद्धिक निर्बलताएँ हैं । आपने अपनी अच्छाइयों, उत्तमताओं और गुणोंको छोड़ अपने विषयमें तुच्छ तथा उसके मुकाबलेमें दूसरेके साधारण-से गुणोंको बढ़ा-चढ़ाकर देख लिया है ।

दूसरेका धन आपको बढ़-चढ़कर दीखता है तो अपनी गरीबीमें अभाव-ही-अभाव नजर आता है । दूसरेके पैसोंमें भी आपको अशर्फियाँ दीखती हैं, तो अपने रुपयोंमें भी पाइयाँ ही दृष्टिगोचर होती हैं ।

दूसरेके साधारण स्वास्थ्यमें भी आपको पहलवान दीखता है । दूसरेके बच्चे आपको बल, पराक्रम और शक्तिसे भरे-पूरे नजर आते हैं तो अपने कुशाग्रबुद्धि बच्चे भी मन्दबुद्धि दीखते हैं । उनमें कोई बुद्धि, सौन्दर्य अथवा विशेषता दृष्टिगोचर नहीं होती ।

दूसरेकी साधारण-सी पत्नीमें आप उच्चकोटिका सौन्दर्य, नवीनता, अपूर्व आकर्षण देखकर मुग्ध हो उठते हैं, तो अपनी शील-गुणसम्पन्न सती-साध्वी धर्मपत्नीमें फूहड़पन, अशिक्षा और मूर्खता देखते हैं । उसके द्वारा बनाया हुआ भोजन, सफाई, शिष्टाचार, बोलचालमें आपको कोई विशेषता दृष्टिगोचर नहीं होती ।

अपना पेशा आपको सबसे बुरा, नीरस और श्रमसाध्य प्रतीत

होता है; किंतु दूसरोंके कठोर पेशे भी बहुत अच्छे, आमदनीसे परिपूर्ण और आरामदायक लगते हैं। हम चाहते हैं कि दूसरों-जैसे हम भी सुख और सुविधाओंसे पूर्ण रहें। हम संगीतज्ञके मधुर संगीतपर विमुग्ध हो उठते हैं और स्वयं चाहते हैं वैसा ही गाया करें, जब कि उनके द्वारा उठाये हुए श्रम और बलिदानका हमें कोई ज्ञान नहीं होता।

संक्षेपमें यों कहें कि दूसरा व्यक्ति, उसका जीवन, परिवार, साधन, स्वास्थ्य, बाल-बच्चे आदि सभी हमें आकर्षक प्रतीत होते हैं। उसका जीवन हमें बाहरसे सर्वगुणविभूषित, सर्वाङ्ग-सुन्दर प्रतीत होता है जब कि हमें अपना सब कुछ अति साधारण, तुच्छ और बेकार-सा प्रतीत होता है। वास्तवमें ऐसा नहीं है। अपने विषयमें, अपने परिवारके प्रति हम कितना बड़ा अत्याचार कर रहे हैं—यह हम नहीं जानते।

हम दूसरोंके जीवनके बाह्य पहलूमात्रको ही देखते हैं। हमारा निर्णय एकपक्षीय होता है। हम केवल ऊपरी निगाहसे कुछ तत्त्वोंको देखकर दूसरोंके विषयमें बहुत ऊँची-ऊँची भ्रमात्मक कल्पनाएँ करने लगते हैं। हमारी आँखें दूसरोंकी खूबियोंमें मस्त हो जाती हैं। हमारी त्रुटि यह है कि हमारी वृत्ति बहिर्मुखी है। हम अपने जीवन और साधनोंको दूसरोंके मापदण्डोंसे नापते और दुखी होते रहते हैं। अभाव और ईर्ष्याकी अग्नियोंमें निरन्तर दग्ध होते रहते हैं।

तुलनात्मक दृष्टिसे उत्पन्न होनेवाले दुःख तथा चिन्तासे मुक्त होनेका एक उपाय पुराने शास्त्रकारोंके मतानुसार यह समझ लेना है कि,

संसारमें एक ही स्थानमें समस्त गुणोंका एकत्र होकर रहना सम्भव नहीं है। किसीमें कोई एक गुणविशेष है तो किसीमें कोई दूसरा। इस प्रकार दोष भी विभिन्न प्रकारसे न्यूनाधिक सभीमें हैं।

वास्तवमें हर दृष्टिसे पूर्ण संसारमें कोई भी नहीं है। पशु-पक्षी, कीट-पीतंग, मनुष्य सभीमें एक सुन्दरता या गुण है, तो कई अवगुण भी हैं। मोर कितना सुन्दर पक्षी है। उसके सुन्दर रंगोंको देखकर मन अनायास ही प्रसन्न हो उठता है, किंतु तनिक उसके पाँव देखिये, कितने गंदे और कुरूप होते हैं। मुर्गेके सिरकी कलँगी कितनी रंगीन और शानदार प्रतीत होती है, पर कैसा घृणित है उसका भोजन। वह अभक्ष्य पदार्थ खाता है। बारहसिंगेके सींग कितने अच्छे मालूम होते हैं, पर वह कैसा दुर्बल होता है। सिंहका चमड़ा खूबसूरत, धारियाँ मुलायम देखने योग्य होती हैं, पर उसका खूँखारपन तथा हिंसक दुष्प्रवृत्ति भयावह है। हाथीकी चाल शानदार है, पर उसका आलस्य निन्दनीय है। निष्कर्ष यह कि संसारके हर जानवरमें (और इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्यमें भी) कोई-न-कोई अभाव है। एक अच्छाई है तो दो बुराइयाँ भी हैं। पूर्णरूपसे सुन्दर और उपयोगी कोई नहीं है। परंतु इन अभावोंके बावजूद अपने विशिष्ट गुणके कारण सब पशु-पक्षी प्रसन्न रहते हैं और अपने गुणप्रदर्शनसे दूसरोंके नैराश्यको दूर करते हैं। खेलते-कूदते मधुर संगीतका उच्चारण करते और मस्त रहते हैं।

मानव-जगत्में भी प्रत्येक व्यक्ति किसी-न-किसी अभावसे पूर्ण है। किसीके पास स्वस्थ शरीर है तो

सौन्दर्य नहीं है। सौन्दर्य है तो शक्ति नहीं है। शक्ति है तो चरित्र नहीं है। चरित्र है तो खाने-पीनेके लिये पैसा नहीं है, सामाजिक प्रतिष्ठा या उच्च पद नहीं है। कोई शरीरसे स्वस्थ है तो अनेक पारिवारिक अड़चनोंसे घिरा हुआ है। किसीको बच्चों-की शिक्षा-विवाह आदिकी चिन्ता है तो किसीके बाल-बच्चे हैं ही नहीं। किसीको सौ-सौ बीमारियाँ लगी हुई हैं। कोई समाजमें निम्न वर्णमें पड़ा सवर्णोंसे ईर्ष्या कर रहा है। कोई नौकरीके लिये परेशान है तो किसीका व्यापार नहीं चल रहा है। किसीमें अच्छी स्थिति होते हुए भी बचत नहीं है, समृद्धि नहीं है। कोई मादक द्रव्योंके मादक संसारमें सुखके लिये भटक रहा है। जितने मनुष्य हैं, उतने ही उनके अभाव हैं। प्रत्येक व्यक्तिमें कहीं-न-कहीं अधूरापन है—अपूर्णता है। कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो सामाजिक, शारीरिक, आर्थिक, पारिवारिक या आध्यात्मिक सभी दृष्टियोंसे सर्वगुणसम्पन्न हो, चिन्तामुक्त हो, सर्वोत्तम स्थितिमें हो या हमेशा प्रतिष्ठित रहा हो।

जीवनका पथ समतल भूमि नहीं है। कहीं उसमें सपाट भूमि है तो कहीं कंकड़-पत्थर, काँटे बिखरे हुए हैं; कहीं पुष्पोंसे युक्त सुन्दर सुगन्धित हरे-भरे वृक्ष हैं तो कहीं काँटोंसे भरे बीहड़ जंगल भी हैं। कहीं कठिनाइयोंके दुर्वह पर्वत हैं तो कहीं सुख-सुविधा-प्रतिष्ठाके सुन्दर रमणीक दृश्य भी हैं।

अपने अभावोंको ही देखते रहना और अपनी दुर्दशापर रोना-कलपना, गिरी हुई स्थितिपर कुढ़ना, दोष देना अपनी उन्नतिमें बाधा

उपस्थित करना है। अपनी दुर्बलता देखनेसे दुर्बलता और दोषोंकी ही वृद्धि होती है। अभाव, दुःख, कमजोरी, गरीबीके कुविचारोंसे वैसी ही दुःखदायक विषम स्थिति उत्पन्न होती है। अपना सत्-चित्-आनन्दस्वरूप आत्मरूप—ही देखना न्याय है।

ईश्वरको धन्यवाद दीजिये कि आपके पास स्वास्थ्य है, शक्ति है, सामर्थ्य है, रूप और गुण है। निश्चय जानिये, आपकी योग्यताएँ बहुत हैं। केवल उनपर आलस्य, कुविचार और अज्ञानका गहरा पर्दा पड़ा हुआ है। आपको ऊँचा उठकर सद्विचार, सद्ग्रन्थावलोकन, शुभचिन्तन और दृढ़ संकल्पद्वारा अपनी गुप्त शक्तियोंको पहचानना है, विकसित करना है। आप अपने सद्गुणों, सत्प्रवृत्तियोंको देखिये और उसी दिशामें अपना विकास कीजिये।

अधूरापन, अभाव तथा अशान्ति दूर करनेके लिये आप अपनेसे नीचेवालोंकी स्थितिसे अपनी तुलना कीजिये। उनसे तुलना करनेपर आपको अपनी शक्तियों, सुविधाओं और अच्छाइयोंका ज्ञान हो सकता है। आपके भाग्यमें उच्चतम शक्तियाँ आयी हैं। इनके लिये परमपिता परमेश्वरको धन्यवाद देते हुए आगे बढ़ने, विकसित होनेके लिये निरन्तर संघर्ष कीजिये।

अवैध काम, क्रोध, लोभ, भय, विषाद, निराशा, दम्भ, अभिमान, मद, डाह, आलस्य और प्रमाद—इन बारह दोषोंसे बचे रहनेका प्रयत्न करते रहिये।

आपकी संचित शक्तियाँ

जिन तोप-बंदूकोंको जलयानके लिये रक्खा जाता है, चुनावसे पूर्व उसकी परीक्षा होती है। उनमें उनकी शक्तिसे कुछ अधिक बारूद भरकर चलाया जाता है। यदि उस बढ़ी हुई शक्तिके भारको वे वहन कर लेती हैं, तो उन्हें युद्धके लिये उपयुक्त समझकर चुन लिया जाता है। अनेक तोप-बंदूकें इस परीक्षामें ही विनष्ट होकर खण्ड-खण्ड हो जाती हैं। इनमेंसे अनेक ऐसी होती हैं, जो साधारण स्थितियों तथा दैनिक कार्योंमें मामूली तौरपर काम चला सकती हैं। पर अधिक काम या बोझ पड़नेपर टूट सकती हैं।

पुलोंका भी यही हाल है। काममें लानेसे पहले उनपर भारी इंजिनको चलाकर देखा जाता है कि कहीं अधिक भारसे टूट तो न जायँगे? प्रत्येक इंजिन या लोकोमाटिवमें कुछ हार्स पावर-की शक्ति सुरक्षित रक्खी जाती है। यदि आप २० हार्स पावरका इंजिन चाहते हैं, तो कम्पनी आपको ३० हार्स पावरका इंजिन भेजेगी। यह दस हार्स पावरकी अधिक शक्ति काममें नहीं आयेगी, पर कभी अड़चन या जरूरी मौकेके लिये उसे संचित रखना अति आवश्यक है। मौके-बे-मौके कभी भी उसकी जरूरत पड़ सकती है। सम्भावित आवश्यकताओंके लिये इसे संचित रखना जरूरी है।

ऐसा ही हाल मनुष्यकी शक्तियोंका होना चाहिये। अनन्त मानसिक शक्तिसे परिपूर्ण, सुसंचालित विवेक, संतुलित चरित्रवाला व्यक्ति आपत्तिकाल या जरूरतके समय किंकर्तव्यविमूढ नहीं होता। अधिक काममें भी वह अपनी शक्तियोंका पूर्ण परिचय देता

है, जब कि ऊपरी दृष्टिसे मोटे-ताजे व्यक्ति पीछे रह जाते हैं। जरा कार्याधिक्य हुआ कि उनके प्राणोंपर आ बनती है।

बड़े व्यापारी उन व्यक्तियोंको पसंद करते हैं जो आपत्तिकालमें, जब मजदूरी भी कम हो, उसी उत्साहसे कार्यमें संलग्न रहते हैं, जितने वे आरामके समृद्धिशाली दिनोंमें थे। प्रारम्भिक कालमें जब व्यापार प्रारम्भ ही किया जाता है, उसे आगे विकसित करनेके लिये बड़े परिश्रमी, संयमी और शक्तिशाली व्यक्तियोंकी आवश्यकता पड़ती है। व्यापारमें न मनुष्यका पुस्तकीय ज्ञान, शक्ति या अनुभव कार्य करता है, प्रत्युत उसे समुन्नत बनानेवाला वह भाव है जो उसके मनमें पुनः-पुनः यह भावना उत्पन्न करता है कि खतरेके समय भी वह अपने कार्यको सँभाल सकेगा। बची हुई शक्ति, संचित सम्पत्ति, एकत्रित ताकतें वे चीजें हैं जो मनुष्यको सफल व्यापारी बनाती हैं।

आपमें संचित शक्तियाँ कितनी हैं? जरूरतके समयके लिये आपने कितनी शक्तियाँ इकट्ठी कर रक्खी हैं? जो व्यक्ति जरूरतके समयके लिये अपनी शक्तियाँ एकत्रित नहीं रखता, वह मूर्ख है।

वे कौन-सी शक्तियाँ हैं, जिनके संचयकी आवश्यकता है। इसके उत्तरमें कहा जायगा कि सर्वप्रथम हमें अपनी प्राणशक्तिका अधिकाधिक संचय करना चाहिये। प्राणशक्तिके द्वारा ही हमारा इस जगत्‌से नाता है। जबतक प्राण तबतक संसार। प्राणोंका जो कोष आपको मिलता है, उसकी रक्षाके लिये सदा-सर्वदा जागरूक रहनेकी आवश्यकता है।

प्राणका अर्थ मनुष्यकी शारीरिक शक्ति, सामर्थ्य और क्रिया-शक्तिका विकास है। मनुष्यके शरीरमें दो प्रधान शक्तियाँ हैं—(१) शरीरका विकास-पोषण एवं क्रियान्वित करनेकी शक्तियाँ, (२) रोगोंसे युद्धकर शरीरको स्वस्थ रखनेकी शक्ति। प्रथम शक्तिके द्वारा हमारे हाथ-पाँव आदि शरीरके सब अवयव अपनी पुष्टि प्राप्त करते हैं, रक्तके द्वारा उनमें बल-ओज-वीर्यका संचार होता है। दूसरी शक्तिसे गंदगी तथा सब प्रकारके विजातीय विषोंका निष्कासन होता है। यह शक्ति हमें जीवनको स्थिर रखनेके हेतु संघर्ष करना सिखाती है। शरीरकी रक्षाके लिये हमें इन दोनों ही शक्तियोंका एक बृहत् संचित कोष अपने पास रखना चाहिये।

स्वस्थ जीवनीशक्तिवाले व्यक्तिके लक्षण इस प्रकार हैं—उसकी त्वचा वीर्ययुक्त लाल स्निग्ध होती है, पाचन शक्ति सुव्यवस्थित होती है, मलद्वारा मल-निष्कासनकी क्रिया सहज, बड़े उत्तम तरीकेसे करता है, नेत्र निर्मल और तेजस्वी रहते हैं, घाव लगनेपर आसानीसे ठीक हो जाता है, निद्रा स्वस्थ और गहरी आती है। हमें चाहिये कि ऋषियोंद्वारा प्रतिपादित सूर्यस्नान, प्राणायाम, उपयुक्त पौष्टिक भोजनद्वारा प्राणशक्तिका संचय करते रहें, वीर्य-नाश न करें। व्यर्थकी छोटी-बड़ी चिन्ताओंमें लगे रहनेसे असंतोष, अतृप्त, विषादमय मनःस्थिति रहनेसे प्राणशक्तिका अपव्यय होता है। मनमें आह्लाद तथा आशाका सुखद वातावरण बनाये रक्खें। जैसे शरीरको पुष्ट करनेसे प्राणशक्ति संचित होती है, वैसे ही निर्भयता, ईमानदारी, प्रसन्नता और आत्मनिर्भरता-जैसे सद्गुणोंको चरित्रमें उतारनेसे प्राणशक्तिको स्थिर रक्खा जा सकता है।

प्राणशक्तिका निरन्तर संग्रह करना चाहिये। यह वह सम्पदा है, जिसकी रक्षासे संसारका सुख हमारे लिये सम्भव है।

अर्थशक्ति अर्थात् संचित पूँजीकी शक्ति महान् है। हम ऐसे सामाजिक युगमें निवास कर रहे हैं, जिसमें हमारे सामाजिक सम्बन्ध अर्थसे संचालित होते हैं। जिसके पास जितनी संचित पूँजी है, समाजमें उसको उतनी ही मान-प्रतिष्ठाका अधिकार है। संचित पूँजीका तात्पर्य है संचित श्रम। जो व्यक्ति श्रमको संचितकर पूँजी-की शक्लमें रखता है, उसके मनमें एक आन्तरिक शान्ति विद्यमान रहती है, जो समय-समयपर उसके काम आती रहती है। हमारे समाजका विधान कुछ ऐसा है कि जबतक जीवन है, तबतक रुपये-पैसेकी आवश्यकता रहती है। यौवनकालकी संचित पूँजी वृद्धावस्था-की एक शक्ति बन जाती है।

जो व्यक्ति अर्थशक्तिको संचित रखता है वह अपने साथ एक ऐसा सेवक रखता है, जो हर समय, हर अवस्था, हर स्थितिमें सेवा-सहायताको प्रस्तुत रहता है। अर्थ एक जीती-जागती शक्ति है। इस सम्बन्धमें बड़ा जागरूक रहनेकी आवश्यकता है। लक्ष्मीको चञ्चला कहा गया है। यह एक व्यक्तिके पास स्थिर नहीं रहती। तनिक-सी असावधानीसे वर्षोंकी संचित पूँजी अनायास ही हाथसे निकल जाती है। इस शक्तिको संचित करनेके लिये अधिक जागरूक रहिये।

ईश्वरकी अनुकम्पा, सहायता, प्रेरणामें विश्वास ऐसी शक्ति है, जो मनुष्यको बाल्यकालसे लेकर मृत्युपर्यन्त सहायता देती है।

आस्तिकवाद हमारी सम्पदा है ! ईश्वरीय सत्तामें निष्ठा हमें सदा-सर्वदा समुन्नत करती और संकटके समय आन्तरिक शान्ति प्रदान करती है । ईश्वर हमारे जीवन तथा कर्मका आदि-स्रोत है, हमारे हृदय-मन्दिरमें प्रकाश करनेवाला तेजःपुञ्ज है, हमारे जीवनमें प्राण और श्वास है । ईश्वरीय आशाविहीन व्यक्ति उस सूखी पत्तीकी तरह है जो विपरीत हवामें यत्र-तत्र मारी-मारी फिरती है । निराशा और वेदनाएँ उसे एक ओर खींचती हैं, तो व्यर्थके प्रलोभन, लोभ, अतृप्ति दूसरी विपरीत दिशामें आकर्षित करती हैं ।

मैं ईश्वरके तेजकी एक रश्मि हूँ । ईश्वरीय सत्तामें मुझे अन्ततः विलीन हो जाना है ! मैं जहाँसे जन्मा हूँ, वहीं पहुँच जाऊँगा । मेरी आत्मा सत्, चित्, आनन्दस्वरूप परमेश्वरका अंश है । मुझमें उस प्रभुके गुण ही प्रकाशित हो सकते हैं । अनीति, अन्याय, अनर्थसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं—ऐसी आस्तिक भावना मनःप्राणमें संचित रखनेवाला व्यक्ति सदा-सर्वदा कमलके समान उत्फुल्ल रहता है ।

संकटमें, विपदामें, निराशाके अवसरोंपर दैवी सत्ताका तादात्म्य आपको वह अन्तर्बल देगा, जिसके द्वारा आप आन्तरिक शक्ति पाते रहेंगे । ईश्वर शक्तिके आदिस्रोत हैं । उनसे हमारी आत्माको सहन-शक्ति प्राप्त होती है । इस अन्तर्बलसे व्यक्ति सब परिस्थितियोंमें बाह्य जगत्के संकटोंसे सुरक्षित रहता है । ईश्वरकी सद्योजनाओंमें अपने विश्वासको निरन्तर बढ़ाते चलिये । पूजन, गायत्री-जप, भजन, संध्या तथा नाना साधनाएँ आपको सदा दैवी-तत्त्वसे संयुक्त रखती हैं ।

शक्तियोंका दुरुपयोग मत कीजिये

सौन्दर्य, शक्ति, यौवन और धन संसारकी चार दिव्य विभूतियाँ हैं। ईश्वरने इन शक्तियोंकी सृष्टि इस मन्तव्यसे की है कि इनकी सहायता एवं विवेकशील प्रयोगके द्वारा मानव सुखी रहे और धीरे-धीरे उत्थान एवं समृद्धिके शिखरपर पहुँच जाय। वास्तवमें इन दैवी विभूतियोंके सदुपयोगद्वारा मनुष्य शारीरिक, बौद्धिक एवं मानसिक शक्तियोंका चरम विकास कर सकता है। मानव-व्यक्तित्वके विकासमें ये पृथक्-पृथक् अपना महत्त्व रखती हैं।

भगवान्के गुण-स्वरूपकी कल्पनामें हम सौन्दर्यशक्ति एवं चिरयौवनको महत्ता प्रदान करते हैं। हमारी कल्पनामें परमेश्वर सौन्दर्यके पुञ्ज हैं, शक्तिके अगाध सागर हैं, चिर-युवा हैं, अक्षय हैं। लक्ष्मी उनकी चेरी हैं। ये ही गुण मानव-जगत्‌में हमारी सर्वतोमुखी उन्नतिमें सहायक हैं। जिन-जिन महापुरुषोंको इन शक्ति-केन्द्रोंका ज्ञान हुआ और जैसे-जैसे उन्होंने इनका विवेकपूर्ण उपयोग किया, वैसे-वैसे उनकी उन्नति होती गयी; किंतु जहाँ इनका दुरुपयोग हुआ, वहीं पतन प्रारम्भ हुआ। वह पतन भी इतना भयंकर हुआ कि अन्तिम सीमातक पहुँच गया और उनका सर्वनाश इतना पूरा हुआ कि बचाव सम्भव न हो सका!

इतिहास इस चिर सत्यका साक्षी है कि सौन्दर्यका दुरुपयोग मानवके रक्तपात, युद्ध, लूट-पाट और संघर्षोंका एक कारण बना है। सुन्दर स्त्रियोंको प्राप्त करनेके हेतु विश्वके इतिहासमें युद्धोंके उदाहरणोंकी कमी नहीं है। सुन्दरी सीता रामायणके युद्ध एवं द्रौपदी महाभारतके युद्धोंका कारण बनी। ट्रायका युद्ध एक सुन्दरीके कारण वर्षों चलता रहा। आजके युगमें भी सुन्दरी स्त्री उत्पातोंका एक कारण मानी गयी है। समाजमें सौन्दर्यके गलत दृष्टिकोणको लेकर आये दिन अनेक प्रकारके झगड़े चला करते हैं।

आजके व्यक्तियोंकी सौन्दर्यभावना केवल ऊपरी चमक-दमक-तक ही सीमित रहती है। वे शारीरिक आकर्षणमात्रको ही सौन्दर्य-का मापदण्ड मानकर उत्पात करते रहते हैं। बाह्य आकर्षण बनाये रखनेके हेतु अपार धन व्यय किया जाता है। इस अत्यधिक शृङ्गार-प्रियताने समाजमें वासना-लोलुपताकी तथा व्यर्थके भयानक अपव्ययकी अभिवृद्धि की है। आज भी निरन्तर यह कार्य हो रहा है। उस सौन्दर्यको जो पानीसे धुलकर नष्ट हो जाता है, लोग सर्वोपरि मान बैठे हैं।

युवकोंमें सौन्दर्यभावनाका निन्द्य स्वरूप बुरी तरह फैला हुआ है। कृत्रिम सुन्दरता बनाकर दूसरोंको ठगा जाता है। बनाव-शृङ्गार कर अपनी त्रुटियों या चरित्रगत दुर्बलताओंपर आवरण डाल लिया जाता है। सौन्दर्यका स्वाँग भरनेवाले, सुन्दर, आकर्षक, वस्त्र तथा चटकीले-भड़कीले वस्त्र पहिननेवाले व्यक्ति प्रायः चरित्रके दुर्बल, स्वभावके रसिक, वासना-लोलुप और चञ्चल प्रकृतिके होते हैं। इनसे न स्वयं अपना भला हो पाता है, न समाजका ही कुछ लाभ

होता है। सुन्दर व्यक्ति कोमलताका स्वाँग करते देखे जाते हैं। किसी भी कष्टसाध्य कार्यमें उनका मन नहीं रमता।

यौवन मनुष्यकी परिपक्वताका समय है। मनुष्यकी सब शक्तियाँ उभरी रहती हैं। मनमें आशा, शक्ति और उत्साह रहता है। मुँहपर मुस्कराहट खेलती रहती है। यौवनमें मन—उचित-अनुचित, जिस ओर झुक जाता है, जीवनभर उसी ओर झुका रहता है। जब ये आदतें पक जाती हैं, तब मनुष्य उन्हें बदल नहीं पाता।

यौवनमें कामभावना (सेक्स) का उभार आता है। मन वासनाओंसे भर जाता है। यदि युवावस्थामें इन वासनाओंका नियन्त्रण न किया जाय या कार्य, कला, अध्ययन, संगीत या अन्य किसी मार्गद्वारा इन्हें निकलनेका मार्ग प्रदान न किया जाय, तो वे गंदे घृणित मार्गोंसे निकलने लगती हैं। वासना एक शक्ति है, जिसका दुरुपयोग मनुष्यको पशुकोटिमें ला पटकता है। पतनकी चरम सीमामें पहुँचनेपर उसे ज्ञान होता है कि उसने अपने मनुष्यत्व, पौरुष, वीर्यका कितना नाश किया!

पथभ्रष्ट युवक सबसे दयनीय जीव है। वह उस अमीरकी तरह है, जो जीवन-सम्पदाको मिट्टीमें मिला रहा है। उसे उन सत्-सामर्थ्योंका ज्ञान नहीं जो उसके चरित्रमें छिपे हैं।

शक्तिका दुरुपयोग मनुष्यको राक्षस बना सकता है। रावण जातिका ब्राह्मण, बुद्धिमान्, तपस्वी राजा था, किंतु शक्तिका मिथ्या दम्भ उसपर सवार हो गया। पण्डित रावण, राक्षस रावण बन गया। उसकी विवेक-बुद्धि क्षय हो गयी। वासना उत्तेजित हो

गयी। वासना तो एक प्रकारकी कभी न बुझनेवाली अग्नि है। जितना उसने वासनाओंकी पूर्ति करनेका प्रयत्न किया, उससे दुगुने वेगसे वह उद्दीप्त हुई। शक्ति उसके पास थी। वासनाकी पूर्तिके लिये रावणने शक्तिका दुरुपयोग किया। अन्तमें अपनी समस्त शक्तियोंके बावजूद रावणका क्षय हो गया। दुर्योधनने शक्तिके दम्भमें अपने सब भाई-बन्धुओंका नाश किया।

मुसलमान शासकोंके असंख्य उदाहरण हमारे सामने हैं। संयमी, कष्ट-सहिष्णु, सतत जाग्रत् रहनेवाले शक्तिसम्पन्न सम्राटोंने बड़े-बड़े राज्योंकी नींव रक्खी। बाबरने अपनी वीरतासे मुगल साम्राज्य-की नींव पक्की की; किंतु उसके पुत्र धीरे-धीरे असंयमी, विलासी, लोलुप बने। फलतः मुगल साम्राज्यका क्षय हो गया।

शक्तिका सदुपयोग किया जाय, तो वह मानवमात्रके लिये कल्याणकारी संस्थाओं, आश्रमों, नये-नये नियमोंका निर्माण करने, समाज-सेवा तथा नारी-जागृतिके पुनीत कार्योंमें प्रयुक्त हो सकता है। दुष्टोंका दमन किया जा सकता है।

शक्तिके दुरुपयोगसे न्यायका गला घुट जाता है, विवेक दब जाता है, मनुष्यको निज कर्त्तव्यका ज्ञान नहीं रहता। वह बुद्धिभ्रष्ट हो जाता है और उसे सत्-असत्‌का अन्तर प्रतीत नहीं होता।

अंग्रेजीमें एक कहावत है, 'सिंहकी तरह बलवान् बनो, किंतु उस शक्तिका पशुओंकी तरह दुरुपयोग न करो।' तुम्हारी शक्तिसे निर्धनोंको आर्थिक सहायता, निर्बलोंको बल, असहायोंको सहारा मिलना चाहिये। इसीमें शक्तिकी उपयोगिता है।

लक्ष्मी जहाँ सुखकी प्राप्तिका साधन है, वह पथभ्रष्ट भी करनेवाली है—

श्रीः सुखस्येह संवासः सा चापि परिपन्थिनी।

(महा० उद्योग० ४२। ४५)

अमीर लोगोंके पुत्र उच्छृङ्खल, अपव्ययी, विलासी और व्यसनी होते हैं। उनके मनमें धनका मद और प्रमाद इतना अधिक छाया रहता है कि उसके कारण उनकी गुप्त शक्तियाँ विकसित नहीं हो पातीं। वे मनके भीतरी स्तरमें सुप्त पड़ी रहती हैं।

धन आलस्य उत्पन्न कर मनुष्यको निकम्मा, निरुत्साह और निश्चेष्ट बना देता है। उच्च वृत्तियाँ वासनाकी आँधीमें दब जाती हैं। जिस धनसे हम समाज-सेवा लोकोपकार, दीनोंको प्रोत्साहन प्रदान कर सकते हैं; वही हमारी वासना-पूर्तिमें स्वाहा होने लगता है। धनकी शक्तिसे मनुष्य उचित-अनुचितकी परवा न कर अपनी इच्छाओंको पूर्ण करना चाहते हैं। दूसरे व्यक्ति धनका लोभ पाकर पतनके समस्त साधन जुटा देते हैं और भोग-विलासकी घातक निद्रामें मनुष्य सो जाता है। धन वह निद्रा है, जिससे धुँधलेमें ज्ञानकी ज्योति भी क्षीण हो जाती है।

अतः उपर्युक्त चारों पदार्थोंका उपभोग बहुत सोच-विचारकर करना चाहिये। उचित उपयोगसे विष भी अमृतका कार्य करता है, जब कि मूर्खके हाथमें अमृत भी विष बन सकता है।

अपनेसे पूछिये आप इस विषको अमृत बना रहे हैं अथवा इस अमृतको विष बनाकर मरनेकी तैयारी कर रहे हैं ?

महानताके बीज

(१)

यूनान देशके थ्रेस प्रान्तमें अब्डेरा नगरमें एक अनाथ बालक लकड़ियाँ काटकर लाता और बाजारमें बेचकर अपना पेट भरता था। दिनभर जीविका-उपार्जनमें ही उसका समय व्यतीत हो जाता था।

एक दिन एक भला आदमी लकड़ियोंके बाजारसे होकर निकला। उसने देखा एक बालक अपने सामने लकड़ियोंका एक छोटा गट्ठड़ रक्खे हुए बेचनेका प्रयत्न कर रहा है। एक बातने उसे विस्मित कर दिया। उसने देखा कि यह गट्ठड़ अन्योंकी अपेक्षा बड़ी सुन्दरता और कलापूर्ण ढंगसे बँधा हुआ था। भला आदमी

तनिक ठहर गया और लड़केकी बुद्धि-परीक्षा लेनेके मन्तव्यसे उसने पूछा—

'लड़के! इस गट्ठड़को तुमने स्वयं बाँधा है?'

'जी हाँ' मैं लकड़ी स्वयं काटता, स्वयं गट्ठड़ बाँधता और प्रतिदिन इस बाजारमें बेचकर जीविका-उपार्जन करता हूँ।'

'क्या तुम इसे खोलकर फिर इसी कलापूर्ण ढंगसे बाँध सकते हो?'

'जी हाँ यह लीजिये अभी बाँधे देता हूँ।'

यह कहते-कहते लड़केने लकड़ीका गट्ठड़ खोल डाला। लकड़ियाँ इधर-उधर बिखेर दीं। फिर तत्परता और सावधानीसे एक बड़ी लकड़ीको आधार बनाकर उसके इधर-उधर छोटी-छोटी लकड़ियाँ सजायीं। अन्तमें वैसे ही सुन्दरतापूर्ण ढंगसे लकड़ियोंका गट्ठड़ बाँध दिया। यह कार्य वह स्फूर्ति और बड़ी लगनसे कर गया। उतनी देरके लिये यह तक भूल गया कि वह किसी व्यक्तिके सम्मुख खड़ा है और कोई उसकी क्रियाओं और आदतोंको सूक्ष्मतासे देख रहा है।

भले आदमीपर इस कलापूर्ण ढंगका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने देखा कि बालकमें छोटे कामको भी पूरी दिलचस्पी और कलापूर्ण ढंगसे पूरा करनेके दुर्लभ संस्कार हैं। ऐसे संस्कारों-वाले व्यक्ति ही विकसित होकर संसारके महापुरुष बनते हैं। उन्होंने सोचा 'इस लड़केके चरित्रमें जो महानताके बीज हैं, उन्हें विकसित होनेका अवसर देना चाहिये। हो सकता है कि यह बालक संसारका कुछ लाभ कर सके।' वे बोले—

'तुम हमारे साथ चलोगे ? हम तुम्हें पढ़ाना चाहते हैं, सम्पूर्ण व्यय, भोजन, निवास आदिका भार हमारे ऊपर रहेगा ।'

बालक कुछ देरतक सोचता रहा । उसकी तीव्र इच्छा थी कि वह किसी प्रकार पढ़े-लिखे । उसने कुछ विद्याध्ययन किया भी था । जीविका-उपार्जनसे जो समय बचता था, उसमें वह कुछ पढ़ा भी करता था । उसने अपनी स्वीकृति दे दी ।

भले आदमीने उस बालकको अपने साथ ले लिया और उसकी सारी शिक्षा-दीक्षाका प्रबन्ध स्वयं किया । वह उसकी आदतोंपर मुग्ध था । स्वयं उसकी शिक्षाकी देख-रेख करते-करते वह बालक विद्वान् बन गया । बड़ा होनेपर वह यूनानका महान् दार्शनिक पैथोगोरस कहलाया और भला आदमी जिसने एक दृष्टिमें बालकके अंदर छिपी हुई महानताको पहचाना था, वह था यूनानका विश्व-विख्यात तत्त्वज्ञानी डेमोक्रीटस !

पैथोगोरसके बचपनके जिस गुणपर डेमोक्रीटस मुग्ध हुआ था, (छोटे कार्योंमें भी पूरी दिलचस्पी और कलापूर्ण ढंगसे महानताका प्रदर्शन) वह देखनेमें साधारण-सा था, पर वास्तवमें महानताका बीज उसीके अंदर छिपा हुआ था । जो मनुष्य अपने छोटे-छोटे कार्योंतकको पूरी रुचि और कलापूर्ण ढंगसे करता है, वह बड़े कार्योंको और भी सावधानीसे पूरा करेगा और प्रशंसनीय होगा । जो छोटे-छोटे कामोंमें भी अपनी महानताकी छाप लगा देता है, दुनिया उसीको महत्त्व प्रदान करती है ।

(२)

महानताके गुणोंके प्रदर्शनके लिये यह आवश्यक नहीं कि बड़े पैमानेपर ही आपके पास सामान हो, या नाना प्रकारकी कला-सामग्री हो, विपुल विस्तार हो। कलाकारकी आत्मामें यदि सच्ची कलात्मकता वर्तमान है, तो वह अल्प साधनोंसे ही अपनी महानताका परिचय देने लगता है।

महात्माजीने एक बार एक लेख लिखा था 'झाड़ू देनेकी कला।' भला झाड़ू देने-जैसे क्षुद्र कार्यमें भी क्या कोई सौन्दर्य हो सकता है? उन्होंने दिखाया कि इस साधारण-से कार्यमें भी सावधानीकी आवश्यकता है।

आप अपने कार्योंको देखिये। सुबहसे शामतक किये जानेवाले कार्योंकी परख कीजिये और फिर स्वयं ही निर्णय कीजिये कि क्या उनमें आपने अपनी छिपी हुई महानताका परिचय दिया है? क्या उससे आपके चरित्रकी कलात्मकता, सुरुचि, सुव्यवस्था और संतुलन प्रकट होता है? क्या आपका कार्य आपके चरित्रके गौरवके अनुकूल है? क्या उससे आपकी असाधारण योग्यता, बुद्धि और सूझ-बूझ प्रकट होती है? क्या उसमें आपके व्यक्तित्वकी विशेषताएँ भरी हुई हैं?

एक बार एक इन्टरव्यू हो रहा था। इन्टरव्यू करनेवाले एक मेजको सामने रक्खे बैठे थे, सामने उम्मीदवारोंके लिये कुर्सियाँ रक्खी हुई थीं। एक-एक कर उम्मीदवार आते थे और कुर्सीपर बैठकर पूछनेवालोंके प्रश्नोंके उत्तर देते थे। उम्मीदवार एक-से-एक

सुन्दर और आकर्षक वस्त्र, चमचमाते हुए पालिशदार जूते डाटे चले जाते थे। एक उम्मीदवार साधारण कपड़े पहिने हुए था। वह जब कमरेमें प्रविष्ट हुआ तो उसने देखा कि सामने मार्गमें एक पुस्तक पड़ी हुई है। उसने उस पुस्तकको उठाया और मेजके एक किनारेपर शिष्टतापूर्वक रख दिया। उसकी यह मनोवृत्ति देखकर इन्टरव्यू करनेवालोंको उसकी सावधानीपर विश्वास हो गया और वह चुन लिया गया। यह एक साधारण-सा कार्य था, पर इसीसे उसके चरित्रकी महानता प्रकट होती थी।

इसी प्रकार हमारी अनेक आदतों, कार्यों, वस्त्रों, शिष्टाचार, व्यवहार आदिसे हमारा व्यक्तित्व प्रकट हुआ करता है। जहाँ हमारी ये आदतें महानता दिखाती हैं, वहीं हमारे आनेवाले पतनकी भी सूचक हो सकती हैं।

मान लीजिये, बाजारमें बढ़िया केले बिक रहे हैं। हमारी तबीअत उनपर चल उठती है, पर जेब खाली! आदत हमारे ऊपर चढ़ बैठती है। दूकानदार हमारी जान-पहचानका है। उधार दे देगा। आइये, खरीद लें। हम मनोविकारपर नियन्त्रण न कर उससे चार केले उधार ले लेते हैं और देखते-देखते खा डालते हैं। केलेवालेके चार आने कितनी कम देरमें हमारे सिर चढ़ जाते हैं। अब उधार देते हुए हमें मन-ही-मन कुछ संकोच-सा होता है। जब कभी केलेवालेके पाससे निकलते हैं, कतरा जाते हैं, बचनेकी कोशिश करते हैं, उधार देना भूल जाते हैं, पैसे देनेको मन नहीं करता। इसी प्रकार छोटी-छोटी चीजें लेनेसे हमारी

उधारकी आदत बढ़ती जाती है । यही बढ़कर हमारे घरबार, जमीन, जायदाद, इज्जत आदिको नष्ट कर डालती है । ऋण आपका घातक शत्रु है, जो तनिक-सी शिथिलतामें आपको ले बैठता है ।

इसी प्रकार और भी गंदी आदतें हैं । आपका मित्र सिगरेट पीता है । आपको भी पेश की जाती है । आप अनचाहे मनसे दो कश लगाते हैं । उन्हीं मित्रोंके साथ आपको यह आदत लग जाती है । सिगरेटके बाद पान, बीड़ी, मद्य इत्यादि एकके बाद एक गंदी आदत आपको शिथिल करती जाती है । आप प्रतिमास १५-२० रुपये पान-बीड़ीवालेको दे डालते हैं । फिर व्यभिचार आकर सर्वस्व नष्ट कर देता है.।

यही बात और मनोविकारोंकी भी है । किसीने हमारा कहना न माना कि हम आवेशमें आकर गरम हो उठे । नाराजीसे हम घर भर डालते हैं । सबको खरी-खोटी सुनाते हैं । क्रोधका भूत हमारे साथ है । हम दूकानदार हैं, तो यह दुष्ट हमारी जिह्वाको उछालकर ग्राहकोंको बहका देता है । वे दूरसे ही भाग जाते हैं । यदि हम अफसर हैं, तो यह हमारे मातहतोंको असंतुष्ट रखता है । यदि हम रेलगाड़ीमें सफर कर रहे हैं, तो यह दुष्ट हमें चैनसे यात्रा नहीं करने देता । ऐसे ही अड़ियल, उत्तेजित या शक्की स्वभाव भी हमारा शत्रु ही है ।

इस प्रकार हमारे चरित्रकी असंख्य छोटी-छोटी भूलें हमें नीचे गिराती रहती हैं । इनपर हम कोई ध्यान नहीं देते, पर वास्तवमें ये ही हमारे चरित्रके वारे-न्यारे करती रहती हैं ।

महानता हमारे चरित्र और स्वभावमें प्रचुरतासे भरी पड़ी है। हमें चाहिये कि इसी पक्षपर मनन-चिन्तन कर इसे विकसित करें। तमोगुण हमारे अन्तःकरणमें मलिनता उत्पन्न करता है, जिससे अशुभ विचार आते हैं। अतः अपने शुद्ध, सत्, चित्, आनन्दस्वरूपका ही ध्यान करना चाहिये। चित्तमें शान्त, पवित्र और उच्च विचारोंको ही दृढ़तासे जमाइये। अपनी महत्ता, अपनी शक्ति, अपने दैवी गुणोंका चिन्तन करनेसे मस्तिष्क बलशाली बनता है और हृदयसे प्रफुल्लताका झरना प्रवाहित होने लगता है। अपने सत्त्वगुणपर विचार करनेसे आत्मबलकी वृद्धि होती है। आपकी सफलता इसी बातपर निर्भय करती है कि आप कितने अंशोंमें अपनी महत्ताका अनुभव करते हैं, अपने प्रति आपका कितना विश्वास है, आप उसको कितना व्यवहारमें प्रत्यक्ष करते हैं।

'उच्च तिष्ठ महते सौभगाय' (अथर्व० २ । ६ । २)

श्रेष्ठ बनना ही महान् सौभाग्य है। जो महानता खोजने और महापुरुष बननेमें प्रयत्नशील है, वही वास्तवमें धन्य है।

डा० दुर्गाशङ्कर नागरने महान् बननेके सूत्र इस प्रकार दिये हैं। एक-एक शब्द ध्यान देने योग्य है—

'क्या तुम संसारमें अपना अमर नाम छोड़ना चाहते हो? यदि ऐसा है तो आजसे ही महत्ताकी, बड़प्पनकी कल्पना अपने मनमें स्थापित कर दो और भावना करो कि तुम दिन-प्रतिदिन उच्च स्थितिमें प्रवेश कर रहे हो........प्रतिक्षण अपनी कल्पना अधिकाधिक पुष्ट करते रहो और निरन्तर दृढ़ प्रयत्नसे अवश्य तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा। प्रत्येक सत्संकल्पमें आत्मशक्ति

ओतप्रोत रहती है । हमारे महान् बननेका कारण हमारी आत्मामें ही विद्यमान है । बाहर कहीं खोजनेकी आवश्यकता नहीं है। मनुष्यकी महत्ताका लक्षण आत्मविश्वास है । महान् लक्ष्योंका चित्र मनमें रखनेसे कल्पना-शक्ति अधिकाधिक दृढ़ होकर विशाल और बलवान् होती है। अपनी आत्माकी विशालताका चिन्तन करो । महानता ही तुम्हारा आदर्श है । अतः अपनी कल्पनाका मानसिक चित्र अपने विषयमें विशाल, महान् एवं सुन्दर बनाओ और दृढ़ प्रयत्न करो।

अपनी महानताके विचार मनमें दृढ़तासे जमा देना मनोभूमिमें महानताके बीज बो देना है । यही विचार-बीज कालान्तरमें अङ्कुरित, पल्लवित और पुष्पित होते हैं और आपकी महत्ताकी छाप आपके कुटुम्बियों, मित्रों, पड़ोसियों और मिलने-जुलनेवालोंपर जमा देते हैं । महानताका आन्तरिक विश्वास आपको आगे ढकेलनेवाली शक्ति है । इसे दृढ़तासे धारण कीजिये । जिस क्षेत्रकी महानता इष्ट हो, उसीका सर्वोत्कृष्ट रूप मनमें धारण कीजिये और अपने दैनिक जीवनसे प्रत्यक्ष कीजिये ।

अपने-आपको तुच्छ समझना एक पाप है, आत्मपतन है । इसके भागी न बनिये । अपना तिरस्कार करना आत्महत्याका ही एक भेद है । अपनेको तुच्छ और नीच समझनेवाला व्यक्ति अपने चरित्रकी सर्वोच्च तथा परमोत्कृष्ट वस्तुकी जड़ काट रहा है । आत्मतिरस्कार-सम्बन्धी प्रत्येक विचार व्यक्तित्वकी शक्ति एवं उन्नतिको नष्ट करनेवाला भयानक मानसिक रोग है ।

उठो, पुरुषार्थ करो !

अप्राप्यं नाम नेहास्ति धीरस्य व्यवसायिनः ।

पुरुषार्थी धीरके लिये कोई भी वस्तु अप्राप्य नहीं ।

भाग्य और प्रारब्ध मनुष्यके गुप्त मनमें एकत्रित नये-पुराने संस्कारोंका परिणाम है । जो संस्कार साधारण हैं, वे प्रत्यक्ष फल देनेवाले नहीं हैं और उन्हें संचित कर्म कहते हैं । इनका एक कोष निरन्तर मनमें रहता है । जो तीव्र और गहरे संस्कार हैं, वे जन्म-जन्मान्तरके फल देनेवाले हैं तथा उन्हींके बलपर जीवको जन्म मिलता है । इन्हीं गहरे संस्कारोंसे प्रारब्ध बनता है और निरन्तर हमें अप्रत्यक्ष-रूपसे प्रभावित किया करता है । इस प्रकार हमारी आयु, पुरुषार्थ एवं उद्योग निश्चित होता है ।

इस शरीरसे हम जो नये संस्कार डालते हैं उन्हें क्रियमाण संस्कार कहते हैं । यदि उनमें हमारा अहं रहता है, तो संचित संस्कारोंमें इनका भी योग बढ़ता जाता है । इनमेंसे प्रबल संस्कारोंके बलपर हमें अगला जन्म प्राप्त होगा । इस प्रकार संस्कार मिलते रहते हैं और नये-नये शरीर बनते जाते हैं ।

शरीरसे यह प्रारब्ध लेकर हम जगत्‌में आते हैं । कुछ व्यक्तियोंके पास अच्छा भाग्य नहीं होता । इन्हें अपने पुष्ट और दृढ़ प्रयत्नोंसे कार्य लेना पड़ता है । इसे पुरुषार्थ कह सकते हैं । इसे दूसरे रूपमें यों कह सकते हैं कि विश्वमें तीन प्रमुख शक्तियाँ हैं—एक उत्पन्न करनेवाली, दूसरी पोषण करनेवाली, तीसरी संहार करनेवाली । इन तीनों

शक्तियोंको ब्रह्मा, विष्णु, महेश कह सकते हैं । इन शक्तियोंके और छोटे-छोटे भागोंकी कल्पना की गयी है। जिन्हें तैंतीस करोड़ देवता कहते हैं। इनका संकेत हमारे ऋषि-मुनियोंने किया है। इन असंख्य शक्तियोंसे कार्य लेनेको पुरुषार्थ कहते हैं। मन्त्रोंद्वारा भी इन शक्तियोंको अपने अनुकूल किया जा सकता है। इसे भी पुरुषार्थ कहते हैं।

प्रारब्ध संस्कार (संचित संस्कार नहीं) प्रेरणाके अनुसार सत्त्वगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी वृत्तिके अनुसार उद्यम चुनेंगे । आजन्म कार्य करेंगे और स्वभावके अनुसार उसी उद्यमका कम या अधिक फल प्राप्त होगा। सत्त्वगुणीका सम्बन्ध दैवी शक्तियोंके साथ है, अतः उसे सर्वाधिक फल मिलेगा; रजोगुणीको मध्यम फल प्राप्त होगा। तमोगुणीको न्यून फल प्राप्त होगा। रजोगुणी और सत्त्वगुणीको जो फल होगा, वह थोड़े-बहुत अन्तरसे समान-सा होगा, पर रजोगुणी असंतुष्ट बना रहेगा। पुरुषार्थसे निर्बल संस्कार नष्ट किये जा सकते हैं और तीव्रतर संस्कारोंसे बहुत कुछ बदला जा सकता है।

उद्योग एक साधारण प्रयत्नमात्र है। जीवन-यात्राको सुखद और स्तर ऊँचा करनेके सब प्रयत्न उद्योगमें शामिल हैं।

पुरुषार्थहीन व्यक्तिको लक्ष्मी प्राप्त नहीं होती। निठल्ले और आलसी एक प्रकारके पापी हैं; क्योंकि वे अपने पुरुषार्थका हनन करते हैं। उद्यमीका मित्र परमेश्वर है। उद्यम करनेसे अर्थात् मन, बुद्धि और शरीरसे निरन्तर कार्य लेनेसे मनुष्यके पुरुषार्थका विकास होता है।

जो चलता रहता है अर्थात् सक्रिय और प्रगतिशील जीवन

व्यतीत करता है, उसका शरीर और जाँघें पुष्ट होती हैं। फल-प्राप्तिमें उसकी आत्मा संतुष्ट होती है। पुरुषार्थीके पाप, दुश्चिन्ताएँ और भय पसीनेके साथ बह जाते हैं। पुरुषार्थ कर्मयोगीकी प्रार्थना है।

जो सब ओरसे प्रयत्न-विहीन, भयग्रस्त या आलस्यमें बैठ गया है, निश्चय जानिये, उसका भाग्य भी बैठ जाता है। जो मजबूतीसे श्रम करने और जीवन-संघर्षमें युद्ध करनेको तैयार है, उसका भाग्य भी खड़ा हो जाता है, सोनेवालेका भाग्य भी सो जाता है जब कि पुरुषार्थीका भाग्य निरन्तर गतिशील रहता है।

प्रकृतिकी ओर देखिये। उन्नत और आकर्षक प्रतीत होनेवाले सब प्राणी भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। मधुमक्षिका पुरुषार्थसे असंख्य पुष्पोंपर विचरणकर कण-कणसे मधु संचय करती है। पक्षी एक वृक्षसे दूसरे वृक्षपर उड़-उड़कर अपने प्रयत्नोंके ही फल चखते हैं। न उनके बाल-बच्चे ही कुछ देते हैं और न अनाजके कोठे ही भरे हुए हैं। प्रतिदिन पुरुषार्थका सहारा लेकर वे पंख फड़फड़ाते हैं और परमेश्वर उनके सच्चे प्रयत्नोंका उपहार प्रदान करते हैं। सूर्यके पुरुषार्थको देखिये—चलते-चलते थकनेकी बात कभी मनमें नहीं लाता। उसका जीवन पुरुषार्थका ज्वलन्त उदाहरण है। सरिताएँ नित्य नये वेग और उत्साहसे प्रवाहित होती रहती हैं। फिर आप निराश क्यों? आप अपनी महत्त्वाकांक्षाओंका क्यों दम घोट रहे हैं? अपने शरीर और इन्द्रियोंको क्यों अशक्त बना रहे हैं?

उठो, पुरुषार्थ करो। अपने लक्ष्यकी ओर सीधे चले चलो।

पुरुषार्थ कीजिये !

मनुष्य संसारमें सबसे अधिक गुण, समृद्धियाँ, शक्तियाँ लेकर अवतरित हुआ है। शारीरिक दृष्टिसे हीन होनेपर भी परमेश्वरने उसके मस्तिष्कमें ऐसी-ऐसी गुप्त आश्चर्यजनक शक्तियाँ प्रदान की हैं, जिनके बलसे वह हिंस्र पशुओंपर भी राज्य करता है, दुष्कर कृत्योंसे भयभीत नहीं होता, आपदा और कठिनाईमें भी वेगसे आगे बढ़ता है।

मनुष्यका पुरुषार्थ उसके प्रत्येक अङ्गमें कूट-कूटकर भरा गया है। मनुष्यकी सामर्थ्य ऐसी है कि वह अकेला समयके प्रवाह और गतिको मोड़ सकता है। धन, दौलत, मान, ऐश्वर्य, सब पुरुषार्थद्वारा प्राप्त हो सकते हैं।

अपने गुप्त मनसे पुरुषार्थका गुप्त सामर्थ्य निकालिये। वह आपके मस्तिष्कमें है! जबतक आप विचारपूर्वक इस अन्तःस्थित वृत्तिको बाहर नहीं निकालते तबतक आप भेड़-बकरी बने रहेंगे। जब आप इस शक्तिको अपने कर्मोंसे बाहर निकालेंगे, तब प्रभावशाली बन सकेंगे।

संसारके चमत्कार कहाँसे प्रकट हुए? संसारके बाहरसे नहीं आये और ब्रह्मशक्ति आकर उन्हें प्रस्तुत नहीं कर गयी है। उनका जन्म मनुष्यके भीतरसे हुआ था। संसारकी सभी शक्तियाँ, सभी गुण, सभी तत्त्व, सभी चमत्कार मनुष्यके मस्तिष्कमेंसे निकले हैं। उद्गमस्थान हमारा अन्तःकरण ही है।

संसारमें छोटे-मोटे लोगोंके तुम क्यों गुलाम बनते हो? क्यों मिमियाते, झींकते या बड़बड़ाते हो? दुःख, चिन्ता और क्लेशोंसे क्यों विचलित हो उठते हो? नहीं, मनुष्यके लिये इन सबसे घबरानेकी कोई आवश्यकता नहीं। वह तो अचल, दृढ़, शक्तिशाली और महाप्रतापी है।

इसी क्षणसे अपना दृष्टिकोण बदल दीजिये। अपने आपको महाप्रतापी, पुरुषार्थी पुरुष मानना शुरू कर दीजिये। तत्पर हो जाइये। सावधानीसे अपनी कमजोरी और कायरता छोड़ दीजिये। बल और शक्तिके विचारोंसे आपका सुषुप्त अंश जाग्रत् हो उठेगा।

सामर्थ्य और शक्ति आपके अंदर है। बलका केन्द्र आपका मस्तिष्क है। वह नित्य स्थायी और निर्विकार है, फिर किस वस्तुके

अभावको महसूस करते हैं ? किस शक्तिको बाहर ढूँढ़ते फिरते हैं ? किसका सहारा ताकते हैं ? अपनी ही शक्तिसे आपको उठना और उन्नति करनी है । उसीसे प्रभावशाली व्यक्तित्व बनाना है । आपको किसी भी बाहरी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है । आपके पास पुरुषार्थका गुप्त खजाना है । उसे खोलकर काममें लाइये ।

मनुष्यको संसारमें महत्ता प्रदान करनेवाला पुरुषार्थ ही है । उसीकी मात्रासे एक साधारण तथा महान् व्यक्तिमें अन्तर है । पुरुषार्थकी वृद्धिपर ही मनुष्यकी उन्नति निर्भर है । सामर्थ्यसम्पन्न मनुष्य ही सुख, सम्पत्ति, यश, कीर्ति एवं शान्ति प्राप्त कर सकता है ।

पुरुषार्थका निर्माण कई मानसिक तत्त्वोंके सम्मिश्रणसे होता है । (१) साहस—इन सबमें मुख्य है । नये कार्योंमें तथा कठिनाईके समय हमें कोई भी बाह्य शक्ति आश्रय प्रदान नहीं कर सकती । साहसी वह कार्य कर दिखाता है जिसे बलवान् भी नहीं कर पाते । साहसका सम्बन्ध मनुष्यके अन्तःस्थित निर्भयताकी भावनासे है । उसीसे साहसकी वृद्धि होती है । (२) दृढ़ता—दूसरा तत्त्व है जो पुरुषार्थ प्रदान करता है । दृढ़ व्यक्ति अपने कार्योंमें खरा और पूरा होता है । वह एकाग्र होकर अपने कर्तव्यपर डटा रहता है । (३) महानताकी महत्त्वाकांक्षा पुरुषार्थीको नवीन उत्तरदायित्व—जिम्मेदारी अपने ऊपर लेनेका निमन्त्रण देती है और मुसीबतमें धैर्य एवं आश्वासन प्रदान करती है । स्वेट मार्डन साहबके अनुसार बड़प्पनकी भावना रखनेसे हमारी आत्माकी सर्वोत्कृष्ट शक्तियोंका विकास होता है, वे जाग्रत् हो जाती

हैं। इस गुणके बलपर पुरुषार्थी जिस दिशामें बढ़ता है, उसीमें ख्याति प्राप्त करता चलता है। वह अपने महत्त्वको समझता है और अपनी सभी शक्तियोंके द्वारा सदा आत्मतत्त्वको बढ़ाता रहता है।

धीमन्तो वन्द्यचरिता मन्यन्ते पौरुषं महत्।
अशक्ताः पौरुषं कर्तुं क्लीबा दैवमुपासते॥

अर्थात् 'वन्दनीय चरित्रवाले बुद्धिमान् जन पुरुषार्थको ही प्रधान मानते हैं और जो नपुंसक एवं पुरुषार्थहीन जन हैं, वे भाग्यकी ही उपासना करते हैं।'

और भी कहते हैं—

उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥

अर्थात् 'उद्यम अथवा पुरुषार्थसे सम्पूर्ण कार्य सफल होते हैं मनोरथसे नहीं; क्योंकि सोते हुए सिंहके मुखमें मृग प्रवेश नहीं करते।' इससे सिद्ध होता है कि पुरुषार्थ श्रेष्ठ है।

गोस्वामी तुलसीदासजी अपने रामचरितमानसमें लिखते हैं—

दैव दैव आलसी पुकारा।

अर्थात् भाग्यको पुरुषार्थहीन लोग पुकारा करते हैं।

भगीरथके पिताने गङ्गाजीको लानेका बहुत प्रयत्न किया; किंतु वे सफल न हुए। उनके पुत्र भगीरथ भाग्यपर निर्भर न रहते हुए पुरुषार्थद्वारा पतितपावनी गङ्गाजीको अपने पितरोंको तारनेके लिये लानेमें समर्थ हुए। इससे सिद्ध होता है कि पुरुषार्थसे सब कुछ सिद्ध होता है।

तू स्वयंप्रकाश है,
तू स्वयं आनन्द है,
तू स्वयंदृष्ट, सर्वपरिपूर्ण है,
तू पूर्ण और स्वतन्त्र है,
शिवानन्द कहते हैं—
मृत्यु तुझे छू नहीं सकती,
तू देश, काल, वस्तुसे अतीत है,
कह चिदानन्दरूप शिवोऽहं शिवोऽहम् ।

तू शरीरसे भिन्न है

हे राम ! तू अमर आत्मा है,
सर्वव्यापक, अक्षर, अमर है,
यह शरीर नारियलकी खालके सदृश है,
नारंगीके छिल्केकी नाईं है ।
तू तीनों शरीरोंसे भिन्न है,
तू पंचकोषोंसे भिन्न है,
तू तीनों अवस्थाओंका साक्षी है,
तू बुद्धिका साक्षी है ।
नेति-नेति साधनाका अभ्यास करो,
अपवाद युक्तिके सहारे
उपाधियोंका परित्याग करो,
सार तत्त्वको प्राप्त करो,

आलस्य न करना ही अमृत पद है

बुद्ध भगवान्‌ने एक स्थानपर कहा है कि 'अप्रमाद ही अमृत पद है।' अप्रमाद अर्थात् आलस्य न करना ही उन्नतिके इच्छुकके लिये श्रेष्ठ है। आलस्य करनेसे बड़े-से-बड़े शक्तिशाली व्यक्ति, सम्पन्न व्यापारी, समृद्ध देश, समुन्नत जातियाँ विनष्ट हो जाती हैं। कारण, आलस्यसे मनुष्यका मन, बुद्धि और शरीर—तीनों ही दुर्बल बन जाते हैं और उच्च शक्तियाँ पंगु हो जाती हैं।

गीतामें कहा है—**'श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः'** कार्यमें तत्पर, संयमी एवं श्रद्धालुको ही ज्ञान प्राप्त होता है। जो आलस्यमें

जीवन व्यतीत नहीं करता और निरन्तर कर्तव्य-रत रहता है, उसे दीर्घायु प्राप्त होती है।

आलसी व्यक्तिके लिये किसी भी प्रकारकी उत्कृष्टता प्राप्त करना कठिन है। कारण, वह अपनी शक्तियोंको आलस्यकी केंचुलीमें ढके रहता है। उद्योग तथा परिश्रमद्वारा उन्हें विकसित नहीं कर पाता। जबतक उद्योग नहीं, परिश्रममें प्रवृत्ति नहीं तबतक शक्तियोंका विकास नहीं हो सकता। आलस्य और उन्नति साथ-साथ नहीं चल सकते।

आलस्य एक प्रकारका अन्धकार है, जो आत्मापर, शक्तियोंपर और मनुष्यकी भावी उन्नति एवं प्रगतिपर तुषारापात कर देता है। आलसी पड़ा-पड़ा यही सोचा करता है कि मेरा काम कोई अन्य व्यक्ति कर दे, मेरी तरक्की करा दे। बाजारसे मेरे घरकी नाना वस्तुएँ ला दे; दफ्तरका काम भी अन्य कोई साथी ही कर दे। आलसी अफसर अपने छोटे मातहतोंके वशमें रहते हैं। वे जो पत्र या ड्राफ्ट लिख देते हैं, उसीपर हस्ताक्षर कर देते हैं। ठीक है या गलत, उचित है या अनुचित, क्या बातें लिख दी गयी हैं, यह भी नहीं देखते। बड़े-बड़े व्यापारियोंके दिवाले प्रायः उनके हिसाब-किताब, आय-व्ययका ठीक ब्योरा न रखनेके कारण निकलते हैं। वे उधारपर उधार दिये जाते हैं, पर उसे वसूल करनेमें आलस्य करते रहते हैं। रकमें उत्तरोत्तर बढ़ती जाती हैं और अन्तमें सारी पूँजी ही उधार-वालोंमें बँट जाती है। आलसी माता-पिता अपने बच्चोंकी पढ़ाई-लिखाई, उन्नति आदिको नहीं देखते। फलतः बच्चे उतनी उन्नति नहीं कर पाते, जितनी वस्तुतः उन्हें करनी चाहिये। यदि वे अपना

आलस्य छोड़कर उनपर एक तीखी दृष्टि रक्खा करें, स्वयं भी काममें अपना सहयोग देते रहें, तो पर्याप्त प्रगति हो सकती है ।

प्रकृतिको देखिये, उसका काम कैसा नियमबद्ध होता है । प्रत्येक वस्तु अपना-अपना निर्धारित कार्य निश्चित समयपर करती चलती है । आलस्यका नाम-निशानतक नहीं । आलसी सदस्योंके प्रति प्रकृति बड़ी निष्ठुर है । आलसीकी बड़ी दुर्गति होती है । अन्तमें सजाके तौरपर वहाँ मृत्युदण्ड तकका विधान है । प्रकृतिका प्रत्येक सदस्य अन्ततक अपना काम सक्रियतासे करता है ।

पशु-पक्षियोंमें भी आलस्यको स्थान नहीं है । मधुमक्खियोंके छत्तेमें नर मक्खीका कार्य केवल संतानोत्पत्ति मात्र है । वह कोई कार्य नहीं करता । बैठा-बैठा खाता है । आलसी-अकर्मण्य पड़ा रहता है । आप जानते हैं, उसे इसकी क्या सजा मिलती है ? तिरस्कार और व्यंग्य, ठोकरें और अन्तमें मृत्यु । मादा मक्खियाँ दिनभर जी तोड़कर परिश्रम करती हैं, कुछ-न-कुछ मधु संचित करती जाती हैं । फलतः उनके छत्तेमें समृद्धिका भंडार बना रहता है । पर्याप्त संग्रह होनेपर भी वे आलस्य नहीं करतीं । उनका श्रम उसी रफ्तारसे चलता रहता है । अन्य पशुओंमें भी आलसी पशु-पक्षियोंकी दुर्गति है ।

अब मनुष्योंके समाजकी ओर देखिये । उद्योगी और परिश्रमी व्यक्ति ही आपको सुखी और समृद्ध दिखायी देंगे । मनुष्यका जन्म भले ही निर्धन परिवारमें हो, उसके पास जातिश्रेष्ठता या घरकी जमीन-जायदाद कुछ भी न हो, केवल उद्योग और श्रमकी आदतें

हों, आलस्यसे मुक्त हो, तो वह धनाढ्य और कीर्ति प्राप्त कर सकता है ।

कीर्ति और लक्ष्मी—श्रम और उद्योगके आधीन हैं । जो आलस्य नामक शिथिल करनेवाली और शक्तियोंको पंगु बनानेवाली आलसी वृत्तिको छोड़ेगा, वह निश्चय ही यश, प्रतिष्ठा और कीर्ति प्राप्त करेगा ।

आलस्य एक प्रकारका तमोगुणसे उत्पन्न विकार है । बहुत-से मनुष्य अनाप-शनाप, भक्ष्य-अभक्ष्य अनेक पदार्थ बड़ी तादादमें भक्षण कर लेते हैं । अधिक भोजनसे उन्हें निद्रा बहुत सताती है । राक्षसों-की तरह पड़े-पड़े सोया करते हैं, अकर्मण्य बन जाते हैं और अपने दैनिक कर्तव्योंका भी पूरी तरह पालन नहीं कर पाते । दफ्तरमें, दूकानमें अपने वायदोंमें तमोगुणी व्यक्ति सदा पिछड़ा रहता है । जैसे सर्प केंचुलिमें लिपटकर निष्क्रिय हो जाता है, एक स्थानपर पड़ा रहता है, वैसे ही आलस्यमें फँसकर हमारा मन थोड़ी देरके लिये कामसे दूर भागता है । बस पड़े रहें, कुछ न करें, यही तबियत चाहती है । आपने अजगर देखा है । उसका बहुत बड़ा शरीर है । पूरेके पूरे जानवर निगल जाता है और फिर पड़ा-पड़ा सोया करता है । दस-दस दिन सोते हुए व्यतीत हो जाते हैं । सोते हुए उसपर नाना विपत्तियाँ आती रहती हैं । इन्द्रियसुख, अधिक भोजन, विषय-भोग, बलात्कार, व्यभिचार, अहंकार, क्रूरता, निष्ठुरता—इन सब बुरे विकारोंका सम्बन्ध आलस्यसे है । फालतू पड़ा हुआ दिमाग शैतान-का घर है—यह सत्य अंक है । आलसी पड़ा-पड़ा बुरी वृत्तियोंका

शिकार बनता जाता है। उसकी आसुरी वृत्तियाँ उद्दीप्त हो उठती हैं। भोगकी इच्छा ही उसमें निरन्तर बढ़ती जाती है। आलसी इस कर्म-क्षेत्रके लिये तो किसी कामका रहता ही नहीं, उच्च जीवन, त्याग, प्रेम, तप, संयम भी नहीं साध पाता। आलस्य और परमार्थका वैर है। आलसी व्यक्ति नालीके कीड़ेकी तरह वासना-सुखको ही जीवनका लक्ष्य मानता रहता है।

संसारके इतिहासको उठा देखिये। वे जातियाँ नष्ट हो गयीं, जो आलसी और विलासी बनीं। जिस जाति और समाजमें आलस्य भर जाता है—वह यश, प्रतिष्ठा और नेतृत्व—तीनों ही दिशाओंमें अवनतिके मार्गपर अग्रसर होती जाती है। इन्द्रिय-सुख, विलास और आलस्य—उसको जर्जर तथा अशक्त कर देते हैं।

एक विद्वान्‌ने सत्य ही लिखा है, 'सर्वतोमुखी उन्नतिके लिये यह जरूरी नहीं है कि मनुष्य धनी हो अथवा उसके पास सब प्रकारके साधन मौजूद हों। यदि ऐसा होता, तो संसार उन सब युगोंमें उन मनुष्योंका ऋणी न होता, जिन्होंने निम्न श्रेणीसे उन्नति की है। जो मनुष्य आलस्य और ऐश-आराममें अपने दिन बिताते हैं, उनको उद्योग अथवा कठिनाइयोंका सामना करनेकी आदत नहीं पड़ती और न उनको उस शक्तिका ज्ञान होता है, जो जीवनमें सफलता प्राप्त करनेके लिये परम आवश्यक है। गरीबीको लोग मुसीबत समझते हैं, परंतु वास्तवमें बात यह है कि यदि मनुष्य दृढ़तापूर्वक अपने पैरोंपर खड़ा रहे तो वह गरीबी उसके लिये आशीर्वाद हो सकती है। गरीबी मनुष्यको संसारके युद्धके लिये तैयार करती है, जिसमें यद्यपि

कुछ लोग नीचता दिखाकर विलासप्रिय हो जाते हैं, परंतु समझदार और सच्चे हृदयवाले मनुष्य बल और विश्वासपूर्वक लड़ते हैं और सफलता प्राप्त करते हैं ।'

आजका मनुष्य समय न मिलनेकी बड़ी शिकायत किया करता है । अध्ययन, समाचारपत्रका पठन-पाठन, पूजा-पाठ, सद्ग्रन्थावलोकन या प्रातःभ्रमण इसलिये नहीं करते; क्योंकि उनकी रायमें उन्हें इन कार्योंके लिये अवकाश ही नहीं मिलता । वास्तवमें ये व्यक्ति अपना अधिकांश समय आलस्यमें ही खो देते हैं । फुरसतमें अमुक काम करूँगा, अवकाश मिलनेपर अमुकसे मिलने जाऊँगा; पूजा शुरू करूँगा, जप-प्रार्थना इत्यादि प्रारम्भ करूँगा, अमुकको पत्र लिखूँगा—पर आलसी वृत्ति उन्हें निरन्तर टालती ही रहती है । ठोस काम करनेका अवसर ही नहीं आता । टालनेसे उत्साह मन्द पड़ जाता है और फल यह होता है कि आवश्यक कार्य भी सम्पन्न नहीं हो पाते ।

मान लीजिये आप प्रातः छः बजे उठनेके आदी हैं । यदि आलस्य त्यागकर आप किसी प्रकार प्रातः पाँच बजे उठ जाया करें, तो एक घंटा जीवनका और मिल सकता है । महीनेमें तीस घंटे मिल गये । अब यदि इन तीस घंटोंमें कोई नया काम प्रारम्भ किया जाय, तो निश्चय ही आप संसारको कोई नयी वस्तु देकर अपना नाम चिरस्थायी बना सकते हैं ।

प्रसिद्ध विचारक श्रीअगरचन्द नाहटाने आलस्यके इस पक्षपर विचार करते हुए लिखा है—'जो कार्य अभी हो सकता है, उसे घंटों बाद करनेकी मनोवृत्ति आलस्यकी निशानी है । एक कार्य हाथ-

में लिया और करते चले गये, तो बहुत-से कार्य पूर्ण हो सकेंगे । पर
बहुत-से काम एक साथ लेनेसे किसे पहले किया जाय, इसी दुविधामें
समय बीत जाता है और एक भी कार्य पूरा और ठीकसे नहीं हो
पाता है । अतः जो कार्य आज और अभी हो सकता है, उसे कलके
लिये न छोड़ तत्काल कर डालिये । दूसरी बात ध्यानमें रखनेकी यह
है कि एक साथ अधिक कार्य हाथमें न लिये जायँ; क्योंकि किसी
भी कार्यमें पूरा मनोयोग एवं उत्साह न रखनेसे सफलता नहीं मिल
सकेगी । अतः एक-एक कार्यको हाथमें लिया जाय और क्रमशः सब-
को कर लिया जाय, अन्यथा सभी कार्य अधूरे रह जायेंगे और पूर्ण
हुए बिना किसी भी कामका फल नहीं मिल सकता । जैन ग्रन्थोंमें
बाधा डालनेवाली तेरह बातोंमें आलस्य पहली है । बहुत बार बना-
बनाया काम तनिकसे आलस्यके कारण बिगड़ जाता है । क्षण-
मात्र भी प्रमाद न करनेका भगवान् महावीरने उपदेश दिया है । अतः
पुनः विचारकर प्रमादका परिहार कर कार्यमें उद्यमशील होना परमा-
वश्यक है । जैन-दर्शनमें प्रमाद निकम्मेपनके ही अर्थमें नहीं है,
परंतु समस्त पापाचरणके आसेवनके अर्थमें भी है । पापाचरण करके
जीवनके बहुमूल्य समयको व्यर्थ न गँवाइये । आत्माकी शक्तिका ठीक
तरह उपयोग नहीं होता, तो पापाचारी व्यक्ति उसका दुरुपयोग
करता है ।'

आलस्यसे मुक्त कैसे हों ? पहले तो आलस्यके विरोधमें मनमें
दृढ़ संकल्प कीजिये कि 'हम अपने चरित्रमें आये हुए आलस्यको अवश्य
दूर करेंगे, जब आलस्य आकर हमारे मन और इन्द्रियोंको शिथिल

करेगा, हम फौरन सचेत हो जायँगे। समयका उचित उपयोग करेंगे'— मनमें यह धारणा जम जानेके बाद सक्रियताकी आवश्यकता है।

मान लीजिये आपने निश्चय किया है कि आप बड़े तड़के चार बजे ही उठ बैठेंगे। शौचादि-व्यायाम-स्नान-पूजन-प्रार्थना आदि नित्य-कर्म एक घंटेमें समाप्त करके और पाँच बजे ही अपने दैनिक कार्यमें पूर्ण मनोयोगसे जुट जायँगे।

किंतु, जब आप प्रातःकाल शय्यात्याग करनेका प्रयत्न करेंगे, तो मनका शैथिल्य आपको कुछ देर और सोये पड़े रहनेके लिये खींचेगा। शरीर कोमल शय्यापर पड़ा रहना चाहेगा। यही आपकी परीक्षाका क्षण है। फौरन उठ पड़िये और आलस्य नामक राक्षसको पछाड़ दीजिये। जिस कठिन कार्यको करनेके लिये तबियतमें आलस्य उत्पन्न हो, उसे जरूर किया कीजिये। मान लीजिये, आप मनमें यह अनुभव करते हैं कि अमुक व्यक्तिसे मिलने जाना आवश्यक है, तो मनको मोड़कर जरूर यह काम कीजिये। जिन-जिन पत्रोंका उत्तर लिखना है, अवश्य ही उनका उत्तर लिखिये। लिखनेमें आलस्य कभी न कीजिये।

सम्भव है आपको मानसिक श्रमसे आलस्य हो। आप कठिन विषयोंके अध्ययनमें चित्तको एकाग्र न कर पाते हों। दिलबहलावकी कहानियों, पुस्तकों, उपन्यासों या कामुक रुचि बढ़ानेवाले साहित्यमें ही दिलचस्पी लेते हों, यदि ऐसा है तो मनको दृढ़तासे इन रसीले घातक विषयोंसे हटाइये और यथार्थ ज्ञानप्रद गम्भीर विषयोंमें दिलचस्पी लेनेवाला बनाइये। सब ओरसे मन हटाकर एक ही विषयपर देरीतक मनको केन्द्रित कीजिये। जो समय आपने उक्त

विषयके अध्ययनके लिये निश्चित किया है, उतनी देर अवश्य पढ़िये अन्यथा एक बार शैथिल्य आनेसे आदत और अनुशासन भङ्ग हो जायगा और निश्चय बल भी कम हो जायगा।

हमें फासिस्ट-शिक्षा-पद्धतिकी कुछ उपयोगी बातें विशेषतः उनका अनुशासन और किसी समय भी बेकार न बैठनेका नियम अवश्य अपने राष्ट्रीय चरित्रमें उतारना चाहिये। तभी लोकतन्त्रकी रक्षा हो सकेगी। बालकोंको अभ्यास कराना चाहिये कि वे अपना-अपना दैनिक कार्य करें। वस्तुओं और विशेषतः कपड़ोंको सफाईसे तह करके रक्खें, जूतोंको पालिश करें, वस्तुओंको उनके लिये नियत स्थानोंपर ही रक्खा करें।

आलस्य एक प्रकारकी बुरी आदत मात्र है। मन, शरीर, दिमाग, वाणी—सभी प्रकारके आलस्य हमारी आदतोंके परिणाम हैं। यदि माता-पिता आरम्भसे ही बच्चोंमें अनुशासन रक्खें और उनका मानसिक और शारीरिक कार्य सतर्कतासे करानेकी आदतें डालें तो एक पीढ़ी ही सुधर सकती है।

स्मरण रखिये निकम्मेपन और आलस्यमें भी एक प्रकारका घृणित आकर्षण है। सैकड़ों व्यक्ति आलस्यके गन्दे कूपमें पड़े हैं और उसीको श्रेष्ठ समझ रहे हैं। उन्हें अपने जीवनसे अधिक-से-अधिक कार्य लेनेके लिये कमर कसकर तैयार हो जाना चाहिये।

'आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महारिपुः।'

अर्थात् मनुष्योंका शरीरमें रहनेवाला सबसे बड़ा शत्रु आलस्य ही तो है।

विषम परिस्थितियोंमें भी आगे बढ़िये

मानव-जीवन परिस्थितियोंसे तो प्रभावित होता ही है—बनता-बेगड़ता और सजता-सँवरता है, किंतु फिर भी मानवको—सृष्टिके सर्वोत्तम प्राणीको—परिस्थितियोंके हाथकी कठपुतली या 'परिधि-जीव' मानना भूल है। मानवने नूतन परिस्थितियोंके निर्माण और विषम परिस्थितियोंपर विजय प्राप्त करनेमें सदा पहले कदम उठाया है। परिस्थिति-विजेता और नवयुगके प्रणेताको ही तो हम महापुरुष कहते हैं। हमारा आरण्यक दर्शन भी यही कहता है कि प्रकृति और पुरुषमें सदा संघर्ष ही न देखो, सहयोग और समन्वयात्मक सतत चेष्टाद्वारा समुन्नतिकी कामना करो—साधन है दृढ़ संकल्प-शक्ति। **'सतां सत्त्वे सिद्धिर्भवति महतां नोपकरणे'** ही अनुकरणीय सिद्धान्त है।

एक व्यक्ति किसी यात्रापर जानेकी सोच रहा था। कुछ चिन्तन

करनेके पश्चात् उसके मनमें आया कि मुझे खाने-पीने, खाद्य-सामग्रियोंको एकत्र करने, वस्त्र इत्यादि मोल लेने तथा थोड़े दिनोंके लिये विश्राम करने, गृह इत्यादिकी व्यवस्थाके लिये धनकी आवश्यकता है। यात्रासे पूर्व कुछ धन संचय कर लेना चाहिये। वह धन एकत्रित करनेमें संलग्न हो गया। वह सुबहसे शामतक अर्थ अर्जित करता, भोजन-वस्त्रोंमें व्यय करनेके पश्चात् कुछ संग्रह करता और यात्राके लिये अन्य आवश्यक वस्तुओंको इकट्ठा करने लगा। एक मासतक परिश्रम कर जब उसने अपना संचित कोष देखा तब उसे ऐसा लगा कि यह एकत्रित किया हुआ धन यात्राके लिये बहुत कम है। उसने पुनः वे ही कार्य जारी रक्खे। कुछ अन्य वस्तुएँ भी खरीदीं। साधारण-सी झोपड़ी बना ली, किंतु दूसरे मासमें भी उसके मनकी फिर वही स्थिति थी। अभी वस्तुएँ, धन और यात्राके उपकरण कम थे। उसने बहुत सोच-विचार कर यह तय किया कि यात्राके व्यय-भारको सम्हालनेके लिये एक वर्षतक परिश्रम और धन-संचय करनेकी आवश्यकता है। वह पुनः दुगुने उत्साहसे धन तथा अन्य उपकरणोंके संग्रहमें संलग्न हो गया। दिन-रात परिश्रम करता रहा; अपनी आत्मिक उन्नतिको भूल गया। शारीरिक सम्पदाको भी नष्ट करता गया। दूसरे वर्षमें फिर लेखा-जोखा देखनेके पश्चात् उसे उसी अभावका भान हुआ। अभी धन-सम्पदा, सांसारिक उपकरण, वस्तुएँ, घर-बार अपर्याप्त हैं। अभी और चाहिये। अभाव दूर करते-करते उसके जीवनका अन्त आ गया, किंतु वृद्धावस्थामें सब छोड़ते हुए उसने दर्दभरी आवाजमें कहा—'उफ्! जीवनभर अभावको दूर करनेमें व्यतीत हो गया और आज भी मैं अनेक प्रकारके अभावोंसे परिपूर्ण

हूँ। मैंने एक अभाव दूर किया, चार नये अभाव और सामने आ गये। उन्हें दूर किया तो सोलह नवीन अड़चनें प्रतीत हुईं। जीवनमें एक-न-एक नयी उलझन आती ही रही। आज मृत्यु-शय्यापर भी मैं अभावका अनुभव कर रहा हूँ।

आज यही हममेंसे अनेक व्यक्तियोंकी मनःस्थिति है। हम जीवनके उपभोगके लिये नाना वस्तुएँ एकत्रित करते हैं; धन भी पर्याप्त पा लेते हैं; अनेक वस्तुएँ हमारे पास होती हैं, किंतु हम उसीको साध्य मान बैठते हैं। वास्तवमें ये वस्तुएँ तो साधनमात्र हैं। हमारी स्थिति उस यात्रीके समान है जो यात्राके लिये नाना वस्तुओंका तो संग्रह कर लेता है, पर यात्रापर कभी नहीं निकलता। उसकी साधना तो वह यात्रा ही है। हम यह मानते रहें कि जब सब भौतिक अभाव दूर हो जायँगे, तब हम जीवनके महत्त्वपूर्ण कार्य प्रारम्भ करेंगे, सर्वथा भ्रान्तिमूलक विचार है। अभाव हमारे जीवनकी एक सदा साथ चलनेवाली परछाईं है। जहाँ हम जायँगे, जिस स्थितिमें हम रहेंगे, जिस देशकालमें निवास करेंगे, अभाव हमारे साथ चलते रहेंगे।

एक महाशय हैं, जो सदा इसी बातकी प्रतीक्षामें रहे कि तैरनेकी कलाके विषयमें जो कुछ प्राप्त हो सके, पुस्तकोंमें पढ़ लें। प्रत्येक आनेवाली अड़चनको सोच-विचारकर दूर कर लें। हाथ-पैरको व्यायामद्वारा पर्याप्त दृढ़ बना लें, तब नदीमें कूदकर तैरना प्रारम्भ करेंगे। पढ़ते-पढ़ते बहुत काल हो गया, किंतु उक्त महोदय मनमें रहनेवाले अभावको दूर नहीं कर सके और अभीतक तैरना भी नहीं सीख पाये हैं।

हमारे एक दूसरे मित्र हैं। बड़े योग्य और विद्वान् हैं, उच्च श्रेणीके प्रोफेसर हैं। उनकी इच्छा है कि पत्र-पत्रिकाओंमें अपने विचार लिखें। लेख और पुस्तकें तैयार करें। प्रायः कहा करते हैं—'अभी मुझमें ज्ञानका अभाव है। कुछ और ज्ञानार्जन कर लूँ, तब लिखना प्रारम्भ करूँगा। अभी तो मुझे बहुत कुछ सीखना है। व्यक्तियोंसे मिलकर उनके विचार लेने हैं, कई स्थानोंपर भ्रमण करना है। नवीनतम पुस्तकोंको पढ़ना है।' वह निरन्तर अपने ज्ञानके अभावको दूर कर रहे हैं। खेद है कि आज १५ वर्ष बाद भी वे अपने अभावोंको दूर नहीं कर सके हैं।

यदि मुझे अमुक-अमुक सुविधाएँ मिलतीं तो मैं ऐसा करता, समुन्नत होता, प्रतिष्ठित पद प्राप्त करता, अमीर बन जाता—ये उक्तियाँ उनकी हैं जो केवल झूठी शेखी बघारते हैं। ये वास्तवमें कोई ठोस कदम नहीं उठाना चाहते, एक झूठी आत्मप्रवञ्चनामें डूबे रहते हैं।

एक विद्वान्ने ठीक ही लिखा है—यह एक असम्भव माँग है कि यदि मुझे अमुक परिस्थिति मिलती तो मैं ऐसा करता। जैसी परिस्थितिकी कल्पना की जा रही है, यदि वैसी मिल जाय, तो वे भी अपूर्ण मालूम पड़ने लगेंगी और फिर उससे अच्छी स्थितिका प्रभाव प्रतीत होगा। जिन लोगोंको धन, विद्या, मित्र, पद आदि पर्याप्त मात्रामें मिले हुए हैं, हम देखते हैं कि उनमेंसे भी अनेकका जीवन बहुत अस्तव्यस्त और असंतोषजनक स्थितिमें पड़ा हुआ है।

धन आदिका होना उनके आनन्दकी वृद्धि न कर सका, वरं जीका जंजाल बन गया।

अतः सुविधाओंके लिये रोते-पीटते मत रहिये। परमेश्वरको दोष न दीजिये और भाग्यको भी मत कोसते रहिये। ये सब न करनेकी बातें हैं। झूठी आत्मप्रवञ्चना है।

जो थोड़ी-बहुत वस्तुएँ आपके पास हैं, जो थोड़ा-सा रुपया-पैसा आपको मिला है, जो स्वल्प साधन आपको प्राप्त हैं, उन्हींकी सहायतासे अपनी योग्यताएँ प्रदर्शित करना प्रारम्भ कर दीजिये। जिनके पास अभाव है, वे वास्तवमें अधिक उन्नति कर पाते हैं, अभाव भी मनुष्यकी गुप्त शक्तियाँ खोल देते हैं।

वास्तवमें उन्नतिकी जड़ स्वयं मनुष्यके अंदर है, परिस्थितियोंमें नहीं है। अभावग्रस्त साधन-हीन व्यक्ति ही संसारमें महत्त्वपूर्ण कार्य कर सके हैं। कारण यह है कि विपरीत परिस्थितियों और प्रतिकूलताओंसे मनुष्यके गुप्त मनोबल, संकल्प और दृढ़तामें वृद्धि होती है। सुप्त शक्तियोंके जाग्रत् होनेसे ही मनुष्य आगे बढ़ता है और तदनुकूल परिस्थितियोंका भी निर्माण कर लेता है। प्राचीन भारतीय राजाओंके यहाँ यह परिपाटी थी कि वे अपने पुत्रोंको ऐसे ऋषियोंके पास भेज देते थे, जो वन-पर्वतोंमें रहकर अभाव-ग्रस्त जीवन व्यतीत करते थे। उस अभाव-पूर्ण जीवनमें मँजकर जो विद्यार्थी निकलते थे वे जीवनमें सफल भी होते थे। अभावग्रस्त जीवन भी मनुष्यको मजबूत और युद्ध करनेके लिये सम्पन्न बनानेका साधन है।

प्रतिकूलतासे घबराइये नहीं

एक कांग्रेसी कार्यकर्त्ता १९४२ में जेलके अनुभव सुनाते हुए बोले—जेलके कठोर दिन थे। राजनीतिक कार्योंमें लगे रहनेके कारण छः महीनेका कारावास मिला था। हमारे साथ कई व्यक्ति ऐसे सम्पन्न समृद्ध घरानोंके भी थे, जो भावावेशके कारण जेल-जीवनमें आ घुसे थे और उस कठोर अभावपूर्ण जीवनके अभ्यस्त न थे। विषम परिस्थितियाँ उन्हें विचलित कर रही थीं। जेलका भोजन क्या था, बस, पशुओं-जैसा चारा समझिये। गिनी हुई चार मोटे आटेकी अधसिंकी, अधपकी रोटियाँ, पत्तियोंका साग (जिसमें कभी-कभी कीड़ोंके कटे हुए शरीर भी उबले हुए मिलते थे) न शक्कर, न घी। न उसमें किसी प्रकारका स्वाद। मनमें अपने परिवार, बन्धु-बान्धवोंसे वियोगका मानसिक आघात, घरकी, व्यवसायकी असंख्य चिन्ताएँ और मानसिक दुःखका बोझ। फल यह हुआ कि जेलसे कारावासका समय पूर्ण कर जब वे निकले तो अस्थि-पिंजरवत्, शरीरपर जैसे मांसका नाम नहीं।

दूसरी ओर हमारी मनोवृत्ति देखिये। जिस क्षणसे हम जेलमें दाखिल हुए, हमने समझ लिया कि जेल ही हमारा संसार है। हम इसी जेलमें जन्मे हैं; जेलके कैदी ही हमारे इष्ट-मित्र और

परिवारके सदस्य हैं। यहाँ जो असुविधाएँ, खान-पान तथा मिलने-जुलनेकी विषमता, दुःख या तकलीफें हैं, वे जन्मसे ही हमें मिली हैं। इन कठोर परिस्थितियोंमें ही हमें हँसी-खुशीसे रहना है। इस क्षेत्रसे परे और कुछ नहीं। जो भोजन हमें मिलता है, वही हमारा वास्तविक भोजन है; उसीमें हमें स्वास्थ्य और आनन्द प्राप्त करना है। अपने दैनिक कार्योंमें स्वावलम्बन रखना है। किसी अन्यके ऊपर निर्भर नहीं रहना है। यों सोचकर हम उन कठोर परिस्थितियों-के अनुकूल बन गये और कुछ दिनों बाद तो उस कठोर जीवनके इतने अभ्यस्त हो गये कि उसमें हमें कोई कष्ट या असुविधा ही नहीं माल्रम होती थी। इस मनःस्थितिका प्रभाव यह हुआ कि जब हम जेलसे छूटे तो हमारा वजन छः पौंड बढ़ गया था। जेलमें इससे पूर्व हमारा वजन ११२ पौंड था, जब बाहर आनेपर तुले तो ११८ पौंड हो गया था।

हमारे समाजमें दो प्रकारके व्यक्ति हैं—एक तो वे जो पग-पगपर किन्हीं विशेष परिस्थितियोंमें ही सुखी-संतुष्ट रहते हैं, पग-पगपर अपने आराम, व्यवस्था तथा जीवनके लिये दूसरोंपर ही अवलम्बित रहते हैं। संयोगवश यदि दूसरे उनके पाससे अन्यत्र चले जायँ, या उन्हें नवीन परिस्थितियों और नये वातावरणमें रहनेका अवसर आ पड़े, तो उनके लिये कष्टका समय उपस्थित हो जाता है। नयी परिस्थितियाँ उन्हें दुखी कर डालती हैं। वे मन-ही-मन नाना प्रकारकी मानसिक चिन्ताओं, गुप्त वेदनाओं और काल्पनिक कष्टोंका तूफान उठा लेते हैं।

दूसरे वर्गमें वे व्यक्ति आते हैं, जो स्वयं अपने समस्त व्यक्तिगत कार्य बिना किसी परावलम्बनके बखूबी पूरे करते हैं और समय पड़नेपर नयी परिस्थितियोंमें ढलकर स्वयं सुखी-संतुष्ट रहते हैं और दूसरोंको भी यथाशक्ति सहायता प्रदान करते हैं, नयी-नयी प्रेरणाएँ देते हैं। जैसी परिस्थितियोंमें रहनेकी विवशता हो, उसीमें प्रसन्न रहते हैं। इस स्वावलम्बन तथा नयी परिस्थितियोंमें ढल जानेकी लचकके कारण वे विषमतामें भी आह्लादपूर्ण मनोभाव बनाये रहते हैं। व्यर्थकी कल्पित चिन्ताएँ उन्हें व्यग्र-विचलित नहीं करतीं ? यही उर्वर मनोभूमि मनुष्यको चाहिये।

नयी परिस्थितियोंमें एकाएक आ जानेके कारण कुछ व्यक्ति बड़े अस्तव्यस्त हो जाते हैं। मनसे व्यग्र हो उठते हैं और नाना प्रकारकी काल्पनिक चिन्ताओंके महल बनाया करते हैं। ऐसी अनेक दुश्चिन्ताओंकी कल्पना कर लेते हैं, जो भविष्यके जीवनमें कभी भी घटित नहीं होतीं, पर अंदर-ही-अंदर उनकी शक्ति और सामर्थ्यको खाये डालती हैं।

अब आगे क्या होगा ? हमारा जो सहारा था, वह नहीं रहा। नये वातावरणमें काम कैसे चलायेंगे ? कौन हमारा सहायक होगा ? हमारी आर्थिक कठिनाइयाँ या सामाजिक प्रतिकूलताएँ आखिर अब कैसे हल होंगी ? आगे हमारे आश्रितों, पुत्र-पुत्रियोंका क्या होगा ? उनके भोजन-निवासकी व्यवस्था कैसे होगी ? ऐसे अनेक कल्पित भावोंकी दलदलमें वे फँसे रहते हैं। वास्तवमें ये या इसी प्रकारकी

और प्रतिकूलताएँ ऐसी हैं—जिनमेंसे बहुत-सी अनहोनी हैं। आगे होनेवाली नहीं हैं।

हमारे शहरमें एक नवयुवकका संयोगसे देहान्त हो गया। विधवा पत्नीने सोचा कि अब क्या होगा; विधवाका जीवन न जाने कैसा होता होगा? उसमें न जाने कौन-कौन-सी विपत्तियाँ, तिरस्कार, कठिनाइयाँ आती होंगी? मेरे बच्चोंका क्या होगा? रुपया कहाँसे आयेगा? इसी प्रकारकी अनेक मानसिक चिन्ताओंमें निमग्न रहनेके कारण वह गुप्त वेदनामें इतनी डूबी कि फिर न उठ सकी। उसके एक सप्ताह पश्चात् गुप्त मानसिक भयसे उसकी मृत्यु हो गयी। बच्चे अनाथ रह गये।

यदि वह भावावेश और नयी परिस्थितियोंकी कल्पनासे न डरती, तो हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं, इस विषमतासे मुक्तिका मार्ग भी अवश्य निकल आता। कहींसे भोजन, निवास, शिक्षा, बच्चोंके विवाह आदिकी भी व्यवस्था हो ही जाती।

हिंदू-समाजमें आज असंख्य विधवाएँ हैं। इनमेंसे अनेक विधवाएँ शारीरिक परिश्रम या मानसिक श्रम करके जीविका उपार्जन करती हैं और स्वावलम्बनका जीवन व्यतीत करती हैं। जैसे विवाहके पूर्व बिना पतिके वे रह सकती हैं, वैसे ही वे फिर बदलकर रहने लगती हैं। अब उन्हें पतिपर अवलम्बित रहनेकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती। पहाड़ी स्त्रियोंको देखें तो आपको विदित होगा कि उनके पति प्रायः युद्धमें सैनिकका कार्य करनेके लिये चले जाते हैं। उनकी अनुपस्थितिमें भी वे मजेमें जीवन चलाती हैं। उन्हें पुरुषके अवलम्बनकी जरूरत ही अनुभव

नहीं होती। अब यदि कोई स्त्री यह समझे कि बिना किसीकी सहायताके काम ही नहीं चलेगा, जीना कठिन हो जायगा—तो यह बात नहीं है। अवसर पड़नेपर नयी परिस्थितियाँ आनेपर स्वयं कुछ-न-कुछ हल निकल ही आता है। डरना नहीं चाहिये, बल्कि साहसपूर्वक उसका सामना करना चाहिये।

मनुष्यके गुप्त मनमें निवास करनेवाली एक गुप्त शक्ति है, जिसे मानसिक स्वावलम्बन कह सकते हैं। यदि मनुष्य गुप्त मनमें यह धारणा कर ले कि मैं हर परिस्थितिसे लड़ूँगा और ढल जाऊँगा, तो निश्चय ही उसमें गुप्त सामर्थ्य प्रकट हो जायगी, जो उस विषमतासे युद्ध करनेकी शक्ति प्रदान करेगी।

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य एक बार अपनी आदतोंके विषयमें बतला रहे थे कि वे जौके आटेकी रोटी और छाछपर निर्भर रहनेकी आदत डाल रहे हैं। कहने लगे, 'बात यह है कि हमें गायत्री-प्रचार-कार्यके लिये प्रायः देहातोंमें जाना पड़ता है। ग्रामीणोंमें रहते हैं। वे बेचारे इसी भोजनको दे पाते हैं। वहाँ यही भोजन खाकर काम चलाते हैं। भोजनकी वजहसे कोई भी बाधा उपस्थित नहीं होती। पण्डितजी हर प्रकारकी परिस्थितिमें अपनेको ढालनेमें पटु हैं। अतः प्रत्येक परिस्थितिमें आह्लादकी उत्साहपूर्ण मनः-स्थिति बनाये रहते हैं।

तात्पर्य यह है कि भगवान्‌ने मनुष्यके चरित्रमें एक ऐसा गुण भर दिया है कि यदि वह न होता, तो वह अधिक स्थायी आनन्द प्राप्त न कर पाता और उसकी अनायास ही अकाल मृत्यु हो जाती।

यह गुण है परिस्थितियोंके अनुसार लचक । यदि उसमें यह लचक न होती, वह समय और नयी परिस्थितियोंके अनुकूल न ढल पाता, तो शायद संसारमें इतना न पनप पाता, जितना आज विकसित हुआ है और हो रहा है ।

इस लचकके उदाहरण आपको जीवनके हर क्षेत्रमें प्राप्त हो जायँगे । क्या आपने कुएँकी ईंटोंमें उगे हुए पीपलके पेड़को देखा है ? उसके पास पर्याप्त मिट्टी नहीं है । जड़ोंको फैलनेके लिये कोई गुंजाइश नहीं है । पर्याप्त प्रकाश और वायु भी नहीं है । फिर भी वह बढ़ता ही जाता है । बढ़कर मजबूत बन जाता है । उसकी जड़ें टेढ़ी तिरछी होकर उन्हीं विषम परिस्थितियोंमें अपने भोजनके उपकरण एकत्रित कर लेती हैं । पहाड़ोंकी चट्टानोंपर वृक्ष उगते हैं, बड़े होते जाते हैं, दृढ़ बनते रहते हैं और इस प्रकार पर्वतोंपर वन-के-वन हो जाते हैं । उन्हें देखकर आश्चर्य होता है कि वे कैसे मिट्टी, जल, प्रकाश, धूप और वायु पा लेते हैं । हर प्रकारकी विषमताओंसे लड़ने, जूझने-जैसी स्थितिमें पड़कर उसीमें पनपने-ढलनेके ये वृक्ष प्रत्यक्ष उदाहरण हैं ।

एक ग्रामकी बात है । एक बार एक व्यक्तिके पाँवमें जख्म हुआ । बहुत दिनोंतक चिकित्सा होती रही । टाँग सड़ती गयी और अन्तमें यह तय किया गया कि टाँग काटी जायगी । जब इस व्यक्तिने सुना कि टाँग काटी जायगी, तो वह तिलमिला उठा । उफ, बिना टाँग कैसे काम चलेगा ? जिंदगी बचेगी या नहीं ! भोजन कहाँसे आयेगा ? भविष्य कैसे कटेगा ? ऐसे सैकड़ों प्रश्न

की खोजको चला तो उसके पास एक मामूली-सा जहाज था। आनेवाले नये कष्टों और नवीन परिस्थितियोंकी कल्पनाओंसे उसके मित्र नाविकोंने उसे इतना डराया कि कुछ न पूछिये। वे कहते थे कि इतनी बड़ी यात्राके लिये उनके पास कोई स्थायी प्रबन्ध नहीं है; भोजन, निवास और मौसमके परिवर्तनकी कोई व्यवस्था नहीं है; फिर इतनी बड़ी यात्रा क्योंकर सम्पन्न होगी? कोलम्बसने किसी-की न मानी। वह यात्रापर चल ही दिया। सबने आश्चर्यसे सुना कि उसकी यात्रा पूर्ण हुई। सभी अच्छी-बुरी परिस्थितियोंका उन लोगोंने पूरी तरह सामना किया और पूर्ण विजय प्राप्त की।

सम्राट् शाहजहाँ औरंगजेबद्वारा अपमानित होकर जेलमें पड़े। कहाँ सुख-समृद्धि और विलासोंमें पलनेवाला सम्राट् और कहाँ जेलका जीवन! लोग समझते थे चार दिनमें सम्राट् समाप्त हो जायगा, उसका जीवन-दीप कठोर परिस्थितियोंके एक झटकेसे ही बुझ जायगा। पर नहीं, ऐसा नहीं हुआ। सम्राट्ने उसी परिस्थितिके अनुकूल अपने आपको ढाल लिया। उनमें जन्मसे ही हुकूमतकी आदत थी। जेलमें भी उन्होंने बच्चे पढ़ानेका ही काम माँगा। बच्चोंको पढ़ाकर अपनी हुकूमतकी प्रवृत्तिको संतुष्ट करते रहे। अब सोचिये, यदि वे केवल जेलकी विकटताके ही दुःस्वप्न देखा करते, तो आखिर क्या होता? जीवनके जितने कटु-मृदु घूँट उनके भाग्यमें लिखे थे, वे भी उन्हें न मिल पाते। लचकके इस अद्भुत गुणने ही उन्हें ऊँचा उठाये और बचाये रखा था।

कहनेका अर्थ यह कि मनुष्यके स्वभाव और शरीरकी बनावट

कुछ इस प्रकार की गयी है कि वह समय और विकट परिस्थिति पड़नेपर बखूबी उनके अनुसार ढल सकता है; लचककर नयी हालतोंके अनुसार अपनेको बना सकता है। दो-चार दिनके बाद उसे इस नये जीवनकी स्वतः आदत पड़ जाती है और नये सिरेसे जीवन चलने लगता है।

जब छोटे जार्ज वाशिंगटनका पिता मर गया था, तो उसकी माँ अकेली थी, भोजनका साधन न था। वह एक जंगलकी झोंपड़ीमें रहती थी। कहते हैं उसमें भेड़िये भी रहते थे। माँ छोटे जार्जको सुबह खिला-पिला झोंपड़ीमें ताला लगा स्वयं जंगलसे लकड़ी चुनने चली जाती थी और सायंकाल उन्हें बेचकर घर पहुँचती थी। रातमें बच्चेको जाकर गलेसे लगाती थी। प्यार करती और भोजन पकाकर खिलाती थी। इस प्रकार विरोधी परिस्थितियोंमें दृढ़ होकर जार्ज पलता रहा और एक दिन अमेरिकाका प्रेसीडेंट बना। इसी प्रकार-के उदाहरण और बहुत-से हैं।

तुर्कीका कमालपाशा स्कूलमें कहार था। वाल्मीकि डाकू थे और राहगीरोंको लूटकर जीविका चलाते थे। हिटलर मजदूरी करके दिन व्यतीत करता था। मुसोलिनीका बाप पहले इटलीमें एक लुहार था। ये सभी विषम परिस्थितियोंमें बढ़ते और पनपते रहे और महानताको प्राप्त हुए।

प्राचीन भारतमें विद्यार्थियोंके सर्वतोमुखी विकासके लिये गुरुकुलका कठोर अभावग्रस्त जीवन आवश्यक समझा जाता था। राजासे लेकर साधारण नागरिक भी अपने बच्चोंको असुविधा और

कष्टोंका जीवन बितानेके लिये आश्रमोंमें भेजा करते थे। कष्ट एक प्रकारके शिक्षक थे, जिनकी कठोर परीक्षाएँ उत्तीर्ण करनेके उपरान्त विद्यार्थीको समग्र जीवनके कष्ट कर्तव्य-पथसे विचलित नहीं कर सकते थे। वह शिक्षा एक प्रकारसे कठोर परिस्थितियोंके अनुसार जीवन ढालनेकी शास्त्रीय पद्धति थी।

निष्कर्ष यह है कि इस देव-दुर्लभ मानव-शरीरका निर्माण कुछ इस प्रकार किया गया है और ऐसी-ऐसी गुप्त शक्तियाँ अणु-अणुमें भर दी गयी हैं कि प्रत्येक आदमी विषम-से-विषम और नयी-से-नयी परिस्थितियोंके अनुकूल थोड़ेसे परिश्रम और दृढ़तासे ढल सकता है।

ऐसी कोई विषम परिस्थिति नहीं जिसे आप न जीत सकें। आपकी शक्तियाँ सैकड़ों इन्द्रवज्रोंसे अधिक हैं। हर स्थितिपर पूर्ण विजय प्राप्त करनेकी गुप्त सामर्थ्य आपमें भरी पड़ी है। भयभीत होनेकी तनिक भी आवश्यकता नहीं है।

प्रश्न उठता है कि यों तो समय आनेपर हर मनुष्य परिस्थिति-के अनुसार बदल ही जाता है, लेकिन किस व्यक्तिको सच्चे अर्थोंमें ढला हुआ कहा जाय ? क्या विवशता और मजबूरीकी टक्करोंसे बदला हुआ व्यक्ति ही सफल माना जाय ?

नहीं; वास्तवमें सफल व्यक्ति उसे कहना चाहिये जो नयी परिस्थितियों, विषमताओं और अड़चनोंमें भी अपने जीवनका संतुलन, अपना आदर्श न छोड़े। पूरी तरह लगा रहे। पूर्ण प्रसन्न रहे। स्वस्थ रहे। किसी अड़चनका अनुभव न करे।

स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने गीताके १२ वें अध्यायमें इस विषयका कुछ संकेत किया है। समत्वयोगका तात्पर्य ही यह है कि मनुष्यजीवनकी सब स्थितियों, अड़चनों, कष्टोंमें पक्ष-विपक्ष, हानि-लाभ-मान, अपमानसे प्रभावित न हो। अपना आन्तरिक संतुलन बनाये रक्खे। संवेदनाका केन्द्र बाह्य पदार्थोंमें न रखकर अंदर आत्मामें, ईश्वरमें बनाये।

जो व्यक्ति संवेदनाका केन्द्र बाह्य पदार्थों या परिस्थितियोंमें रखते हैं, वे बार-बार उन स्थितियोंके बदलनेसे दुखी रहते हैं। जो व्यक्ति अपनी आन्तरिक मनःस्थितियोंको ईश्वरत्वमें केन्द्रित करते रहते हैं, वे शाश्वत चिरस्थायी सुखका अनुभव करते हैं।

अतः असुविधाओं, कष्टों, विषम परिस्थितियों, प्रतिकूलताओंसे घबराइये नहीं। ये केवल मनकी दुर्बलता होनेपर मनुष्यको विचलित करती हैं। मस्तिष्कको नयी परिस्थितियोंके अनुकूल बदलनेकी आज्ञा दीजिये; विचारोंका दिव्य प्रवाह उधरको मोड़िये और एकाग्रतासे उसी ओर बढ़िये। फालतू क्षुद्र अनुराग, मोह, शंका आदिकी दुर्बलताओंमें मत फँसिये। आपकी अन्तरात्मामें जो गुप्त सामर्थ्य है, उसे बढ़ाइये। अपने हितकी बात सोचिये। आप यही कहिये कि 'अहं ब्रह्मास्मि' मैं ब्रह्म हूँ। पूर्ण समर्थ हूँ। मुझमें गुप्त शक्तिका अक्षय भंडार भरा हुआ है। इन्द्रियों, मन और बुद्धि—तीनोंपर आत्म-सामर्थ्यसे मुझे विजय प्राप्त करनी है। मेरी आत्मशक्तिके सम्मुख कोई पाप नहीं ठहर सकता। मैं जीवनमार्गपर निष्कण्टक बढ़ रहा हूँ।

दूसरोंका सहारा एक मृगतृष्णा

मनुष्य बन्धु-बान्धवों, इष्ट-मित्रों तथा परिवारमें अनेक व्यक्तियों-से घिरा हुआ है। वह प्रेरणा, उत्साह एवं सहायताके लिये इधर-उधर उत्सुक नेत्रोंसे देखा करता है। यदि कोई सहायता कर देता है, उत्साहसूचक दो वचन कह देता है, तो वह प्रसन्न हो जाता है, किंतु जहाँ बेरुखी, शुष्कता, नीरसता दीखती है, वहीं अपने मनमें आन्तरिक दुःख और गुप्त मनमें एक वेदनामयी निराशाका अनुभव करता है। तनिक-सी प्रशंसासे फूलकर कुप्पा हो जाना अथवा अपनी आलोचना सुनकर आन्तरिक दुःखका अनुभव करना निर्बल मनके विकार हैं।

जो व्यक्ति तनिक-तनिक-सी बातोंमें दूसरोंके उत्साहकी प्रतीक्षा किया करता है, अपनी मौलिक प्रतिभाका विकास नहीं करता, वह उस शिशुकी भाँति है, जो माताकी गोदसे उतरकर कर्मोंसे परिपूर्ण इस संघर्षमय संसारमें अपने पाँवोंपर खड़ा नहीं होना चाहता।

जीवनमें एक अवस्था ऐसी आती है, जब मनुष्यको दूसरोंका सहारा प्राप्त नहीं होता। माता-पिताका शीतल संरक्षण विधिके विधानद्वारा खींच लिया जाता है; परिवारका समस्त उत्तरदायित्व ऊपर आ जाता है; अपनेसे छोटोंका भार भी वहन करना पड़ता है और जीवनक्रमका नियोजन भी स्वयं करना पड़ता है। इस स्वतन्त्र स्थितिमें ही मनुष्यके आत्मबलकी परीक्षा होती है।

जीवनमें यथासम्भव हमें बात-बातमें दूसरोंका सहारा लेनेकी आवश्यकता नहीं है। घरमें, व्यापारमें, योजनाओंके निर्माणमें स्वयं अपनी सूझ-बूझ, मौलिकता, दूरदृष्टिसे कार्य लेनेकी प्रवृत्ति विकसित करनी चाहिये। अपने बलपर, अपनी बुद्धिपर कार्योंको करनेसे मनुष्यकी अनेक गुप्त शक्तियोंका विकास होता है।

कोई तुम्हारा काम नहीं करेगा, जबतक कि तुम स्वयं अपने पूरे उत्साह, जोश और सामर्थ्यसे उसमें न जुट जाओ। तुम्हारा आत्मबल ही तुम्हारा स्थायी सहायक हो सकता है। जिसका आत्म-बल विकसित होता है, वह शक्ति और जीवनसे परिपूर्ण होता है; दूसरोंकी सहायता ताकनेके स्थानपर स्वयं अपने बलपर काम करता है। जो मनुष्य जितना ही अपने आत्मासे, अपनी शक्तियों एवं

पौरुषसे परिचित होता है, वह उतना ही आत्मबलविज्ञ होता है। आत्मबलके अनुपातमें ही उसमें जीवन होता है।

लोगोंमें यह मिथ्या कल्पना बैठ गयी है कि भारी डील-डौलके मोटे-ताजे शरीरमें ही शक्ति होती है। वास्तवमें शक्ति तो आत्माकी है। इसीको हिम्मत कहते हैं। मामूली शरीर भी आत्मबलसे शक्ति-सम्पन्न हो जाता है। क्या शिवाजी भारी भरकम शरीरवाले थे? गुरु गोविन्दसिंह, प्रताप इत्यादि साधारण शरीरवाले होकर भी इस आत्मबलकी शक्तिसे बलवान् बने। आत्मबल मनुष्यको जनताका नेतृत्व प्रदान करनेवाला सूक्ष्म तत्त्व है।

क्या आत्मबलकी वृद्धि सम्भव है?

आत्मबल प्रायः स्वाभाविक होता है। वे मनुष्य धन्य हैं, जिनमें जन्मसे ही आत्मबल विद्यमान है। वास्तवमें हमारे माता-पिता, वातावरण एवं संस्कारोंका आत्मबलपर बड़ा प्रभाव पड़ता है। हिम्मत बढ़ानेवाले, निरन्तर प्रोत्साहनके वातावरणमें रहनेके कारण कुछ बालक स्वतः दूसरोंकी अपेक्षा आत्मबलमें बढ़े-चढ़े होते हैं। ईश्वरके कृपाबलका भरोसा रखनेवाले व्यक्तियोंमें हिम्मत स्वतः ही बढ़ जाती है।

आत्मबल बढ़ाया भी जा सकता है। अन्य शक्तियोंकी भाँति इसका भी विकास होता है। जो व्यक्ति आत्मबलके विकासका नियम जानता है वह दीर्घकालीन अभ्याससे इसे विकसित कर सकता है। आवश्यकता है केवल उत्कट, बलवती इच्छा (Burning desire) की। यह इच्छा साधारण-सी मनकी हलकी-झकोर नहीं होनी चाहिये।

हृदय-सरोवरमें तनिक-तनिक देर छोटी-मोटी लहरोंकी तरह जो आलोडन-विडोलन होता है, उससे काम नहीं चलेगा, आपके मनमें जीती-जागती बलवती इच्छा होनी चाहिये ।

आत्मबलके विकासका प्रथम तत्त्व है—अनुसंधान। अनुसंधानसे तात्पर्य है अपने पक्ष, नीति या दृष्टिकोणविषयक सत्यताका ज्ञान । आप जिस कार्यको सम्पन्न करने चले हैं, क्या वह उचित है; मर्यादाके भीतर है ? अन्य विद्वान् उसके बारेमें क्या कहते हैं ? इत्यादि अनेक प्रश्नोंद्वारा आप अपने पक्षका अनुसंधान अर्थात् पर्याप्त खोज-बीन करें । सत्यको मालूम करें । दूसरा सोपान है खोज-बीनसे अर्जित सत्यके प्रतिपालनमें दृढ़ता । स्मरण रखिये, जिसका पक्ष सत्यका पक्ष है, उसमें ईश्वरत्वकी मजबूती है । ईश्वर उस व्यक्तिके साथ है । दैवी सहायता निरन्तर उसके समीप चलती रहती है। जिनके अन्तःकरण शुद्ध हैं, उनके द्वारा सत्य-पथपर दृढ़तासे चलना आत्मबल बढ़ानेवाला है। साधारण व्यक्ति भी सत्यके पथको पकड़कर दृढ़तासे चलता रहे, तो आत्मबलकी अभिवृद्धि कर सकता है ।

विकासके मार्गमें दो शत्रु आते हैं, जिनसे बड़े सावधान रहनेकी आवश्यकता है—(१) प्रलोभन, (२) आलस्य । नाना रूप धारणकर प्रलोभन आपको धर दबायेंगे; किंतु आपको उनके माया-मोहमें नहीं फँसना है । मन आलस्यके वशीभूत हो सरलताके मार्ग-पर चलनेका आग्रह करता है । उसे इस आलस्यसे रोकना, पुनःपुनः इष्ट मार्गपर लगाना आत्मबल-वृद्धिका उपाय है ।

मनकी दुर्बलता—कारण और निवारण

(१)

एक व्यक्ति लिखते हैं—'मुझे मिठाईका बड़ा शौक है। जब कभी मैं मिठाईकी किसी दुकानके आगेसे गुजरता हूँ और मेरी जेबमें पैसे होते हैं, तो मैं जरूर मिठाई खरीदता हूँ और जबतक सब पैसे समाप्त नहीं हो जाते, मिठाई खाता ही रहता हूँ। घरपर भी मीठेकी ओर मेरा मन दौड़ा करता है। और कुछ नहीं तो शक्कर ही फाँकता हूँ। शरबत पीता हूँ। मिठाईकी इस लतसे मूत्रमें शक्कर आने लगा है और अब मैं बीमार भी रहने लगा हूँ। मैं जानता हूँ कि मेरी बीमारीका कारण यही मिठाईकी आदत है। इसीने मुझे बीमार किया है। कौन जाने यही मेरे प्राण भी ले ले; पर अभीतक अवसर पाते ही मैं मिठाईकी ओर बुरी तरह झुक जाता हूँ। मैं क्या करूँ?' एक अन्य सज्जन वासनाके बारेमें लिखते हैं कि वे वासनासे बुरी तरह परेशान हैं। अनेक बच्चोंके पिता हैं। पत्नी परेशान है। वे स्वयं अपनी मूर्खता जानते हैं, पर वासनाके वशीभूत हो कुछ-का-कुछ कर बैठते हैं और फिर पछताते हैं। जानते-बूझते भी अपने मनकी दुर्बलताके कारण संसारके बन्धनमें फँसे हुए हैं।

अपने क्रोधके आवेशकी बातें करते हुए एक मित्र एक बार कह रहे थे—'क्या बतायें, जब हम देखते हैं कि दूसरा व्यक्ति सरासर गलत बात कह रहा है, बेवकूफीके तर्क दे रहा है और आगे आनेवाली कठिनाईकी ओर ध्यान ही नहीं दे रहा है, तो हमें

उद्विग्नता आ जाती है, हम भी उत्तेजित हो उठते हैं। हम किसीके दबैल नहीं हैं, किसीसे माँगकर नहीं खाते हैं फिर क्यों दबें? पर क्या बतायें क्रोधके आवेशमें हम प्राय: ऐसा कह बैठते हैं जिसपर हमें पछताना पड़ता है। मित्रताएँ टूट जाती हैं। हम अपने आवेशकी कमजोरी जानते हैं, पर क्या बतायें इस दुर्बलतासे छूट नहीं पा रहे हैं।

एक सज्जन चिन्ताकी आदतसे परेशान हैं। उनके पास स्वास्थ्य है, धन है, मान-प्रतिष्ठा भी है, पर न जाने कैसे उन्हें यह भ्रम हो गया कि 'मेरे भविष्यमें कुछ-न-कुछ अनिष्ट होनेवाला है, मेरा स्वास्थ्य खराब हो जायगा, मेरे परिवारवाले मुझे धोखा दे देंगे, मेरी जीविका छिन जायगी।' वे इसी प्रकारकी अनेक छोटी-बड़ी चिन्ताओंमें डूबे रहते हैं। उनकी चिन्ताका आधार कुछ नहीं, केवल कल्पित भयमात्र है, पर वे उसी तुच्छ-सी बातके लिये परेशान रहते हैं। अनहोनी बातोंकी चिन्तामें बैठकर समय नष्ट करते हैं। नैराश्यपूर्ण विचारोंके साथ-साथ उनका मस्तिष्क गुप्त कल्पित भय-पूर्ण विचारोंकी शृङ्खलामें आबद्ध है। वे सदैव कलकी चिन्ता ही किया करते हैं। निरन्तर चिन्ताका मानसिक अभ्यास करनेसे अब उनका मानसिक संस्थान दुःख और भयसे परिपूर्ण हो उठा है।

हमारे एक शिष्यकी आदत है कि वह स्वप्नोंके संसारमें रहता है। कोई नयी अजीब बात होनेवाली है, कुछ-न-कुछ ऐसा परिवर्तन होगा कि स्थिति मेरे अनुकूल पड़ जायगी और मेरा जीवन पूर्वजोंसे अधिक सुन्दर, सुखमय तथा शक्तिशाली हो जायगा। यह कवि संसारकी वास्तविकताको नहीं जानता। मनुष्यको उन्नति करनेमें जिस

घोर संघर्षका सामना करना पड़ता है, उससे इसका कोई परिचय नहीं है। न उसे समझना ही चाहता है।

(२)

ऊपर अनेक प्रकारके ऐसे व्यक्तियोंके उदाहरण हैं, जो मनकी दुर्बलतासे नाना रूपोंसे परेशान हैं। उनका मन उनकी इन्द्रियोंका दास बना हुआ है तथा वे उसके बहकावेमें आकर क्षुद्र कार्योंमें प्रवृत्त हो जाते हैं। उनके मनने उन्हें संसारके नाना बन्धनोंमें बाँध रक्खा है। मनमें जैसा झोंका आता है, वे उधर ही ढुलक पड़ते हैं। अनेक व्यक्ति यह जानते हैं कि वे बुरी व्याधिमें फँसे हैं; उनके मनका प्रवाह गलत दिशामें है; पर भ्रान्त होकर वे विवश-से उसी ओर प्रवृत्त होते रहते हैं।

उनके मनकी दशा उस सरोवरकी तरह है, जिसमें भयंकर तूफान उठा हो और जल अस्तव्यस्त तरङ्गोंमें बह रहा हो। उनकी इन्द्रियाँ अनियन्त्रित हैं। ये इन्द्रियाँ संसारके क्षुद्र क्षणिक आनन्दोंकी ओर झपटती हैं। वे विवेकहीन हो उसी ओर अग्रसर हो जाते हैं।

कुछ अपने दोषोंको ढकनेके लिये दूसरोंके दोषोंका विस्तारसे वर्णन करते हैं। उनकी बुरी-भली पुरानी बातें खोजकर निकालते हैं। ऐसा करके वे अपनेको उनकी अपेक्षा श्रेष्ठ प्रमाणित करना चाहते हैं। पर वास्तवमें होता है, इसका ठीक उलटा। दूसरोंके दोषोंमें रमण करनेसे स्वयं उनके चित्तका मैल बढ़ता है। वे अधिकाधिक नीच, अभागे और पापी होते जाते हैं। मनमें क्षुद्र नीच विचारोंके रहनेसे तदनुकूल विषैला वातावरण छाया रहता है और वे निरुपयोगी

कार्योंमें ही लगे रहते हैं। दूसरे शब्दोंमें यों कहिये कि उनका मन निरुपयोगी विषयों और व्यर्थकी थोथी बातोंमें लगा रहता है। मनकी वृत्तियाँ क्षुद्र विषयोंमें लगी रहती हैं। जिधरको ये वृत्तियाँ लगेंगी, उधरको ही शरीर चलेगा; वैसा ही कार्य शरीरकी इन्द्रियाँ करेंगी। अतः यह कहना सत्य ही है, मन ही मनुष्यके बन्धनका कारण होता है। मन जिससे हमें बाँधता है, हमारा शरीर बिना रस्सियोंके उसीसे बँध जाता है।

मनमें जब विकारोंका प्राबल्य हो जाता है, जब हमारे काम, क्रोध, लोभ, मोह, चिन्ता, उद्वेग इत्यादि सीमासे बढ़ जाते हैं, तब संतुलन नष्ट हो जाता है और मनुष्यकी चित्तवृत्ति विकृत हो जाती है। साधारणतः वह किसी एक वस्तुका ध्यान करता है; फिर एक दूसरी नयी समस्या आकर अपना जोर दिखाती है, तत्पश्चात् एक तीसरा प्रलोभन आकर सब अस्तव्यस्त कर देता है। किसीके विरोधसे क्रोध उत्पन्न होता है, ईर्ष्या उससे प्रतिशोध लेनेको कहती है; दूसरी ओरसे कड़ा विरोध होनेपर भय और घबराहट बढ़ती है; फिर असफल होनेपर घृणा, उद्वेग, चिन्ता और उदासी अपना माया-जाल बुनती रहती है। ये उस दुर्बल मनकी अवस्थाएँ हैं, जिसमें विवेक और इच्छाशक्तिकी दृढ़ता नहीं है।

मानसिक संस्थानका नियन्त्रण ही मनकी दुर्बलतापर विजय प्राप्त करनेका उपाय है। विवेक जितना जाग्रत् होता है मनमें उतनी ही स्थिरता आती है। विवेकके प्रकाशसे इन्द्रियाँ संसारके विषयोंसे दूर हटती हैं और मनुष्य व्यर्थ चिन्तनसे छूटकर ऊँचा उठता है।

आप जिस बातको उचित समझते हैं, जो आपकी अन्तरात्मा पुकार-पुकारकर कहती है, उसे ही सत्य समझिये। आपकी शुभ वृत्तियाँ शान्त समयमें जिस ओर चलती हैं, उसीको सन्मार्ग समझिये और व्यर्थ चिन्तनसे बचकर उसी ओर चलिये। सन्मार्गपर चलकर ही मनको शान्त रक्खा जा सकता है। हो सकता है कि प्रारम्भमें मन उधर एकाग्र न हो, पर आत्मा प्रबल तत्त्व है; अतः धीरे-धीरे वह स्वयं उसमें तन्मय होने लगेगा। दुःखका बोझ हलका होगा और हृदयको शान्ति मिलेगी।

आपकी अन्तरात्मा जिस चीजको उचित कहती है, उसीका संकल्प कीजिये। उसी ओर बढ़नेमें आपको आत्म-सामर्थ्य प्राप्त होगी। उसी ओर इन्द्रियोंको लगानेसे शक्तियोंकी वृद्धि होगी।

आपकी एक दुर्बलता संकल्पकी कमजोरी है। आप अपने निर्णयको मजबूतीसे नहीं पकड़ते। यह भलीभाँति जान रखिये कि निरन्तर एक स्थानसे दूसरे स्थानपर लुढ़कनेवाले पत्थरपर काई नहीं जमती। एक विषयसे दूसरेपर फुदकनेवाला मन दुर्बलताकी जड़ है। अपने विचारोंको अपने उद्देश्योंपर एकाग्र करनेका अभ्यास कीजिये।

राग, द्वेष, काम, क्रोध, ईर्ष्या—ये मनकी उत्तेजित अवस्थाएँ हैं। ये मनुष्यके मनकी अस्तव्यस्त अवस्थाओंकी सूचक हैं। इनमें फँसकर मनुष्यका उच्च ज्ञान—विवेक-बुद्धि पंगु हो जाती है। पाप विकार या दुष्ट विचार सिर ऊँचा करते हैं। इनका जैसे ही आक्रमण

हो, किसी रूपमें या किसी भी स्थितिमें हो, तो तुरंत सावधान हो जाइये और सुमतियुक्त आत्माकी ही प्रेरणा ग्रहण कीजिये।

(३)

मनमें आत्माके द्वारा श्रेष्ठ प्रेरणाका प्रवाह भी बहता है। इसी कारण मनको ही मोक्षका साधन कहा गया है। यदि मन बन्धनका कारण है, तो वही मोक्षका कारण भी बन सकता है। मनके भद्र निश्चयोंपर अटल रहकर सन्मतिका ग्रहण कर उसी मार्गपर निरन्तर चलकर जीवन-मार्गको प्रशस्त भी बनाया जा सकता है। आत्माकी निरन्तर प्रेरणासे मन दिव्य मार्गोंकी ओर चलेगा।

सावधान ! सत्यका मार्ग मत छोड़ियेगा, चाहे मन कितना ही क्यों न छटपटाये ? इन्द्रियाँ तो व्यर्थ ही इधर-उधर भागनेवाली हैं। ये आपको किसी भी खड्डेमें गिरा सकती हैं। इन्द्रियोंको वशमें कर लें तो आप विजयी कहलायँगे। इन्द्रियाँ चोरकी तरह वह अवसर ताकती रहती हैं, जब वे आपको नरकमें पटक दें, पतन करा दें। यदि इन चारोंको अवसर मिलेगा, तो ये सारा संचित धर्म नष्ट कर देंगी। मनके संयमसे ही स्वर्ग मिलता है। अनियन्त्रित इन्द्रियोंका विद्रोह ही नरक है। उत्तम स्वास्थ्य, दिव्य बुद्धि और सांसारिक सम्पदाएँ उसीको प्राप्त होती हैं, जिसने अपने मन और इन्द्रियोंपर काबू पा लिया है।

जिन व्यक्तियोंके हृदय पवित्र हैं, मन काबूमें हैं, वे धन्य हैं; क्योंकि वे पृथ्वीपर ही स्वर्गका सुख प्राप्त करेंगे।

गुप्त शक्तियोंको विकसित करनेके साधन

मनुष्यका मन महान् शक्तियोंका बृहत् भंडार है (Dynamo of creative energy) एक-से-एक दिव्य शक्ति इसमें निवास करती है। छोटे-बड़े, विद्वान्-मूर्ख सभीमें ये शक्तियाँ बीजरूपसे विद्यमान रहती हैं। किसीमें ये सुप्त, किसीमें निर्बल, किसीमें अविकसित अवस्थामें प्रस्तुत हैं। सामर्थ्यवान् और जड व्यक्तिमें अन्तर केवल यही है कि एकमें तो यह बीज उत्तम भूमिमें पर्याप्त जलद्वारा अङ्कुरित, पल्लवित एवं पुष्पित हुआ है और दूसरेमें वह ज्यों-का-त्यों पहिले जैसा ही बीजरूपमें वर्तमान है। मैं निश्चय-पूर्वक कह सकता हूँ कि यदि मेरे नियमोंका निरन्तर पालन किया जाय तो मूर्खसे मूर्ख और जड भी अपने इच्छानुसार इन शक्तियोंको जाग्रत् कर सकता है। नियमित अभ्यास और साधनद्वारा इनकी वृद्धि हमारी अवस्थाके साथ-साथ हो सकती है और हम पूर्ण सामर्थ्यवान् बन सकते हैं।

मानसिक शक्तियोंका प्रदर्शन परिपुष्ट मस्तिष्कद्वारा होता है। उत्तम मस्तिष्कके द्वारा ही मन अपने अद्भुत सामर्थ्यका प्रदर्शन कर सकता है। मस्तिष्कको भलीभाँति प्रकट एवं विकसित करनेके लिये तीन मुख्य तत्त्वोंपर विचार करना चाहिये। इन तीनोंका स्वरूप इस प्रकार है—

(१) उत्तम पूर्ण परिपुष्ट मस्तिष्क।

(२) मानसिक शक्तियोंका यथार्थ ज्ञान।

(३) मनकी पोषक शक्तियोंका क्रमानुसार संचय।

मस्तिष्कको केवल एक अति सूक्ष्म यन्त्र या डायनमो समझिये। विद्युत् उत्पन्न करनेवाले डायनमोकी भाँति मस्तिष्क विचार उत्पन्न करता है। हमारे मनके विभिन्न भागोंमें भिन्न-भिन्न शक्तियोंके सूक्ष्म केन्द्र हैं। कुछका केन्द्र मस्तिष्कके अग्र, कुछका मध्य और कुछका पृष्ठ भागमें है। मस्तिष्कके जिस भागमें ये शक्तियाँ मुख्यतः निवास करती हैं, उस भागमें स्थित कोषों (Cells) की संख्याके परिमाणमें वे शक्तियाँ कम या अधिक होती हैं। यदि मस्तिष्कका कोई भाग निकम्मा छोड़ दिया जाय तो फिर शनैः-शनैः व्यर्थकी क्रिया करनेके अतिरिक्त उसमें अन्य किसी कार्यको करनेकी क्षमता नहीं रह जाती। यहाँतक कि कितने ही भाग उपेक्षित होनेके कारण निर्बल और निकम्मे हो जाते हैं। भक्ति-भाव, पूज्य-भावादि शक्तियोंका स्थान मस्तिष्कका मूर्धन्य है। जिस मनुष्यकी मूर्धामें उपर्युक्त कोष कम होते हैं, उसमें ईश्वरके प्रति भक्तिभाव और गुरुजनोंके प्रति पूज्यभाव कम देखा जाता है। जो शक्तियाँ कपालके नीचेके अर्ध भागमें निवास करती हैं, वे विद्या, कला-विषयोंकी खोज तथा कार्य-साधनसे सम्बन्धित हैं। जिनमें ये विकसित होती हैं वे निरर्थक बातें नहीं करते, व्यवस्थापूर्वक कार्य करते हैं और किसी कार्यको एक बार हाथमें लेकर नहीं छोड़ते। यद्यपि उनमें तर्क-वितर्क करनेकी क्षमता नहीं होती, किंतु फल प्राप्त करनेकी सामर्थ्य रखते हैं। यदि आप इन मानसिक शक्तियोंका विकास करना चाहें तो कपालके नीचेके अग्रभागके कोषोंकी वृद्धि करें। आप अपनी चित्तवृत्ति मस्तिष्कके मध्यबिन्दुपर एकाग्र कीजिये। निरन्तर सोचनेसे उस भागमें रुधिरकी गति बढ़ जायगी और एकाग्रतासे वह भाग पुष्ट होने लगेगा।

कपालके ऊपरी आधे भागमें बुद्धिकी शक्तियाँ अपना-अपना व्यापार करती हैं। इस भागका विकास करनेके लिये मस्तिष्कके मध्यबिन्दुसे कपालके ऊपरके अर्धभागतक रहनेवाले सूक्ष्म द्रव्यपर एकाग्रता करनी चाहिये। इस प्रदेशके कोषोंकी वृद्धिसे बुद्धिकी शक्तियाँ तेजस्विनी होती हैं और विषयोंको समझनेकी शक्तिकी वृद्धि होती है। नित्यके अभ्यासद्वारा बुद्धिका बल इतना बढ़ जाता है कि जिस विषयपर उसे स्थिर करें, उसीपर आर-से-पार हो जाती है।

कानके छिद्रके आगेसे सिरकी चोटीतक एक खड़ी सीधी रेखा खींचिये। जहाँ इसका अन्त होगा उसके ठीक पीछेके भागमें श्रद्धा, दृढ़ता, आत्मबल, विश्वास इत्यादि दिव्य शक्तियाँ निवास करती हैं। इनपर एकाग्रता करनेसे यदि कोष कम होंगे तो, अधिक; दुर्बल होंगे तो, सबल; और बलवान् होंगे तो और मजबूत हो जायँगे।

मस्तकके पीछे नीचेके भागमें प्रयत्न करनेके सामर्थ्यकी शक्ति होती है। जिस मनुष्यमें यह शक्ति विकसित अवस्थामें होती है वह किसी कामको करनेमें पीछे नहीं रहता। वह किसी कामको कठिन समझकर यों ही नहीं छोड़ देता; क्योंकि उसे लगातार मस्तिष्कके उस भागसे सहारा मिला करता है। जिस मनुष्यमें आत्म-श्रद्धाकी शक्ति विकसित होती है वह अपने प्रयत्नोंमें सदैव सफलमनोरथ होता है। कभी-कभी देखा गया है कि अनेक आग्रहसे कोई कार्य करनेवालोंके मस्तिष्कके पिछले भागमें वेदना मालूम होने लगती है। इस वेदनाका अर्थ यही है कि सामर्थ्य-शक्ति-कोषों (Cells) में दुर्बलता है और एकाग्रताद्वारा उनके पोषणकी आवश्यकता है। एकाग्रता करते समय सोचिये कि मेरे उस विशिष्ट भागमें सूक्ष्म

पौष्टिक प्रवाह बह रहा है, कोष पुष्ट हो रहे हैं, थकावट कम हो रही है। मैं चैतन्यस्वरूप हूँ, मेरे मस्तकमें प्रत्येक ओर चैतन्य व्याप रहा है और सारा शरीर चैतन्यसे ओतप्रोत हो रहा है— इस प्रकार एकाग्रता करनेसे यथेष्ट सामर्थ्यका संचय होगा।

कपालके ऊपरके भागमें, जहाँ अंदरसे बालोंकी जड़ें शुरू होती हैं, यह ज्ञान है कि किस मौकेपर (Tact) क्या करना चाहिये। इस निरीक्षण-शक्तिको जाग्रत् करनेके लिये पूर्वकथनानुसार एकाग्रता करके वहाँके कोषोंको परिपुष्ट एवं विशुद्ध करना चाहिये। कठिन-से-कठिन विषयकी गुत्थियाँ भी इस शक्तिसे सरलतापूर्वक सुलझाई जा सकती हैं।

मस्तिष्कको बिचली सतहसे नाड़ियोंके बाहर जोड़े निकलते हैं। प्रत्येक जोड़ा शरीरको कुछ-न-कुछ ज्ञान देता है। ये नाड़ियाँ गर्दनको विशेष पट्ठे भेजती हैं जिससे हमें कुछ-न-कुछ नवीन बात मालूम होती है। इच्छाशक्तिका यथार्थ स्थान कहाँ है? इसका उत्तर ओ हष्णुहारा नामक लेखिकाने अपनी पुस्तक 'Concentration and the acpuirement of personal magnetism' में इस प्रकार दिया है—

'मेरी सम्मतिमें इच्छा अथवा संकल्प-शक्तिका स्थित स्थान नाड़ियोंके उस तेजस्क ओजके भीतर निश्चित किया जा सकता है जो मस्तिष्कको चारों ओरसे घेरे हुए है।' अतएव संकल्प-शक्तिके विकासके लिये यहाँके कोषोंकी वृद्धि कीजिये।

मस्तिष्कके विभिन्न कोषोंपर एकाग्रता करनेसे हमारे रुधिरकी ाति उस ओर होने लगती है और उनकी संख्यामें वृद्धि तथा विकास

होता है। कोई भी कोष हों, बढ़ाने जरूरी हैं। यदि सब बढ़ें तो उत्तम है। अतः किस विशेष भागके कोष बढ़ावें ऐसा न सोचकर इस भावनापर मन एकाग्र कीजिये कि हमारे मस्तिष्कके सब कोष निरन्तर बढ़ रहे हैं। हम निरीक्षणशक्ति, तुलनाशक्ति, न्यायशक्ति, विवेकशक्ति, संकल्पशक्ति सबको ही बढ़ा रहे हैं। यह भाव केवल ऊपरी दिखावा मात्र न होकर पूर्ण अनुभूतियुक्त होना आवश्यक है। उस समय अपनी कल्पनाद्वारा वैसा ही अनुभव करना चाहिये। प्रारम्भमें आत्मस्वरूपकी भावना करनेकी बात कभी न भूलनी चाहिये।

कोषोंकी वृद्धिकी क्रिया जमीनको जोतकर तैयार करनेके समान है। जिस प्रकार उत्तम रीतिसे जोते हुए खेतमें बीज अच्छे उगते हैं, उसी प्रकारके कोषवाले मस्तिष्कमें मानसिक शक्तियाँ उत्तम रीतिसे विकसित होती हैं। इसलिये जिस प्रकारकी शक्तिको हम विकसित करनेकी इच्छा रखते हैं, उसका यथार्थ स्वरूप हमारे लक्ष्यमें रहना अनिवार्य है। ध्यातामें ध्यान करनेकी वस्तुके स्वरूपकी यथार्थ कल्पना अत्यन्त आवश्यक है। योगशास्त्रका यह एक अखण्डनीय सिद्धान्त है कि ध्यान करनेवाला जिसका ध्यान करता है, उसीके समान हो जाता है। अतः मानसिक शक्तियोंका विकास चाहनेवालों-को भी जिस शक्तिका विकास करना है, उसके स्वरूपको अच्छी तरह लक्ष्यमें रखना चाहिये।

कल्पना कीजिये कि हम अपने अंदर श्रद्धा, भक्तिभाव, अन्तर्ज्ञान इत्यादि आध्यात्मिक शक्तियाँ विकसित करना चाहते हैं। इन शक्तियों-के जाग्रत् और विकसित होनेका स्थान मूर्धा और उसके नीचेका प्रदेश है। इन स्थानोंमें एकाग्रता करते समय हम सच्ची भक्ति, सच्ची

श्रद्धा और अन्तर्ज्ञानके जिस नमूनेको सामने रक्खेंगे, वही हममें क्रमशः प्रकट होने लगेगा। अतएव जिस शक्तिके विकासका हमने निश्चय किया है, उसके ऊँचे-से-ऊँचे स्वरूपकी, जहाँतक हमारी बुद्धि पहुँच सके वहाँतक, कल्पना करनी चाहिये और उस उच्च कल्पनामें वृत्तिको आरूढ़ करके पूर्वोक्त क्रिया श्रद्धापूर्वक करनी चाहिये। इससे मस्तिष्कके कोष बढ़ेंगे, शुद्ध होंगे और वह काल्पनिक शक्ति धीरे-धीरे बढ़ने लगेगी।

तीसरी बात है सामर्थ्यकी। मन जिस सामर्थ्यसे परिपुष्ट होता है उस सामर्थ्यकी वृद्धि करनेकी भी आवश्यकता है। प्रत्येक मनुष्यमें यह सामर्थ्य एक बड़े परिमाणमें प्रस्तुत रहता है; पर अधिकांश व्यक्ति इसका अधिकतर भाग निकम्मी क्रियाओंमें यों ही नष्ट कर दिया करते हैं, बैठे-बैठे पाँव हिलाना आँख, नाक या गुप्त अङ्ग टटोलते रहना, साररहित बातें सोचना, या यों ही बेमतलबकी बातें करना या सुपारी चबाते रहना आदि शरीरकी निकम्मी क्रियाएँ हैं। इनसे मनकी सामर्थ्य-शक्तिका क्षय होता है। क्रोध, चिन्ता, भय इत्यादि विविध विकारोंसे तो सामर्थ्यका बड़ा नाश होता है। जो दिनभरकी आय होती है क्षोभ और नाराजगीमें बह जाती है। संचित सामर्थ्यका भी क्षय होता है। अतः मानसिक शक्तियोंके इच्छुकको सब प्रकारके क्षयोंसे बचनेकी आवश्यकता है। मन पूरी शान्त स्थितिमें रहना आवश्यक है। वाणी और शरीरके सब व्यर्थ प्रपञ्च छोड़कर मनको शान्त स्थितिमें रखनेका प्रयत्न करना आवश्यक है। इससे हमारा बल-संचय होता है और हमें एक अद्भुत सामर्थ्यका अनुभव होता है।

जिस सत्संस्कारी व्यक्तिको इस बलका अनुभव हो उसे चाहिये कि अपने योग्य उचित वातावरण खोज ले और निरन्तर मानसिक शक्तियोंको पूर्वोक्त प्रकारसे विकसित करता रहे ।

मानसिक शक्तियोंकी अभिवृद्धिके लिये अनुकूल संगति और परिस्थितियोंकी परम आवश्यकता है। अपने उद्देश्यके अनुकूल उचित वातावरण उपस्थित कीजिये । जिस वातावरणमें मनुष्य रहता है, वे ही मानसिक शक्तियाँ क्रमशः उत्पन्न और बढ़ती हुई दिखायी देती हैं । जिस व्यक्तिके परिवारमें, मित्रोंमें, मिलने-जुलनेवालोंमें कवि अधिक होते हैं, वह प्रायः कवि ही हो जाया करता है। सैनिकों और सिपाहियोंके कुलमें रहनेवाला व्यक्ति प्रायः निडर हो जाया करता है। आप जिस प्रकारकी मानसिक शक्तियोंका उद्भव चाहते हैं वैसे ही व्यक्तियोंमें रहिये, वैसी ही पुस्तकोंका अध्ययन कीजिये, वैसे ही मनुष्योंके चित्र देखिये और निरन्तर वैसे ही चिन्तनमें निमग्न रहिये। अपने अभीष्टकी भावनापर मनको एकाग्रकर गम्भीरतापूर्वक स्थिर कीजिये। उपयुक्त वातावरणमें रहनेसे, मानसिक व्यायामसे, भिन्न-भिन्न क्रियाओंके अभ्याससे, मनकी शक्ति तीव्र की जा सकती है।

मनकी शक्ति एकाग्रता एवं मननसे विकसित होती है । इधर-उधर चञ्चलतापूर्वक भ्रमण करनेसे, चिन्ताओं एवं भ्रान्तियोंके वशीभूत होनेसे, मनःप्रवृत्ति अनेक दुर्दमनीय कष्टोंका, अनेक पराजयोंका कारण बनती है । यदि एक निर्दिष्ट कार्यमें मन एकाग्र न किया जाय तो समस्त प्रयत्न निष्फल होते हैं। निर्दिष्ट समयपर अन्य समस्त विचारोंको मनःप्रदेशसे बहिर्गत कर एक तत्त्वपर अन्तर्नेत्र एकाग्र करनेसे मनकी शक्ति प्रकट होती है ।

एकाग्र ध्यानके दो मुख्य प्रकार हैं—अक्रिय तथा सक्रिय। अक्रिय ध्यानमें इन्द्रियोंको शान्त कर मनोवृत्तिको ग्राहक किया जाता है। समस्त वृत्तियोंको पूर्ण शान्त रखना होता है। 'मैं पृथ्वीपर परमात्म-तत्त्वका महत्तम, सर्वोच्च एवं सर्वोत्कृष्ट रूप हूँ।'—केवल इसी भावपर चित्तवृत्तियोंको एकाग्र रखना होता है। ध्यानका दूसरा भेद है—सक्रिय ध्यान। सक्रिय ध्यानमें मनको क्रियात्मक ग्रहणोचित वृत्तिमें रक्खा जाता है। एकाग्रतासे शब्द सुनना होता है। एक ही साथ भावनाओंको ग्रहण करना एवं बाहर भेजना होता है। इस प्रकार मनकी द्विधा क्रिया होती है। जो कुछ कहा जाता है, उसे सुनने एवं उसी समय निर्णय करके मूक मानसिक उत्तर देते हैं।

हमें क्या इष्ट है ?

आप अपना अक्रिय ध्यान उस व्यक्तिकी ओर मत कीजिये जो आपसे अनुग्रह अथवा लाभ उठाना चाहता है। यद्यपि आपको दूसरेकी भावनाएँ ग्रहण करनी चाहिये, तथापि आपको अपने मनकी ऐसी विहित वृत्ति रखनी चाहिये, जिससे आपपर किसी अवाञ्छनीय प्रभावका आक्रमण न हो सके। आपको द्वारपालके समान स्थिर रहना चाहिये तथा किसी अनुचित तथा अनर्थकारी सूचना (Suggestion) का संचार मनके भीतर न होने देना चाहिये, बाहर भेजा हुआ प्रत्येक विचार आपकी इच्छाके वशमें होना चाहिये। जबतक सत्यभाषणका स्वभाव स्थिर-रूपसे न बन जाय, तबतक प्रत्येक शब्द-को सावधानीसे बोलते रहिये तथा प्रत्येक कार्य सूक्ष्म अन्तरात्माकी

अनुमतिसे करते रहिये। प्रत्येक कार्यमें अपनी सच्ची संकल्प-शक्तिका संचार करते रहिये।

दार्शनिक कैन्टने एक स्थानपर निर्देश किया है कि नीतिमय जीवनका प्रारम्भ होनेके लिये विचारक्रममें परिवर्तन तथा आचारका ग्रहण आवश्यक है। भारतीय परिभाषाके अनुसार—

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यग् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्॥ (उपनिषद्)

अर्थात् सत्य, तप तथा सात्त्विक ज्ञान और नित्य निर्विकार रहनेसे ही आत्मतत्त्वका दर्शन हो सकता है। ये सभी बातें मनः-साधनाकी ओर संकेत करती हैं। जीवनमें दर्शनका फल है मानस सत्यका उदय। साधनाकी भावनासे सात्त्विकी श्रद्धाका जन्म होता है। चित्तके विषयको अपने अध्यवसायकी क्षमताके अनुभवका विषय बना सकना ही श्रद्धाका लक्षण है। भारतीय विचारकोंने अपने वाङ्मयके उषःकालसे ही इस महत्त्वपूर्ण तत्त्वको समझकर उसका प्रचार किया है। ज्ञानसिद्धि, ऋषि-महर्षियोंका जो साक्षात्कार था, उसको उन्होंने 'श्रुति' कहा है। श्रुतिका जन्म प्रज्ञासे होता है। प्रज्ञा (Intuition) ज्ञान-प्राप्तिका सबसे सूक्ष्म साधन है। योग-समाधिके द्वारा चित्तको संस्कृत करनेका फल हमारे ज्ञान-यन्त्रके लिये पतञ्जलिने यों बतलाया है—**'ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा'** (पा० यो० १।४८) अर्थात् आध्यात्मिक दर्शनकी उच्चतम अवस्थामें ऋतम्भरा प्रज्ञाका उदय होता है। ऋत जिसमें भरता हो, ऐसी बुद्धि ऋतम्भरा है। मनके तर्क-वितर्कद्वारा संचय होनेवाला

ज्ञान सत्य है । हृदयकी अनुभूति या तत्त्वसाक्षात्कारसे उपलब्ध अनुभव 'ऋत' है । योगीकी प्रज्ञा ऋतात्मक ज्ञानका भरण करती है ।

बुद्धिका यथार्थ स्वरूप

बुद्धि यथार्थमें प्रतिभाकी एक संस्कारित स्वरूप है । भावुकता अर्थात् कल्पनात्मक महानुभूति बुद्धिका एक गुण है । नाना प्रकारके विचार, कल्पनाएँ, मानस-चित्र निर्माण करना, सोचना, तर्क करना बुद्धिके व्यापार हैं । कुशाग्र बुद्धिवाला व्यक्ति अधिक अस्पष्ट मानस-चित्र विनिर्मित करता है । कल्पना करना, ज्ञानके आधारपर उन मानस-चित्रोंको अधिकाधिक स्पष्ट करना, उनमें भावुकता (Feeling) का संचार करना—यह बुद्धिमानीकी आन्तरिक अवस्था है । जबतक उक्त तत्त्वोंमें पूर्ण सामञ्जस्य नहीं, तबतक बुद्धिमें परिपक्वताका संचार नहीं हो सकता । तर्कसे कल्पनाका अनौचित्य प्रक्षालित होता है और बुद्धिका विशुद्ध व्यावहारिक रूप प्रकट होता है । बुद्धिमान्की विविध योजनाएँ व्यावहारिकताके आधारपर विनिर्मित होती हैं । मनुष्यके मनका विकास अधिकतर उसकी बुद्धिके विकासपर ही निर्भर है । बुद्धिकी शक्ति मस्तिष्कके सूक्ष्म कोषों (Cells) में निवास करती है । जिज्ञासा एवं स्मरणशक्ति बुद्धिके विशिष्ट अङ्ग-प्रत्यङ्ग हैं । मननसे मनकी शक्ति बढ़ती है । निर्दिष्ट समयपर दूसरे सब विचारोंको छोड़कर एक 'आत्मतत्त्व' पर मनको एकाग्र करना चाहिये ।

चित्तकी शाखा-प्रशाखाएँ

चित्तका प्रधान कार्य जानना या अनुभव करना है । चित्तको

योगदर्शन एवं सांख्यसूत्रोंमें प्रकृतिके सत्त्वगुणका परिणाम माना गया है। चित्त वृत्तियोंका भंडार है। चित्तकी वृत्तियोंको वशमें करना, रोकना, निरोध करना ही शान्तिका मूल है—'**योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।**' (पा० यो० १।२)

चित्तकी वृत्तियोंके दो भेद हैं—अन्तर्वृत्ति, बहिर्वृत्ति। कुछ व्यक्तियोंकी वृत्ति बाह्य संसारकी उलझनोंसे ऊबकर अन्तः-करणके विवेककी ओर लग जाती है। इसमें व्यक्ति अन्तर्जगत्के गूढ रहस्योंमें पूर्ण निमग्न रहता है। वह आत्माके अन्तरालमें विचरण करता है। प्रकृत पुरुषका वास्तविक ज्ञान ही उसका प्रधान लक्ष्य होता है और इस तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिसे समस्त क्लेश दूर हो जाते हैं।

द्वितीय वृत्ति है बहिर्वृत्ति अर्थात् केवल सांसारिक वस्तुओंका देखना, सुनना, उनमें लिप्त रहना। रजोगुण एवं तमोगुणके कारण विषयोंकी ओर वृत्ति झुकी रहती है; जैसे काम, क्रोध, लोभ, आलस्य इत्यादिमें प्रवृत्ति। अधिकांश अस्थिर व्यक्तियोंकी वृत्ति बहिर्वृत्ति ही होती है। विषयोंमें लिप्त रहनेके कारण उन्हें नाना प्रकारके क्लेशोंको भोगना पड़ता है। भोगकी सांसारिक वृत्तियोंको क्लिष्ट कहते हैं।

पतञ्जलिके अनुसार चित्तवृत्तियाँ—

वृत्तियाँ अगणित भी हो सकती हैं। महर्षि पतञ्जलिके अनुसार वृत्तियोंका स्वरूप देखिये। महर्षि पतञ्जलि कहते हैं—'प्रमाण-विपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः' (१। ६)। लौकिक ज्ञानका जो सम्बन्ध है, वह प्रमाण कहलाता है। इसके तीन भेद हैं—

प्रत्यक्ष, अनुमान एवं आगम । प्रत्यक्ष वह ज्ञान है जो नेत्रों इत्यादि इन्द्रियोंसे प्राप्त है । अनुमान उसे कहते हैं जिसे हम कुछ चिह्न देखकर अनुमान कर लेते हैं । 'आगम' शास्त्रोक्त वचन अर्थात् सच्चे तत्त्वज्ञानी आप्त मनुष्योंके शब्दोंद्वारा प्राप्त होता है । अन्य चार वृत्तियाँ ये हैं––

विपर्यय––जिससे मिथ्या ज्ञान हो । **'विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्'** (पा० यो० १ । ८) अर्थात् वह ज्ञान जो सच्चे रूपमें स्थित नहीं है ।

विकल्प––जो वस्तु शून्य अर्थात् वास्तवमें कुछ हो ही नहीं, किन्तु केवल शब्दमात्रसे जानी जाय । वेदान्ती समग्र संसारकी वस्तुओंको विकल्प ही मानते हैं ।

निद्रा––किसी पदार्थके न होनेका प्रत्यय अर्थात् ज्ञान जिस वृत्तिका आलम्बन है उसे निद्रा कहते हैं । जब स्वप्न आते हों तो वह निद्रा नहीं है ।

स्मृति––अन्तिम वृत्ति स्मृति है । यह अनेक दुःखोंका कारण बन जाती है । अतएव इसका विरोध होना आवश्यक है । **'अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः'** (पा० यो० १ । ११) । स्मृति अनुभवसे न्यूनका तो ज्ञान कराती है, किन्तु अधिकका नहीं ।

उक्त वृत्तियाँ यदि सात्त्विक हों तो सुख उत्पन्न करेंगी और सुखसे राग उत्पन्न होगा । अर्थात् मन सुखके वशीभूत होगा तो मुक्तिमें बाधा पड़ जायगी । इन वृत्तियोंका विरोध ही मुक्तिकी इच्छा करनेवालेको परमावश्यक है ।

स्वाध्यायमें सहायक हमारी ग्राहक-शक्ति

'स्वाध्याय' का तात्पर्य है—ग्रन्थोंद्वारा स्वयं ज्ञानार्जन करना, किंतु यह बहुत संकुचित अर्थ हुआ। 'स्वाध्याय' का बड़ा व्यापक अर्थ है। हम संसारमें फिरते हैं, नाना व्यक्तियों, संस्थाओं, घटनाओं और शुभ-अशुभ अनुभवोंको देखते हैं। अनेक व्यक्ति, नेता, पण्डित, मुल्ला, उपदेशक, अध्यापक हमें नाना ज्ञान-विज्ञान देते हैं। ये प्रत्येक हमारे अध्ययनकी वस्तु हैं। इन सभीके अनुभवोंसे निष्कर्ष निकालकर हम अपने ज्ञानभण्डारको विकसित कर सकते हैं।

किंतु स्वाध्यायमें सबसे अधिक महत्त्व जिस तत्त्वका है, वह हमारी ग्राहक-दृष्टि है। यों तो हम बहुत-सी पुस्तकें पढ़ते हैं, अनेक व्यक्तियोंके भाषण सुनते हैं, किंतु जो कुछ देखते, पढ़ते अथवा सुनते हैं, उसमें महत्त्व इस बातका है कि हम वास्तवमें ग्रहण कितना करते हैं, हमारे मस्तिष्कमें कितना ज्ञान ठहरता है और स्थायीरूपसे हमारे मानसिक संस्थानका अङ्ग बनता है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि जितना अधिक हम पढ़ते हैं, वास्तवमें उससे बहुत ही कम हम ग्रहण कर पाते हैं। हमारा मस्तिष्क बहुत कम ज्ञान ग्रहण करता है।

वह व्यक्ति भला क्योंकर स्वस्थ एवं शक्तिशाली बन सकता है, जो भोजन तो बहुत परिमाणमें करता है, भोजन भी पौष्टिक है, पर उसकी पाचन-क्रिया व्यवस्थित नहीं है? वह जो खाता है निकाल देता है। जबतक उदरमें भोजनके रस एकत्रित होकर स्थायीरूपसे

स्वास्थ्य-शक्ति नहीं देते तबतक उसकी शक्तियोंमें अभिवृद्धि असम्भव है। यही हाल मस्तिष्कका है। यदि पढ़ने, देखने और सुननेपर आपका मस्तिष्क बहुत कम ग्रहण करता है, तो स्वाध्यायसे अधिक लाभ सम्भव नहीं है।

अतः ग्रहण-शक्तिकी वृद्धि करना नितान्त आवश्यक है। जिस दिमागकी जितनी यह ग्राहक-शक्ति तीव्र होगी, वह उतना ही समुन्नत सशक्त और ज्ञान-भण्डारसे पूर्ण हो सकेगा। ग्राहकशक्ति-सम्पन्न व्यक्ति एक ही पुस्तक, घटना या दृश्यको देख उसे अपने स्मृतिकोषमें रखकर प्रचुर और स्थायी लाभ उठा सकता है।

ग्रहण-शक्ति मनुष्यके मस्तिष्कके लिये उतनी ही उपयोगी है, जितनी पाचन-शक्ति उदरके लिये आवश्यक है। पाचन-शक्ति हमें नया रक्त, नया मांस, मज्जा, उत्साह और स्वास्थ्य देती है तो ग्राहक-शक्ति हमारे मस्तिष्कको समृद्ध बनाती है। नया ज्ञान हमारे मनमें स्थायीरूपसे ठहर जाता है और हम जीवनपर्यन्त उससे लाभ उठाते रहते हैं।

प्रश्न है ग्राहक-दृष्टि कैसे बढ़े? यदि आप दृढ़तासे कहें तथा उसके लिये मनोयोगपूर्वक प्रयत्न करें, तो सच मानिये आपकी ग्राहक-शक्ति तीव्र हो सकती है।

अपने मनको यह आदत डालिये कि वह संसार, समाज, घटनाको गम्भीर दृष्टिसे देखे। यदि कोई पुस्तक पढ़ रहे हैं तो उसे भी गहरी भेदभरी नजरसे पढ़ा कीजिये! ऐसा प्रयत्न कीजिये कि ऊपरी छिछली दृष्टिसे नीचे गहराईमें उतरकर आप अपने अनुभव,

घटना, पुस्तक आदिका निगूढ़तम विश्लेषण कर सकें। व्यक्तियोंसे जब आप वार्तालाप करें, तब भी गम्भीर दृष्टिसे ही कीजिये। ऊपरी बालोचित हलकी-फुलकी बातोंमें निमग्न मत रहिये।

एक विद्वान्‌के ये अनुभवपूर्ण विचार देखिये। वे लिखते हैं—

'जो घटनाएँ प्रतिदिन हमारे साथ घटित होती हैं, या जो कुछ अनुभवमें आती हैं, उनको जरा गहरी दृष्टिसे देखनेकी आदत डालें; तो बहुत-सी नयी बातें मालूम होती हैं।....जो प्रिय विषय हो, जिसमें विशेष ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा हो, जिसे अपना लक्ष्य स्थिर किया हो, उसमें विशेष योग्यता प्राप्त करनेके लिये सदा दत्तचित्त रहो। मान लो कि तुम बलवान् होना चाहते हो तो शारीरिक बल-सम्बन्धी जो उपदेश, उदाहरण, घटनाएँ या अनुभव देखो उनमें विशेषरूपसे चित्त लगाओ और गम्भीरतापूर्वक विचार करो कि इसमें क्या बात हानिकारक और क्या उपयोगी है। हम क्या भूल रहे हैं और किन-किन नियमोंका पालन करनेसे लाभ उठा सकते हैं। इस प्रकार यदि प्रतिदिन कुछ गम्भीर सोच-विचार करते रहे, तो बहुत लाभ होगा। गम्भीरतासे किया हुआ विचार कभी व्यर्थ नहीं जाता। वह विचारोंसे विश्वासमें आता है और विश्वाससे अनुभवमें परिणत हो जाता है। यह अनुभव यदि क्रियामें आ जाय, या आदत बन जाय, तो जीवन उच्चकोटिका बन जाता है।'

वास्तवमें गम्भीर दृष्टिसे देखकर ही स्थायी लाभ उठाया जा सकता है। जलपर ऊपर झाग-ही-झाग फैले रहते हैं। ऊपरी निगाहसे देखनेवाला धोखा खा सकता है, किंतु गहराईसे प्रविष्ट

होनेवाला उसकी निस्सारतासे तुरंत परिचित हो जाता है।

गम्भीर दृष्टिका महत्त्व हमारे बड़े-बड़े नेताओं, धर्मप्रचारकों, विद्वानोंने सदैव समझा है। गौतम बुद्धको विलासके रंगीन वातावरणमें रखकर संसारके माया-मोहमें बाँध रखनेके नाना प्रयत्न किये गये, किंतु वृद्ध, रोगी और मृतकको गहरी दृष्टिसे अवलोकन कर वे संसारकी निस्सारता, क्षणभङ्गुरता और निर्बलतासे परिचित हो गये। वे वस्तुओंकी जड़में प्रविष्ट होकर आधारभूत तत्त्वोंको देखा करते और वस्तुओंका यथार्थ मूल्याङ्कन किया करते थे।

हलकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण विषय, महान् ग्रन्थ तथा स्थायी अनुभव भी साधारण प्रतीत होता है और मन अपनी पूरी शक्तिसे ग्रहण नहीं करता। हमें सभी कुछ तुच्छ प्रतीत होता है। अनेक व्यक्ति घंटों अपने सामने पुस्तकें लिये बैठे रहते हैं, पढ़नेका अभिनय करते रहते हैं, पर शक्तियोंको एकाग्र न करनेके कारण वास्तविक उन्नति कुछ भी नहीं होती। उलटे असफलता मिलती है और आत्मविश्वास नष्ट हो जाता है।

जो कुछ सोचें, गम्भीरतासे सोचें, खूब विचार करें, हर पहलूसे देखें, मानस-चित्र निर्मित करें। जीवनके हर मोर्चेपर गम्भीर दृष्टि आपको लाभ देगी, भली-बुरी बाजारकी वस्तुओं और समाजके मनुष्योंके चुनावमें सहायक होगी। गम्भीर दृष्टिसे चिन्तन-मनन एक उत्तम मानसिक प्रक्रिया है जो सशक्त मनकी सूचक है। अतः गम्भीर दृष्टिसे देखनेकी आदत विकसित कीजिये।

आपकी अद्भुत स्मरणशक्ति

मनुष्यके ज्ञानकी वृद्धि करने और संसारके ज्ञानको आगे बढ़ानेवाली शक्तियोंमें मनुष्यके मस्तिष्ककी स्मरणशक्ति महत्त्वपूर्ण है। अन्य जीवोंकी अपेक्षा मनुष्यमें स्मरणशक्ति विशेष विकसित रूपमें पायी जाती है। ज्ञानभण्डारको बढ़ानेमें इसका प्रमुख स्थान है। लेखकों, इतिहासकारों, वक्ताओं, ऋषि-मुनियोंका ज्ञान उनकी स्मृतिमें संचित रहता है। जब पुस्तकें नहीं थीं, तो अध्यापकोंका मस्तिष्क ही पुस्तकें थीं और उनकी स्मरणशक्तिके कारण ही उनका इतना मूल्य था। जो कुछ वे उच्चारण करते थे, उसे शिष्यको अपनी स्मृतिमें धारण करना पड़ता था। पुस्तकोंके प्रचारसे स्मरणशक्ति निर्बल हो गयी है, फिर भी अनेक व्यक्तियोंमें अद्भुत स्मरणशक्ति पायी गयी है और आज भी पायी जाती है।

अंग्रेजी भाषामें लार्ड वायरन, मैकाले अपनी स्मरणशक्तिके कारण बहुत प्रसिद्ध रहे हैं। लार्ड मैकालेके मस्तिष्ककी तुलना ब्रिटिश म्यूजियम लाइब्रेरी, लंदनके विशाल पुस्तकालयसे की गयी है। कहते हैं कि जिस विषयपर उन्हें आवश्यकता होती थी, उसीके सम्बन्धमें असीमित ज्ञान-निर्झर उनमेंसे बह निकलता था। उपन्यास, कहानी, भ्रमण या इतिहास किसी भी विषयपर वे धाराप्रवाह बोल सकते थे। वे जो भी पुस्तक पढ़ते थे, उन्हें शब्द-शब्द स्मरण रह जाता था। मिल्टन 'पैराडाइज लॉस्ट' जैसा महाकाव्य उन्होंने एक रात्रिमें याद कर डाला

था । कवि बायरनके विषयमें कहा जाता है कि उन्होंने जितनी भी कविताएँ लिखी थीं, जीवनके अन्तिम क्षणोंतक कण्ठस्थ थीं । लार्ड बेकनकी स्मरणशक्ति इतनी तीव्र थी कि अपने लिखे हुए निबन्ध वे शब्द-शब्द बोल देते थे। अमेरिकाके प्रसिद्ध वनस्पतिविशेषज्ञ असाग्रेकी स्मरणशक्ति इतनी तीव्र थी कि उन्हें २५००० वनस्पतियोंके नाम स्मरण थे । अमेरिकाके भूतपूर्व राष्ट्रपति राजनीतिज्ञ थेडोर रूजवेल्ट जिससे एक बार मिलते थे, आयुभर उसे नहीं भूलते थे। कहते हैं, एक बार जापानमें वह एक सज्जनसे पंद्रह वर्ष बाद बाजारमें अकस्मात् मिले तो देखते ही उनका नाम पुकारा और बातचीत प्रारम्भ कर दी और आपको आश्चर्य होगा कि वार्तालापका विषय पंद्रह वर्ष पूर्वका विवाद था । दक्षिणी अफ्रीकाके भूतपूर्व प्रधान मन्त्री जनरल स्मट्सको अपने पुस्तकालयकी प्रत्येक पुस्तकका प्रत्येक शब्द, पृष्ठ और परिच्छेद स्मरण था और यह बता सकते थे कि अमुक पुस्तक अमुक अलमारीमें रखी है और अमुक पृष्ठपर अमुक शब्द लिखे हैं । भारतके क्रान्तिकारी नेता श्रीहरदयालकी अद्भुत स्मरणशक्तिके विषयमें अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं । आज भी वाराणसीके महामहोपाध्याय डा० श्रीगोपीनाथ कविराजको सहस्रों ग्रन्थ तथा उनके विषय याद हैं । उनके आस-पास विभिन्न विषयोंके डाक्ट्रेट-प्राप्त करनेके प्रत्याशी विद्वानोंकी भीड़ लगी रहती है ।

उपर्युक्त कुछ उदाहरणोंसे यह स्पष्ट है कि यदि प्रयत्न, अभ्यास और श्रम किया जाय, तो आज भी हम अपनी स्मरणशक्तिको बढ़ा सकते हैं । अन्य उच्च शक्तियोंकी तरह प्रत्येक व्यक्तिमें स्मरणशक्ति विद्यमान है ।

आपने यह गलत धारणा बना ली है कि आपकी स्मृतिशक्ति निर्बल है। स्मरण रखना एक प्रकारका मानसिक मार्ग है, जिसे टहलने, बातचीत करने, भोजन करने, ध्वनि पहचाननेकी ही भाँति पृथक्-पृथक् स्पष्ट करना पड़ता है। ये सब कार्य आपने बचपनमें सीखे थे और उपर्युक्त सब क्रियाएँ आप स्वतः पूर्ण कर सकते हैं। आपके चेतन मस्तिष्कको इन क्रियाओंके करनेमें कोई विशेष श्रम नहीं करना पड़ता। मानसपटलपर स्वतः ही मानस-चित्र बनते जाते हैं और अतीत मूर्तिमान् होता रहता है। स्मृति एक प्रकारकी आदत है और इसके लिये श्रम और अभ्यासकी आवश्यकता है। कोई भी चेष्टा करनेसे अपनी स्मरणशक्तिका विकास कर सकता है।

हम बातें, वस्तुएँ, व्यक्तियोंको क्यों भूलते हैं? कारण यह है कि हम नवीन ज्ञानको पुराने संचित ज्ञानसे नहीं जोड़ते। अलग-अलग पड़े हुए ज्ञान या अनुभव-कण एकदम भूल जाते हैं, पर यदि हम नये अनुभवों या ज्ञानको स्मृति-कोषमें संचित पुराने ज्ञानसे संयुक्त कर दें, तो नयी बातें अटकी रह जाती हैं और भूलती नहीं। केवल हमें संयुक्तीकरण या पुराने ज्ञानसे नया ज्ञान संयुक्त करनेकी आवश्यकता है।

विलियम जेम्स लिखते हैं, 'मानसिक क्षेत्रमें जितना भी पुराने ज्ञानसे नया ज्ञान मिलाकर, संयुक्त कर, नयी बातोंका पुरानी बातोंसे मिलाकर रक्खा जायगा, उतना ही हम नयी बातोंको याद रख सकेंगे। प्रत्येक पुरानी बातसे संयुक्त होकर नयी बात याद रहती

है । पुरानी बात एक हुक या कड़ीकी तरह है, जिसमें नयी बात अटक जाती है । जैसे कटुँवेसे मछली अटककर ऊपर आ जाती है, उसी प्रकार पुराने संचित विचारोंसे बँधी हुई नयी जानकारी हमें याद रहती है ।'

अतः नयी वस्तुओं, विचारों, व्यक्तियोंको अपने मस्तिष्कमें मौजूद संचित ज्ञान-राशिसे संयुक्त करते रहिये । आदमीको उसके पेशे या स्थानसे मिलाकर याद रख सकते हैं । एक ही प्रकारके विचारोंको साथ-साथ संयुककर याद रक्खा जा सकता है ।

जिस वस्तु या विचारको याद रखना है, उसे बढ़ा-चढ़ाकर मनमें विकसित दीर्घ मानस-चित्र बनाकर देखिये । बार-बार लम्बे मानस-चित्र चेतनाके स्तरपर रखनेसे वस्तुएँ और विचार याद रहते हैं । मानस चित्रोंके निर्माणका अभ्यास निरन्तर करते रहिये ।

स्मृतिको बढ़ानेका एक तत्त्व क्रिया (एक्शन) है । जो वस्तुएँ हिलती रहती हैं, हम उनकी ओर अधिक आकृष्ट हो जाते हैं । थियेटरमें जनता हिलने-डुलने या तेजीसे क्रियाएँ करनेवाले अभिनेताके प्रति अधिक आकृष्ट होती है । यदि आप अपने विचारोंको क्रियाका रूप दे डालें तो बात जल्दी याद रहेगी । यही कारण है कि जो बात बार-बार उच्चारण करनेसे याद नहीं रहती, वह बार-बार लिखनेसे याद हो जाती है । कारण, जितनी देरतक हम कोई बात लिखते हैं, उतनी देरतक वही विचार हमारे मानसिक नेत्रोंके सम्मुख रहता है । मनमें निरन्तर क्रिया चलती रहती है ।

कार्य जितना ही तेज या चकित करनेवाला होता है, उतना

ही अधिक स्मरण रहता है। यदि आपके साथ कोई खूनी घटना हो जाय, तो सदैव याद रहती है। जिस बातमें हमारा जितना अधिक ध्यान या रुचि रहती है, उतनी ही वह स्मरण रहती है। अतः जिन कठिन विषयोंको आप याद रखना चाहते हैं, उनके प्रति अपनी रुचि-वृद्धि कीजिये। दिलचस्पी बढ़ानेसे ध्यान (Attention) जमता है और ध्यानसे बातें याद रहने लगती हैं। जितना अधिक ध्यान लगेगा, उतनी अच्छी एकाग्रता होगी। अतः धीरे-धीरे अपने मनको एकाग्र करनेका सतत अभ्यास करना चाहिये। जिस बातको वास्तवमें हम याद रखना चाहते हैं, एकाग्रता, ध्यान और दिलचस्पी लेकर अवश्य ही हम उसे स्मरण रख सकते हैं। हमें अपने स्मृति-कोषसे यह चुनना चाहिये कि वास्तवमें हम क्या याद रखना चाहते हैं। जिन विचारोंको आप चुनें, केवल उन्हींपर मनको एकाग्र करें।

स्मृति भिन्न-भिन्न प्रकारकी होती है। कोई व्यक्ति कविताकी पंक्तियाँ अधिक याद रख सकता है, तो दूसरा बिसातीकी दूकानकी सैकड़ों छोटी-छोटी वस्तुएँ, तीसरा पंसारीकी दूकानके मसाले, दवाइयाँ इत्यादि। आप एक कागजपर उन वस्तुओंको लिखिये, जिन्हें एक सभ्य संस्कृत विद्वान्‌को स्मरण रखना चाहिये। यदि आप डाक्टर हैं, तो दवाइयों, मानव-शरीरके हिस्सों, हड्डियों आदिको स्मरण रखना आपके लिये उत्तम रहेगा। इतिहासकारको व्यक्तियोंके नाम, सन्, तिथियाँ आदि याद रखना काम देगा। इसी प्रकार अध्यापक, राजनीतिज्ञ, नेता, बैंकर या सम्पादकको भिन्न-भिन्न बातें याद रखनेसे लाभ होगा। अतः अपने कामकी बातोंको याद रखनेमें ही ध्यानको

एकाग्र कीजिये। निरन्तर अभ्यास करनेसे ये वस्तुएँ स्वतः याद होने लगेंगी।

मान लीजिये, आप विद्यार्थी हैं तथा आपको कोई लम्बा पाठ या इतिहासकी सामग्री स्मरण करनी है। अथवा आप वक्ता हैं और आप-को भाषण देनेके लिये दस-बारह बातें याद रखनी हैं। इसमें भी आप संयुक्तीकरणकी युक्तिसे काम लें, अर्थात् एक-एक बातको पूर्व संचित तत्त्वसे जोड़कर याद करें। पहले एक बात याद करें, फिर उसीसे दूसरी जोड़कर धीरे-धीरे दोनोंको दुहरावें। फिर तीसरी जोड़कर तीनोंको क्रमानुसार दुहराएँ। इसी प्रकार धीरे-धीरे एक-एक नयी बात और जोड़ते चलें। इस प्रकार आप समूची रूप-रेखा स्मरण कर लेंगे। प्रतिदिन कुछ समयके लिये पुरानी बातें दुहराते जानेसे ज्ञान विस्मृत नहीं होता। विचारोंको मजबूतीसे पकड़िये। छिछले विचारके सामने कोई मानसिक मूर्ति स्पष्ट नहीं आती। बीचमें बात याद नहीं रहती। अतः गहनतासे सोचनेकी आदत डालिये। रचनात्मक विचार संगठित रूपसे विचार करता है और मनमें उनकी मूर्ति स्पष्ट बनाता है।

लेखकोंको अपनी स्मरणशक्ति बढ़ानेके लिये स्टीवनसन नामक अंग्रेजी लेखककी विधिसे काम लेना चाहिये। उनका मत था कि विचार मनमें आते हैं और यदि उन्हें मजबूतीसे पकड़ न लिया जाय, तो वे गायब हो जाते हैं। अतः वे हमेशा एक डायरी साथ रखते थे, जिसमें पेंसिलसे नये विचार नोट कर लेते थे, नोट कर लेनेसे विचार विस्मृत न होते थे। कागजपर लिखे हुए नये विचार बढ़ाये जा सकते हैं और हमारी स्मृतिको सहायता देते हैं।

स्मरणशक्ति मनकी एक शक्ति है। प्रत्येक शक्तिको विकसित करनेका यह नियम है कि उससे अधिक-से-अधिक काम लिया जाय। जिन शक्तियोंसे काम लिया जायगा, वे ही बढ़ेंगी। शेष नष्ट हो जायँगी। कार्य करनेसे ही शक्तियाँ बनी रहती हैं, अन्यथा पंगु हो जाती हैं। अतः अपने मस्तिष्कसे नित्य नियमित कार्य लेते रहिये। रचना, समन्वय, संघटन, प्रेरणा देना और निर्णय करना, नये-नये विचार-कल्पनाएँ देना—ये सभी श्रेष्ठ कार्य अपने मस्तिष्कसे लेते रहिये। इनमें स्मरणशक्ति काममें आती रहेगी और आप एक कुशल व्यक्ति बने रहेंगे।

स्मरणशक्तिको विकसित करनेका निरन्तर अभ्यास करते रहना चाहिये। जैसे आप किसी पुस्तकके अंशको या किसी कविता, किसी पंक्तिको पढ़ लीजिये, फिर पुस्तक बंद कर मनमें धीरे-धीरे उन्हीं अंशोंको कहिये या उन्हीं अंशोंको लिखनेका प्रयत्न कीजिये। इस अभ्याससे स्मरणशक्ति विकसित हो जायगी। जितना अधिक ध्यान आप पुस्तकको पढ़ने, लिखने और वस्तुओंको गहराईसे देखनेमें लगायँगे, उतना ही उत्तम है। मस्तिष्क उतनी ही पूर्णतासे विचारोंको पकड़ेगा। अतः ध्यानपूर्वक बातोंको समझने और गुप्त मनमें क्रमानुसार सजानेका प्रयत्न किया कीजिये। क्रम तथा व्यवस्थासे अनेक विचार स्मृतिकोषमें दीर्घकालतक सजे रहते हैं, जब कि अव्यवस्थित रूपसे थोड़ेसे विचार भी स्मरण नहीं रहते। विचारोंको याद रखनेमें सुव्यवस्था लाभप्रद है।

लक्ष्मीजी आती हैं

संसारमें दरिद्रता पाप है। कौन दरिद्रताकी प्रशंसा कर सकता है?

दारिद्र्यं पातकं लोके कस्तच्छंसितुमर्हति। (व्यास)

भारतीय पूजा-पद्धति श्रेष्ठ और वैज्ञानिक आधारोंपर स्थित है। हमारे अध्यात्म-विशारदोंने ज्ञान, भक्ति और चिन्तनके विविध गम्भीर तत्त्वोंका बोध प्रतीकवाद (सिम्बॉलिज्म) के द्वारा करानेका सदा प्रयत्न किया है। भारतीय देवी-देवताओंमें अनेक मानव-गुणोंको ही मूर्त्त-रूप दिया गया है। इन प्रतीकोंसे अनेक गुप्त गुणोंका प्रचार हुआ और जनताने उन्हें अपनाया भी। लक्ष्मी-पूजा भी प्रतीककी इस महिमासे वञ्चित नहीं।

संसारमें शक्तिके तीन प्रकार हैं—शारीरिक, बौद्धिक और आर्थिक। हिंदू विचारकोंने शक्तिके इन तीन प्रकारोंको साकार अभिव्यक्ति देते हुए तीन देवियोंकी मान्यता और उनके स्वरूपोंमें नाना गुणोंकी प्रतिष्ठा की। अष्टभुजा दुर्गा शारीरिक शक्तिकी प्रतीक हैं। उनके एक ही शरीरमें आठ भुजाएँ चार व्यक्तियोंके शारीरिक बलकी द्योतक हैं। सरस्वती देवी हमारी विद्या-बुद्धि और कला-संगीतकी प्रतीक हैं। लक्ष्मी अर्थ-शक्ति अर्थात् रुपये-पैसे, वाणिज्य-व्यापार-समृद्धिकी प्रतिमा हैं। वे कमलपर विराजती हैं, उनके हाथोंमें भी कमल है, धन-सम्पदाकी विपुल-राशि उनके हाथोंसे गिर रही है। 'उल्लू' उनका वाहन है। दीपावली लक्ष्मी-पूजन और धन-वैभवके प्रदर्शन तथा मङ्गलमय कला-सौन्दर्यका पर्व है।

लक्ष्मीजी कहाँ रहती हैं

रुक्मिणीजीने लक्ष्मीजीको चञ्चला देख उनसे प्रश्न किया— 'आप कहाँ विराजमान हैं ?' उन्होंने अपने प्रिय व्यक्तियोंके चरित्रके सद्गुण बताते हुए उत्तर दिया—

वसामि नित्यं सुभगे प्रगल्भे दक्षे नरे कर्मणि वर्त्तमाने।
अक्रोधने देवपरे कृतज्ञे जितेन्द्रिये नित्यमुदीर्णसत्त्वे ॥

'मैं सुन्दर, मधुरभाषी, चतुर, अपने कर्त्तव्यमें लीन, क्रोधहीन, भगवत्परायण, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय और बलशाली पुरुषके पास बराबर बनी रहती हूँ।'

ऊपर जिन दिव्य चारित्रिक गुणोंका संकेत है, उनमें सुन्दरताके अतिरिक्त अन्य सब ऐसे हैं, जिनका विकास यदि पूर्ण संकल्पसे किया जाय, तो प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है। बहुतसे गुण तो मनुष्यके अधीन हैं। सत्य है कि मधुरभाषण और व्यवहार करने-वाले चतुर और अपने कर्तव्यमें सतत लीन व्यक्ति सदा धनी बने रहते हैं। जो अपनी इन्द्रियोंकी विषयिताको वशमें रखते हैं, वे निश्चय ही लक्ष्मीके प्रिय पात्र होते हैं। श्रीलक्ष्मीजी स्वयं कहती हैं—

स्वधर्मशीलेषु च धर्मवित्सु वृद्धोपसेवानिरते च दान्ते।
कृतात्मनि क्षान्तिपरे समर्थे क्षान्तासु दान्तासु तथाबलासु ॥

'मैं स्वधर्मका आचरण करनेवाले, धर्मकी मर्यादाको जानने-वाले, वृद्धजनों अथवा गुरुजनोंकी सेवामें तत्पर रहनेवाले, जिते-न्द्रिय, आत्मविश्वासी, क्षमाशील और समर्थ पुरुषोंके साथ रहती हूँ।' साथ ही जो स्त्रियाँ सदा सत्यवादिनी, सत्याचरण-परायण, सदा निष्कपट तथा सरल स्वभाव-सम्पन्ना रहती हैं, वे भी मुझे बहुत पसंद हैं। इसी

प्रकार देवता और गुरुजनोंकी पूजामें निरत और सदा हँसमुख रहनेवाली सौभाग्ययुक्त, गुणवती, पतिव्रता, कल्याणकामिनी और अलंकृत स्त्रियोंके पास रहनेमें मुझे बड़ा आनन्द आता है ।

इनके अतिरिक्त, ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें, लक्ष्मीजीके अनेक बहुमूल्य वचनामृत मिलते हैं, जिनसे उनके स्वभावपर प्रकाश पड़ता है । कुछ वचन देखिये । एक स्थानपर कहा है—

स्थिता पुण्यवतां गेहे सुनीतिपथवेदिनाम् ।
गृहस्थानां नृपाणां वा पुत्रवत्पालयामि तान् ॥

'नीति-मार्गपर चलनेवाले, पुण्यकर्म करनेवाले गृहस्थ तथा राजाओंके यहाँ मैं टिकी रहती हूँ । और ऐसोंका मैं अपने प्रिय पुत्रोंके समान पालन करती हूँ ।'

परिश्रमी और उद्योगी व्यक्ति सदा समृद्ध देखे जाते हैं । लक्ष्मी सदा उद्योग करनेवालेके पास रहती हैं । जब कोई व्यक्ति उद्योग-धंधा व्यापार और परिश्रम त्याग देता है, तब नाराज होकर लक्ष्मीजी वहाँसे चली जाती हैं । उनके परिश्रम और उद्योगप्रियताको लक्ष्यकर ही कहा गया है—

'उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः ।'

—उसी पुरुषश्रेष्ठको ही लक्ष्मी प्राप्त होती हैं जो उद्योग-परायण होता है ।

इन्द्रकृतं श्रीमहालक्ष्म्यष्टकं स्तोत्रम्

नमस्तेऽस्तु महामाये श्रीपीठे सुरपूजिते ।
शङ्खचक्रगदाहस्ते महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥

'श्रीपीठपर स्थित और देवताओंसे पूजित होनेवाली हे महामाये ! आपको नमस्कार है। हाथमें शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाली हे महालक्ष्मि ! आपको प्रणाम है।'

नमस्ते गरुडारूढे कोलासुरभयंकरि।
सर्वपापहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥

'गरुड़पर आरूढ़ हो कोलासुरको भय देनेवाली और समस्त पापोंको हरनेवाली, हे भगवति ! महालक्ष्मि ! आपको प्रणाम है।'

सर्वज्ञे सर्ववरदे सर्वदुष्टभयंकरि।
सर्वदुःखहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥

'सब कुछ जाननेवाली, सब कुछ वर देनेवाली, समस्त दुष्टोंको भय देनेवाली और सब दुःखोंको दूर करनेवाली, हे देवि महालक्ष्मि ! आपको नमस्कार है।'

सिद्धिबुद्धिप्रदे देवि भुक्तिमुक्तिप्रदायिनि।
मन्त्रपूते सदा देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥

'सिद्धि, बुद्धि, भोग और मोक्ष देनेवाली हे मन्त्रपूते भगवति महालक्ष्मि ! आपको सदा प्रणाम है।'

आद्यन्तरहिते देवि आद्यशक्ति महेश्वरि।
योगजे योगसम्भूते महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥

'हे देवि, हे आदि-अन्त-रहित आदिशक्ते, हे महेश्वरी, हे योग-से प्रकट हुई भगवति महालक्ष्मि ! आपको नमस्कार है।'

स्थूलसूक्ष्ममहारौद्रे महाशक्तिमहोदरे।
महापापहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥

'हे देवि ! आप स्थूल, सूक्ष्म एवं महारौद्र रूप धारण करनेवाली हो । आप महाशक्ति हो, महोदरा हो और बड़े-बड़े पापोंका नाश करनेवाली हो । हे देवि, महालक्ष्मि ! आपको नमस्कार है ।'

पद्मासनस्थिते देवि परब्रह्मस्वरूपिणि ।
परमेशि जगन्मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥

'हे कमलके आसनपर विराजमान परब्रह्मस्वरूपिणि देवि ! हे परमेश्वरि, हे जगदम्बे, हे महालक्ष्मि ! आपको मेरा प्रणाम है ।'

श्वेताम्बरधरे देवि नानालंकारभूषिते ।
जगत्स्थिते जगन्मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥

'हे देवि महालक्ष्मि ! आप श्वेत वस्त्र धारण करनेवाली और नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित हो । सम्पूर्ण जगत्में व्याप्त एवं अखिल लोकको जन्म देनेवाली हो । हे महालक्ष्मि ! आपको मेरा प्रणाम है ।'

इन आठ श्लोकोंमें लक्ष्मीजीके स्वरूप, गुण और महाशक्तियोंका संकेत है । जो व्यक्ति भक्तियुक्त होकर इस महालक्ष्म्यष्टक स्तोत्रका सदा पाठ करता है, वह सारी सिद्धियों और राजवैभवको प्राप्त कर सकता है । जो प्रतिदिन एक समय पाठ करता है, हिंदू-धर्मके अन्तर्गत उसके बड़े-बड़े पापोंका नाश हो जाता है । जो दो समय पाठ करता है, उसके बड़े-बड़े शत्रुओंका नाश हो जाता है और उसके ऊपर कल्याण करने और वर देनेवाली महालक्ष्मीजी सदा प्रसन्न होती हैं ।

उपर्युक्त विवेचनसे प्रकट है कि लक्ष्मीजी (अर्थात् अर्थशक्ति) का हमारे जीवनमें बड़ा भारी महत्त्व है । हमें ध्यान रखना चाहिये

कि माता लक्ष्मीका अपमान न हो। सदा स्वोपार्जित या उत्तराधिकारमें प्राप्त धनका सदुपयोग ही करना चाहिये। माता लक्ष्मी हमारे लिये सदा उत्तम-उत्तम वस्तुएँ देनेको प्रस्तुत रहती हैं, पर हमें उनसे न्यायोचित, सात्त्विक, मर्यादानुकूल ही वस्तुओंकी कामना करनी चाहिये। अनीति, पाप, झूठ, दगा या बेईमानीसे धन कमाना बुरा है। लक्ष्मीजी ऐसे व्यक्तिके पास सदा नहीं ठहरतीं। जो धन आपके पास है, उसे भगवान्‌की सेवाके भावसे यथार्थ, उन्नति, सात्त्विक दिशामें सर्वाङ्गीण विकास, देशवासियों और संसारके गरीबोंकी सेवा तथा सहायतामें व्यय करना चाहिये। दान देना, सत्कर्मोंमें अपने धर्मकी कमाईको व्यय करना ही बुद्धिमानी है। दया, सेवा, उदारता, सदाचार, संयम, परोपकार, दान आदि व्यक्तित्वके सात्त्विक गुणोंके विकासमें लक्ष्मीजीकी सहायता लेनी चाहिये। कहा भी है—

वित्तशक्त्या तु कर्तव्या उचिताभावपूर्तयः।
न तु शक्त्या कदा कार्यं दर्पौद्धत्यप्रदर्शनम्॥

धनकी शक्तिद्वारा उचित अभावोंकी पूर्ति करनी चाहिये। अर्थ-शक्तिद्वारा घमंड और धृष्टताका प्रदर्शन नहीं करना चाहिये।

माता लक्ष्मी यह नहीं चाहतीं कि आप रुपया-पैसा लेकर अनुचित कार्योंमें व्यय करें या अपनी अमीरीका थोथा बड़प्पन प्रदर्शित करें, विलासके गन्दे कीचड़में फँस जायँ या अपनेसे कमजोरों, अभाव-पूर्ण व्यक्तियोंपर अन्याय और मनमानी करने लगें। कुकृत्यों, गन्दी वासनाओंकी पूर्तिके लिये लक्ष्मीजीको कष्ट देना पाप है।

आज प्रायः देखते हैं कि मूर्ख विवेकहीन व्यक्ति माता लक्ष्मीका

अपमान करते हैं। सट्टा-फाटका, जुआ, रिश्वत, चोरी, ठगी, बेईमानी छल, अनाचार, अन्याय और शोषण आदिसे रुपया कमाना लक्ष्मीका अपमान करना है। यदि इन अनुचित तरीकोंसे कमाये हुए धनसे कोई धनी बन भी जाय तो भी लक्ष्मीजी स्वयं उसका कभी-न-कभी नाश कर देती हैं। धन उसके लिये परिणाममें अभिशाप बन जाता है। सजाके रूपमें वे उस अभागेको नाना प्रकारके शारीरिक रोग, द्वेष, शत्रुता, पारिवारिक वैमनस्य, व्यसन, व्यभिचार, दुर्गुण, बुरी आदतें, चिन्ताएँ, उद्दण्डता, अहंकार, तृष्णा आदि अनेकों ऐसी बुराइयाँ अभिशापके रूपमें दे देती हैं, जिनसे ऐसे अमीर व्यक्तिका जीवन सदा दुखी और अशान्त बन जाता है। लक्ष्मीजी सदा यही देखती रहती हैं कि कब व्यक्ति अनीतिकी राहपर जाय और कब वे उस अभागेका परित्याग करें। बुरी आदतों, वासनाओं, फैशन, मिथ्या-प्रदर्शनकी ओछी आदतोंसे लक्ष्मीजीको घृणा है।

लक्ष्मीजी कहाँ नहीं रहतीं

स्वयं लक्ष्मीजीके मुखसे सुन लीजिये कि वे कहाँ रहना पसंद नहीं करतीं। कौन दरिद्र रहा करता है? लक्ष्मीजी कहती हैं—

मिथ्यावादी च यः शश्व-
दनध्यायी च यः सदा।
सत्त्वहीनश्च दुश्शीलो
न गेहं तस्य याम्यहम्॥

—मिथ्यावादी, धर्मग्रन्थोंको कभी न देखनेवाला, पराक्रमसे हीन, खोटे स्वभावका—ऐसे पुरुषोंके घर मैं नहीं जाती।

सत्यहीनः स्थाप्यहारी मिथ्यासाक्ष्यप्रदायकः ।
विश्वासघ्नः कृतघ्नो वा यामि तस्य न मन्दिरम् ॥

—सत्यसे हीन, किसीकी धरोहर मारनेवाले, झूठी गवाही देने-वाले, विश्वासघात करनेवाले तथा कृतघ्न पुरुषोंके घरमें मैं नहीं जाती ।

चिन्ताग्रस्तो भयग्रस्तः शत्रुग्रस्तोऽतिपातकी ।
ऋणग्रस्तोऽतिकृपणो न गेहं यामि पापिनाम् ॥

—चिन्ता-ग्रस्त, भयमें सदा डूबे हुए, शत्रुओंसे घिरे, अत्यन्त पातकी, कर्जदार और अत्यन्त कंजूस पापियोंके घर मैं नहीं जाती । फलतः वे जन्मभर दीन-हीन बने रहते हैं ।

दीक्षाहीनश्च शोकार्त्तो मन्दधीः स्त्रीजितः सदा ।
न यास्यामि कदा गेहं पुंश्चल्याः पतिपुत्रयोः ॥

मैं दीक्षाहीन, शोक-ग्रस्त, मन्दबुद्धि, सदा स्त्रीके गुलाम, व्यभिचारिणीके पति और पुत्रके परिवारमें कभी नहीं जाती । अतः मनुष्यको चाहिये कि तुरंत इन दुर्गुणोंको दूर कर समृद्धिका पथिक बने ।

यो दुर्वाक् कलहाविष्टः
कलिरस्ति सदालये ।
स्त्रीप्रधाना गृहे यस्य
यामि तस्य न मन्दिरम् ॥

—कटुभाषी, कलहप्रिय, जिस परिवारमें निरन्तर कलह होता रहे, जिसके यहाँ स्त्रीकी ही चलती रहे—ऐसे परिवारमें मैं नहीं जाती ।

यत्र नास्ति हरेः पूजा
तदीयगुणकीर्तनम्
नोत्सुकस्तत्प्रशंसायां
यामि तस्य न मन्दिरम् ॥

—जिस घरमें भगवान्‌की पूजा और कीर्तन नहीं होते (सात्त्विक वातावरणका प्रभाव नहीं रहता) जिस घरके व्यक्ति भगवान्‌की प्रशंसामें उत्सुक नहीं होते, वहाँ मैं नहीं जाती ।

श्रीमहालक्ष्मीजीको प्रसन्न करनेके लिये दुर्गुणोंसे मुक्त रहना चाहिये । हर प्रकारकी चारित्रिक गन्दगीसे लक्ष्मीजीको घृणा है । बुरी आदतों, सड़े-दिमाग, छल-फरेब करने और व्यसन व्यभिचारमें फँसे रहनेवाले व्यक्तियोंसे लक्ष्मीदेवी अप्रसन्न रहती हैं । वे स्वयं कहती हैं—

नाकर्मशीले पुरुषे वसामि
न नास्तिके सांकरिके कृतघ्ने ।
न भिन्नवृत्ते न नृशंसवर्णे
न चापि चौरे न गुरुष्वनम्रे ॥

—मैं अकर्मण्य, आलसी, नास्तिक—परलोक और ईश्वरको न माननेवाले, वर्ण-संकर—जारज, कृतघ्न—उपकारको भुला देनेवाले, अपनी बातपर स्थिर न रहनेवाले, कठोर वचन बोलनेवाले, चोर और गुरुजनोंके प्रति अविनीत, ईर्ष्या-द्वेष तथा डाह रखनेवाले पुरुषोंमें कभी नहीं रहती ।

—मैं ऐसे पुरुषोंके पास कभी नहीं रहना चाहती जिनमें तेज, बल और आत्मगौरवका सर्वथा अभाव रहता है । जो लोग

थोड़ेमें ही कष्टका अनुभव करने लगते हैं, जरा-जरा-सी बातपर क्रोध करने लगते हैं तथा जिनके मनोरथ कभी कार्यरूपमें परिणत नहीं होते, सदा गुप्त ही बने रहते हैं, उनके पास भी मैं कभी नहीं जाना चाहती ।

—इसके अतिरिक्त मैं उस व्यक्तिके भी पास नहीं रहती, जो अपने लिये कभी कुछ नहीं चाहता तथा जिसका अपने पुरुषार्थमें विश्वास नहीं है । मैं उन लोगोंके पास भी अधिक नहीं रहना चाहती, जो थोड़ेमें ही संतोष कर लेते हैं ।

ऊपर लक्ष्मीके प्रिय पुरुषोंके विषयमें अनेक उपयोगी बातें कही गयी हैं । कुछ त्रुटियाँ तो ऐसी हैं, जो समृद्धि चाहनेवालोंको तुरंत त्याग देनी चाहिये । नीतिमें अनेक ऐसी उक्तियाँ आयी हैं जिनमें लक्ष्मीजीके प्रिय पात्रोंकी चर्चा है । एक उक्ति देखिये—

कुचैलिनं दन्तमलोपधारिणं
बह्वाशिनं निष्ठुरभाषिणं च ।
सूर्योदये चास्तमिते शयानं
जहाति लक्ष्मीर्यदि शार्ङ्गपाणिः ॥

—गन्दा वस्त्र पहिननेवाले, दाँतोंको साफ न रखनेवाले, अपनी पत्नीकी जीविकापर खानेवाले, निष्ठुर भाषण करनेवाले तथा सूर्योदय एवं सूर्यास्तके समय सोनेवाले व्यक्तिको, यदि वह स्वयं विष्णु भी हों तो, लक्ष्मी छोड़ देती हैं ।

तात्पर्य यह कि धन-सम्पदा-ऐश्वर्य उन स्वच्छ, सक्रिय और उद्योगी व्यक्तियोंके पास रहते हैं जो कर्तव्यशील हैं, आलस्यमें पड़े

नहीं रहते। लक्ष्मीजी गन्दे, पेटू, कटुवादी, आलसी और अधिक सोनेवालेको त्याग देती हैं। नारीके लिये भी लक्ष्मीजीने कुछ गुणोंकी चर्चा की है। जो स्त्रियाँ लक्ष्मीजीको प्रिय हैं, उनके लक्षण इस प्रकार हैं—

प्रकीर्णभाण्डान्यनपेक्ष्यकारिणीं
सदा च भर्तुः प्रतिकूलवादिनीम्।
परस्य वेश्माभिरतामलज्जा-
मेवंविधानां परिवर्जयामि॥

—लक्ष्मीजी उन स्त्रियोंके निकट नहीं रहना चाहतीं जो अपनी गृहस्थीके सामान—वस्त्र-पात्रादिको जहाँ-तहाँ बेढंगे तरीकेसे छितराये रहती हैं, चीजें ठिकाने नहीं रखतीं। उन्हें वे भी स्त्रियाँ बहुत अप्रिय हैं, जो सदा पतिके प्रतिकूल बातें कहकर दुःख देती हैं। जिस स्त्रीका मन सदा दूसरेके घरमें लगता है, जो निर्लज्ज रहती है, उसके पास भी उन्हें जानेमें संकोच रहता है। साथ ही उन्हें उन स्त्रियोंसे भी बड़ी चिढ़ है, जो पापपरायणा, अपवित्र, गन्दी, चोर, अधीर, झगड़ालू, सदा सोनेवाली तथा उनींदी रहनेवाली हैं। अतः लक्ष्मीजीकी प्रिय पात्र बननेके लिये स्त्रियोंका आचरण पवित्र और वृत्तियाँ सात्त्विक होनी चाहिये।

लक्ष्मीके दुरुपयोगमें दोष

'कादम्बरी' में लक्ष्मीके दोषोंका भी वर्णन आता है। दुरुपयोग करनेसे लक्ष्मी (अर्थ) शत्रु बन जाती है। जो नाना भोगविलासकी वस्तुएँ एकत्रित करता है, वह हर प्रकारसे अपना

पतन कर लेता है। जब राजकुमार चन्द्रापीडका यौवराज्याभिषेक होने जा रहा था, तो शुकनासने उसे जो शिक्षा दी थी, वह सदा स्मरण रखने योग्य है। यहाँ उस भागका सारांश दिया जाता है—

'लक्ष्मी मिल जानेपर भी उसे रखना कठिन है। वह जान-पहचानको बनाये नहीं रखती। अच्छे कुलको भी नहीं देखती। कुल-परम्पराके अनुसार नहीं चलती। पाण्डित्यका मूल्य नहीं समझती। त्यागका आदर नहीं करती। शास्त्र नहीं सुनती। विशेष जन या सद्विवेकका विचार नहीं करती। कहीं स्थिर होकर पैर नहीं रखती। गुणवान् मनुष्यको कभी-कभी अपवित्रकी भाँति छूती भी नहीं। बड़े साहसीका अमङ्गलकी भाँति अधिक आदर नहीं करती। सज्जनको अशकुनकी भाँति नहीं देखती। कुलीनको साँपके समान लाँघ जाती है। वीरको काँटेके समान याद भी नहीं करती। पापीके समान नम्र आदमीके पास नहीं जाती और मनस्वी (प्रतापी) पर पागलके समान हँस देती है।'

तात्पर्य यह है कि ज्यों-ज्यों लक्ष्मी चमकती है अर्थात् मनुष्यके पास धन बढ़ता है, त्यों-त्यों मनुष्यका मन गन्दे कार्यों, वासनापूर्ति और विलासकी ओर जाता है। जैसे दियेकी लौ कालिख उगलती है। लक्ष्मीके बुरे प्रभावमें पड़ जानेपर बड़े लोग बेसुध हो जाते हैं और उनके महल कुकर्मोंके निवासस्थल बन जाते हैं। उनमें उदारता मिट जाती है। हृदय मलिन हो जाता है। सत्यवादिता दूर हो जाती है और गुण गायब होकर वासनाएँ उभर उठती हैं। कुछ लोग धनके लालचमें पड़कर गन्दे विकारोंके

आक्रमणसे विवश होकर बेसुध हो जाते हैं। मरणासन्न लोगोंके समान अच्छे मित्रों, परिवारके सदस्यों और गुरुओंतकको नहीं पहचानते। अतः धनकी शक्तिको अच्छे कार्योंमें ही व्यय करना चाहिये।

समृद्धिके पथपर

संसारकी निन्द्यतम वस्तु है—विचार-दारिद्र्य। विचार-दारिद्र्यने संसारके अनेक व्यक्तियोंको गरीबीकी शृङ्खलाओंमें जकड़ रक्खा है, उनमें कुत्सित दासवृत्ति उत्पन्न कर दी है, मन और जीवनमें हीनत्वका विषम अन्धकार फैला दिया है। यह एक निश्चित अकाट्य सत्य है कि विचारकी दरिद्रतासे हम दरिद्री बनते हैं और सदैव रहेंगे। दरिद्रताकी दासवृत्ति मनुष्यको सीमाक्रान्त, क्षुद्र, संकुचित एवं निराश बनानेवाली है। भीषण दरिद्रता मनुष्यकी आत्मशक्तियोंको पंगु, विकृत तथा असमर्थ बनाती है।

क्या ही अच्छा हो यदि मनुष्य यह जान जाय कि हम विचारद्वारा दारिद्र्यसे मुक्त हो सकते हैं। शुद्ध विचार, संगठित विचार, पुष्ट एवं समृद्ध विचारद्वारा दरिद्रतापर बलिदान होनेवाले अनेक व्यक्तियोंकी रक्षा हो सकती है। वे बहुत अधिक अंशोंमें दरिद्रतासे मुक्ति पा सकते हैं और अपने जीवनको सुखी कर सकते हैं।

दरिद्रताके अनेक कारण हो सकते हैं। रुग्ण, लँगड़ा, अंधा, बहरा यदि दैव-दुर्विपाकसे दरिद्र रह जाय तो वह तिरस्कारका पात्र नहीं कहा जायगा। दयाका पात्र तो वह भाग्यहीन है जो अपने मिथ्या विचारोंद्वारा संसारकी दरिद्रताको आकर्षित किया करता है,

जो अपनी थोथी भावनाओंके द्वारा निज हृदय-पटलपर सब स्थानोंपर दरिद्रता ही दरिद्रता अंकित कर लेता है, जिसकी मुख-मुद्रा—विकृत आकृतिपर दरिद्रताकी काली छाया दुःखद स्थिति उत्पन्न करती है। मैं जिस दरिद्रताकी बात कर रहा हूँ वह मनुष्यकी स्वयंकी उत्पन्न की हुई दरिद्रता है। यह दरिद्रता परिश्रम करनेयोग्य होकर आलस्य करनेसे दुष्ट बर्तावसे, श्रद्धाहीनता, हीनत्वकी भावना, उचित कार्य-पद्धतिके अभावसे, कार्यशैथिल्य या चञ्चलतासे हो जाती है।

सर्वप्रथम मनुष्यके विचार दरिद्र बनने प्रारम्भ होते हैं। वह दरिद्र व्यक्तियोंकी ओर अधिक आकर्षित होता है, उन्हींकी कार्य-प्रणाली, उन्हींकी दीन-हीन स्थिति, उन्हींकी-सी प्रवृत्तिसे वह क्रमशः मेल करने लगता है। अन्धकार, पतन, भिखमंगे, टूटे-फूटे उच्च महत्त्वाकांक्षाओंको विनष्ट करनेवाले विचार एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर देते हैं, जिनकी विषैली छाया सदा-सर्वदा उसके साथ चलती है। अन्तरकी दरिद्रता फिर बाह्याङ्गोंमें भी प्रकट होने लगती है। दरिद्रताके विचारोंसे ग्रसित व्यक्तिके मुखपर क्षुद्रता, असमर्थता, विकृति तथा संकुचितताके चिह्न प्रकट होने लगते हैं। फिर उसकी वस्त्रभूषा इत्यादि सबमें ही दरिद्रताके कीटाणु घुस जाते हैं, जो उसके निश्चय, संकल्प, इच्छा-शक्तियोंका क्षय कर डालते हैं। ऐसा व्यक्ति यही सोचता है कि मेरे भाग्यमें विधाताने दारिद्र्य ही लिखा है, मैं दरिद्र हूँ और सदैव दरिद्र ही रहूँगा। मेरे लिये संसारमें कुछ नहीं। मैं केवल दूसरोंकी आधीनता, कृपा, इंगितपर ही जी सकता हूँ। यदि किसीने दया करके कुछ दे दिया तो ठीक, अन्यथा मृत्युका मार्ग

ही मेरे लिये खुला है। इस प्रकारकी दरिद्र स्थितिमें, दरिद्र विचारोंके वातावरणमें रहनेके पश्चात् उसे दरिद्रतासे भय लगने लगता है; दरिद्रता भयंकर प्रतीत होती है; उसे निकट भविष्यमें अपनी दुर्गति होती दिखायी देती है; अन्तःकरणमें कभी शान्त न होनेवाला द्वन्द्व प्रारम्भ हो जाता है। विचार-दारिद्र्य एक दिन उसे असाहसी, क्षुब्ध, डरपोक, भिखारी बना डालता है। वह अपनी शक्तियोंके प्रति शंकित हो उठता है, उसे अपने ऊपर भरोसा नहीं रहता और वह बिलकुल असमर्थ बन जाता है।

आर्थिक सफलताके मानसिक संकेत

आप आर्थिक रूपसे सफल होना चाहते हैं, तो समृद्धिके विचारोंको बहुतायतसे मनोमन्दिरमें प्रविष्ट होने दीजिये। यह मत समझिये कि आपका सरोकार दरिद्रता, क्षुद्रता, नीचतासे है। संसारमें यदि कोई चीज सबसे निकृष्ट है तो वह विचार-दारिद्र्य ही है। जिस मनुष्यके विचारोंमें दरिद्रता प्रविष्ट हो जाती है, वह रुपया-पैसा होते हुए भी सदैव भाग्यका रोना रोया करता है। दरिद्रताके अनिष्ट-कारी विचार हमें समृद्धिशाली होनेमें रोकते हैं; दरिद्री ही बनाये रखते हैं।

आप दरिद्री, गरीब या अनाथ हीन अवस्थामें रहनेके हेतु पृथ्वीपर नहीं जन्मे हैं। आप केवल मुट्ठी भर अनाज या वस्त्रके लिये दासवृत्ति करते रहनेको उत्पन्न नहीं हुए हैं।

गरीब क्यों सदैव हीनावस्थामें रहता है? इसका प्रधान कारण

यह है कि वह उच्च आकांक्षाओं, उत्तम पवित्र कल्पनाओं, स्वास्थ्यदायक स्फूर्तिमय विचारोंको नष्ट कर देता है; आलस्य और अविवेकमें डूब जाता है, हृदयको संकुचित, क्षुद्र, प्रेम-विहीन और निराश बना लेता है। सीमाक्रान्त दरिद्रता आनेपर जीवन ठहर-सा जाता है, प्रगति अवरुद्ध हो जाती है, मनुष्य ऋणसे दबकर निष्प्रभ हो जाता है, उसे अपने गौरव, स्वाभिमानको भी सुरक्षित रखना दुष्कर प्रतीत होता है। दरिद्री विचारवाले असमयमें ही वृद्ध होते देखे गये हैं। जो बच्चे दरिद्री घरोंमें जन्म लेते हैं, उनके गुप्त मनमें दरिद्रताकी गुप्त मानसिक ग्रन्थियाँ इतनी जटिल हो जाती हैं कि वे जीवनमें कुछ भी उच्चता या श्रेष्ठता प्राप्त नहीं कर सकते। दरिद्रता कमलके समान तरोताजा चेहरोंको मुर्झा देती है, सर्वोत्कृष्ट इच्छाओंका नाश हो जाता है। यह दुस्सह मानसिक दरिद्रता मनुष्यको पीस देनेवाली है। सैकड़ों मनुष्य इसी क्षुद्रताके गर्तमें डूबे हुए हैं।

आर्थिक सफलताके लिये भी एक मानसिक परिस्थिति, योग्यता एवं प्रयत्नशीलताकी आवश्यकता है। लक्ष्मीका आवाहन करनेके हेतु भी मानसिक दृष्टिसे आपको कुछ पूजाका सामान एकत्रित करना होता है।

दीपावलीके लक्ष्मी-पूजनके अवसरपर आप घर झाड़ते, लीपते, पोतते, सजाते हैं। नयी-नयी तसवीरें कलात्मक वस्तुओंसे घरको चित्रित करते हैं, अपने शरीरपर सुन्दर वस्त्र और आभूषण धारण करते हैं। इसी भाँति मानसिक पूजा भी किया कीजिये। अर्थात् मनके कोने-कोनेसे दरिद्रता, गरीबी, परवशता, क्षुद्रता, संकुचितता,

ऋणके जाले विवेककी झाड़ूसे साफ कर दीजिये; मानसिक पटलको आशावादिताकी सफेदीसे पोत लीजिये। मानसिक घरमें आनन्द, आशा, उत्साह, प्रसन्नता, हास्य, उत्फुल्लता, खुशमिजाजीके मनोरम चित्र लगा लीजिये। फिर श्रम और मितव्ययताके नियमोंके अनुसार लक्ष्मीदेवीकी साधना कीजिये। आर्थिक सफलता आपकी होगी। सब विद्याओंमें शिरोमणि वह विद्या है जो हमें कुत्सित और निकृष्ट विचारोंसे मनको साफ करना सिखाती है।

परम पिता परमात्माकी कभी यह इच्छा नहीं कि हम आर्थिक दृष्टिसे भी दूसरोंके गुलाम बने रहें। हमें उन्होंने विवेक दिया है, जिसे धारणकर हम उचित-अनुचित खर्चोंमें अन्तर समझ सकते हैं, विषय-वासना और नशीली वस्तुओंसे मुक्त हो सकते हैं, अपने अनुचित खर्चे, विलासिता और फैशनमें कमी कर सकते हैं, घरमें होनेवाले नाना प्रकारके अपव्ययको रोक सकते हैं, अपनी आय-वृद्धि करना हमारे हाथकी बात है। जितना हम परिश्रम करेंगे, योग्यताओंको बढ़ायेंगे, अपनी विद्यामें सर्वोत्कृष्टता (Excellence),मान्यता,निपुणता प्राप्त करेंगे, उसी अनुपातमें हमारी आय भी बढ़ती चली जायगी। संसारमें अन्याय नहीं है। सबको अपनी-अपनी योग्यता और निपुणता-के अनुसार धन प्राप्त होता है। फिर क्यों न हम अपनी योग्यता बढ़ायें और संघर्षमें अपने आपको हर प्रकारसे योग्य प्रमाणित करें।

श्री ओरिसन मार्डनने अपनी पुस्तक 'शान्ति, शक्ति और समृद्धि' (Peace, Power and Planty) में कई आवश्यक तत्त्वोंकी ओर ध्यान आकर्षित करते हुए लिखा है—

विश्वके अनेक दरिद्री लोगोंके कारणको खोजिये तो पता लगेगा कि उन्हें आत्मविश्वास नहीं, उन्हें यह श्रद्धा नहीं है कि वे दरिद्रतासे छुटकारा पा सकते हैं । हम गरीबोंको बताना चाहते हैं कि वे ऐसी कठोर स्थितिसे भी अपने आपको उन्नत बना सकते हैं । सैकड़ों नहीं, प्रत्युत हजारों ऐसी स्थितिमें उन्नत धनवान् बने हैं और इसलिये हम कहते हैं कि इन गरीबोंके लिये भी आशा है । वे दुर्धर्ष परिस्थिति-को बदल सकते हैं । संसारमें आत्मविश्वास ही ऐसी कुंजी है कि सफलताका द्वार खोल देती है ।

'प्रकृतिने मनुष्यको ऊपर देखनेकी आज्ञा प्रदान की है, नीचेकी ओर नहीं । मानव-जन्म ऊपर चढ़नेके लिये हुआ है, नीचे गिरनेके लिये नहीं ।

'दरिद्रता वास्तवमें मानसिक रोग है, इस रोगसे प्रयत्न करनेपर प्रत्येक व्यक्ति छुटकारा पा सकता है । एक गरीब युवकने अमीर बननेके लिये अपनी आत्मा और योग्यतापर भरोसा करना प्रारम्भ किया । उसने निश्चय किया कि उसके अंदर वह योग्यता—शक्ति विद्यमान है जिसके द्वारा मनुष्य संसारमें नामांकित होते हैं । वह निरन्तर अपनी शुभ्र कल्पनाओंको साकार रूप देता गया और सफलताके उच्चतम शिखरपर पहुँच गया ।' आशा, हिम्मत और सतत उद्योगके उत्पादक और उत्साही वातावरणमें रहनेसे प्रत्येक मनुष्य समृद्धिशाली बन सकता है ।

'किंतु' और 'परंतु'

हम आध्यात्मिक उन्नतिके पक्षमें हैं; उसके द्वारा होनेवाले अनेक लाभों तथा सिद्धियोंसे भलीभाँति परिचित हैं; हमने अन्य मुमुक्षुओंको ऊँचा चढ़ते हुए देखा है तथा हमारी भी इच्छा हुई है कि हम भी नाना जंजालोंसे भरे हुए अँधेरे जगत्से निकलकर उन्मुक्त प्रकाशमें आ जायँ, सामाजिक मान्यताओंकी जो पेचीदा गुत्थियाँ हमें बाँधे हुए हैं, उन्हें तोड़-फोड़ दें किंतु ....। हम चाहते हैं कि अन्तरात्माकी पवित्रता-निर्मलतासे हृदयके कषाय-कल्मषोंका प्रक्षालन कर स्वच्छ हो जायँ तथा मानसिक गुलामीसे पीछा छुड़ाकर पूर्णत्व प्राप्त कर लें, हंसकी वृत्ति ग्रहण कर दूधको ही ग्रहण करें परंतु........।

इस प्रकार, आप निरन्तर बहुत-सी उत्कृष्ट योजनाएँ तैयार करते हैं, मनः-प्रदेशमें एक-से-एक ऊँचे विचारोंको लाते हैं, कुछ देर उनपर विचार करते हैं, कल्पनामें एक सुखद संसारको देखकर अतीव प्रसन्न होते हैं; किंतु जब वास्तविक कार्य करनेका समय आता है तो अनेक 'किंतु' तथा 'परंतुओं'के फेरमें पड़कर उन शुभ भावनाओंका अन्त कर देते हैं। आप उनपर यथोचित मनन-चिन्तन नहीं करते, केवल बाह्य दृष्टि डालकर ही निष्क्रिय हो जाते हैं। जिसकी आप हार्दिक कामना करते हैं, जिसके लिये आपका अणु-अणु आपको प्रेरित करता है उस ध्येयपर आप देरतक नहीं टिकते। कल्पित कठिनाइयोंकी विभीषिका आपको दूरसे ही भयभीत कर देती है। आपके सुख-स्वप्न अनेक 'किंतु-परंतुओं'के आक्रमणोंसे चूर-चूर हो जाते हैं।

'किंतु' 'परंतु' हमारी निर्बलताके द्योतक हैं। ये हमारे मनमें प्रविष्ट संदेहात्मक विचारधाराके सूचक हैं। इनसे प्रतीत होता है कि हममें स्वतन्त्ररूपसे विचार तथा कार्य करनेकी क्षमता नहीं है। जब दो मार्गोंमें निर्णय करनेका अवसर आता है तो हम कोई भी निश्चय नहीं कर पाते। हमारे मनमें अनेक शंकाएँ, संदेह तथा विरोधी भाव उठ पड़ते हैं, जिससे हमारा कुछ भी निर्णय नहीं हो पाता।

राजकुमार हैमलेटके जीवनकी असफलताका कारण उसकी निर्णयशक्तिकी निर्बलता थी। 'यह करूँ' 'वह करूँ' 'अमुक कार्य ठीक रहेगा, या अमुक अच्छा सिद्ध होगा'....वह एक पेण्डुलमकी तरह इन्हीं दो केन्द्र-विन्दुओंके मध्यमें चक्कर लगाता रहता था। अन्त समयतक अपने कर्त्तव्यको निश्चय न कर सका; फलतः उसे जीवनभर बड़ा पश्चात्ताप रहा।

हिचकिचाहट

हम आज एक कार्य प्रारम्भ करते हैं, आगे चलनेपर दो-चार छोटी-छोटी कठिनाइयाँ आनेपर सोचते हैं कि चलें, लौट चलें। इससे तो पहले ही ठीक थे। यह हिचकिचाहट ही अनेक मनुष्योंके जीवनको सफल नहीं होने देती। संदेह ही हमें मारता है। इसके कारण हम मनःस्थिरताको खो बैठते हैं तथा अपने आपको क्षुद्र मानने लगते हैं। दो-एक अवसरोंपर इस मानसिक निर्बलताके प्रकट होनेसे हमारा यह विश्वास हो जाता है कि किसी नये पथके वास्तविक तथ्यको ढूँढ़ निकालना हमारे लिये असम्भव है। जीवनमें

कठिनाइयोंको रोकनेका कोई उपाय नहीं है। मनुष्य भाग्यके हाथका खिलौना मात्र है। किस्मत उसे खूब नाच नचा सकती है।

जीवनमें सुख तथा सफलता प्राप्त करनेके लिये सबसे प्रथम इस बातकी आवश्यकता है कि मनुष्य इन 'किंतु' तथा 'परंतुओं' से सदा-सर्वदाके लिये पीछा छुड़ा ले। बिना निर्णय-शक्तिके कोई कार्य न चलेगा और जीवन दु:ख तथा अशान्तिसे व्यतीत होगा।

जो व्यक्ति बात-बातमें दूसरोंका मुख निहारा करते हैं, उन्हींके मार्गपर चलते हैं, खुद गाँठका कुछ नहीं लगाते, उनके मनमें सदैव एक द्वन्द्व चला करता है। कभी उन्हें एक मार्ग अच्छा प्रतीत होता है, कभी दूसरा। वे नहीं जानते कि उनका ध्येय क्या हो। उनसे भयंकर भूलें होती हैं तथा वे गिर पड़ते हैं।

जो सेनानायक शीघ्र ही अन्तिम निश्चय कर लेता है, वह सदैव अपने उन शत्रुओंको जा दबाता है जो कि यह सोचा करते हैं कि 'यह करें कि वह करें।'

प्रत्येक अध्यात्म-पथिकको शीघ्र-से-शीघ्र अपने भविष्यका स्पष्ट निश्चय कर लेना उचित है। यह आध्यात्मिक जीवनकी आधार-शिला है, बिना अन्तिम निष्कर्ष निकाले आप अन्तमें यही कहेंगे कि 'माया मिली न राम'। जीवनका प्रत्येक क्षण कितना बहुमूल्य है। यदि वह सोचते ही निकल जाय तो कैसा अनर्थ है।

निर्णय-शक्तिकी वृद्धिके उपाय—

किसी भी कार्यको हाथमें लेनेसे पूर्व यह भलीभाँति सोच लीजिये कि वह कार्य उचित (Desirable) है या नहीं ? उसे पूर्ण करनेमें

किन-किन बातोंकी आवश्यकता प्रतीत होगी ? सम्भवतः कौन-कौनसे विघ्न मार्गमें पड़ सकते हैं ? उन विघ्नोंको परास्त करनेके लिये आपके पास क्या उपाय है ? आप पहिले उस मार्गपर चलनेवाले पथिकोंसे सम्मति लीजिये; उनके अनुभवोंपर मानसिक नेत्र केन्द्रित कीजिये। जब आपकी अन्तरात्मा आपको यह बतला दे कि वह कार्य करनेके योग्य है तथा आपमें उसके योग्य सामर्थ्य एवं उपयुक्त साधन उपस्थित हैं तो आप साहसपूर्वक अपनी नौकाको समुद्रमें खोल दें। सूईकी तरह उसमें दृढ़तासे लग जायँ और फिर कैसा ही संकट पड़े, उसे अधूरा न छोड़ें।

निर्णयमें अन्तरात्मासे सम्मति लीजिये। आत्माका निर्देश क्या है ? वह आपको किस ओर प्रेरित करती है ? अपनी शिक्षा, अपने इतने वर्षोंके अनुभव आपको क्या बताते हैं ? अन्य मनुष्य क्या कहते हैं ?

शान्तचित्त होकर एक प्रशान्त स्थानमें बैठिये। मनमें अपनी गुत्थी (Problem) को लाइये। फिर उसपर दैवी प्रेरणा लेनेका प्रयत्न कीजिये। चुपचाप अन्तःकरणकी ध्वनि सुनिये। देखिये, आपकी अन्तःप्रेरणा क्या निर्देश करती है ? दैवी प्रेरणानुसार किये गये सब निश्चयोंमें सिद्धि प्राप्त होती है। दैवी प्रेरणा उसी परम तत्त्वका प्रकाश है जो निरन्तर हमारी आत्माको प्रकाशित करता है। हम जितना ही इस दैवी-तत्त्वसे सम्बन्ध जोड़ेंगे—जितना ही अपने परम पितामें तन्मय हो जायँगे, उतनी ही स्पष्टतासे हमें आत्मध्वनि सुनायी देगी।

आपके वशकी बात

महात्मा एपिक्टेटसने जीवनमें प्रतिक्षण काममें आनेवाली एक महत्त्वपूर्ण बात कही है—

'यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारी स्त्री, तुम्हारे बच्चे, तुम्हारे मित्र कभी भी तुमसे पृथक् न हों, तो तुम मूर्ख हो; क्योंकि तुम ऐसी चीजकी चाह कर रहे हो जो तुम्हारे वशकी नहीं है और निरन्तर ऐसी अनहोनी इच्छाओंमें निमग्न रहनेके कारण तुम्हें अतृप्तिका दुःख मिलेगा ही ।

'इसी प्रकार यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारा नौकर या पत्नी, पुत्र, मातहत या पड़ोसी आदि अन्य व्यक्ति भूल न करे, तो तुम निरे मूर्ख हो, तुम ऐसी वस्तु चाह रहे हो, जो सम्भव नहीं है । तुम चाहते हो काला काला न रहे, और कुछ हो जाय । पर ऐसा हो नहीं सकता । अतः तुम दुखी हो ।'

इसी भावको यदि हम और गहराई तथा व्यापकतासे देखें तो विदित होता है कि हम जीवनमें अनेक ऐसी बातें चाहते हैं, जो सम्भव नहीं हैं । आप मानसिक, बौद्धिक या आध्यात्मिक दृष्टिसे उच्च

स्तरपर हैं। स्वच्छता पसंद करते हैं अथवा आपकी रुचि कलात्मक है। परंतु आपको व्यक्ति या वातावरण ऐसा प्राप्त होता है जो आपकी मानसिक ऊँचाईतक उठकर नहीं आता। बस, आप दुखी और संतप्त हो उठते हैं।

आप घरमें सफाई चाहते हैं, पर वह आपको नहीं मिलती। आप परिवारके सब सदस्योंको सुशिक्षित चाहते हैं; किंतु आपके पूर्ण ध्यान देनेपर भी वे पढ़ते-लिखते नहीं हैं। आप घरके आस-पासके वातावरणको स्वच्छ चाहते हैं, पर पड़ोसी कूड़ा-करकट बाहर फेंकते हैं, शोर-गुल मचाते हैं, दिनभर लड़ते-झगड़ते हैं। गालियाँ भी दे बैठते हैं। बाजारमें आप कुछ खरीदने जाते हैं तो दूकानदार चुपचाप आपकी दृष्टि बचते ही खराब वस्तु, सड़ी-गली तरकारी या गंदी वस्तु दे देता है। आप अपने अफसरसे, मातहतसे या घरवालोंसे जैसा मधुर एवं शिष्ट व्यवहार चाहते हैं, वैसा आपको प्राप्त नहीं होता। ऐसी अवस्थामें आप मन-ही-मन कुढ़ते हैं, मानसिक संतुलन खो बैठते हैं, कभी आवेशमें भर जाते हैं और परिस्थिति और वातावरणको कोसते हैं। लेकिन आप यहाँ भूल कर रहे हैं। यह सब तथा अन्य इसी प्रकारकी अनेक सांसारिक बातें आपके वशकी चीज नहीं है। दूसरोंके मनोभाव, इच्छाएँ, अच्छी-बुरी आदतें, रहने और सोचनेके ढंग इनमेंसे एक भी बात आपके वशकी नहीं है। इन्हें लेकर दुखी—संतप्त रहना या कुढ़ना, मनको भारी रखना आपकी मूर्खता और नासमझी ही है।

यदि आप चाहते हैं कि जीवनमें आपको असफलता, मजबूरी

या कठिनाई कभी न मिले, तो यह असम्भव है । आपके वशकी बात नहीं है । जीवन मृदुल भावनाओंकी मृदुवाटिका है, तो कंटक और धूल, कठोर चट्टानों, पत्थरोंकी शुष्कता और कठोरताओंसे भी भरा है । सभी कुछ आपको चखना है—मधुरता भी तो कड़वाहट भी ।

जिस दुनियाको आप बदल नहीं सकते, उससे झगड़ा करनेसे क्या लाभ ? जिस परिस्थितिसे आप बच नहीं सकते, उसे परिवर्तित करनेकी इच्छासे क्या फायदा ? जिन व्यक्तियोंका कड़ा, कलहपूर्ण या झगड़ालू स्वभाव है, उनसे अड़ने और क्रोध करनेसे क्या लाभ ? असफलता, हानि और भूलपर व्यर्थ सोचनेसे क्या लाभ ? ये सभी आपके मनोबल और मानसिक संतुलनको नष्ट करनेवाले हैं ।

आपके वशकी बात क्या है ? आपका स्वभाव, आपकी अच्छी आदतें, आपका मानसिक संतुलन, मन:शान्ति—ऐसी दिव्य बातें हैं, जो आपके वशकी हैं ।

इनका सम्बन्ध स्वयं आपसे और आपके निजी व्यक्तित्वसे है । क्रमशः अभ्यासद्वारा आप इनमेंसे प्रत्येकको प्राप्त कर सकते हैं । इनके द्वारा आपका जीवन सुख और शान्तिसे परिपूर्ण हो सकता है ।

अतएव यदि संसारमें सुख और शान्ति चाहते हैं तो जो आपके वशकी बातें हैं, उन्हींको विकसित कीजिये और जो आपके वशकी बातें नहीं हैं, उनपर व्यर्थ चिन्तन या पश्चात्ताप मत कीजिये । स्वयं अपने मस्तिष्कके स्वामी बनिये । संसार और व्यक्तियोंको अपनी राह जाने दीजिये ।

जीवन-पराग

काना-फूँसीसे विक्षुब्ध न हों

दो व्यक्ति एक ओर जाकर चुपचाप कुछ काना-फूँसी करने लगते हैं। अभी-अभी वे आपके समीप थे, अब कुछ दूर हट गये हैं कि आप उनकी बातें न सुन सकें।

आपके हृदयमें शंका उत्पन्न होती है। आप सोचते हैं, 'अवश्य ये लोग मेरे विषयमें टीका-टिप्पणी कर रहे हैं। मेरे चरित्रमें जो दुर्बलताएँ हैं, उनपर आलोचना हो रही है। तभी तो दूर हट गये हैं।' ऐसा सोचकर आप अपनी ही दृष्टिमें कुछ नीचे गिर जाते हैं। काना-फूँसी करनेवाले व्यक्तियोंकी ओर शंकासे देखते रहते हैं।

आपकी यह प्रवृत्ति—दूसरोंको अपने प्रति ईर्षालु समझना, अपने आलोचक और विरोधी समझना—स्वयं आपकी आन्तरिक दुर्बलताके चिह्न हैं। कोई क्या कहता है ? आपके प्रयत्नोंको कोई प्रशंसात्मक दृष्टिसे देखता है अथवा निन्दात्मक दृष्टिसे ? यह जानने-की प्रवृत्ति साधककी किसी छिपी हुई आन्तरिक दुर्बलताको द्योतित करती है और उसकी सृष्टि भी करती है। आप यह मानिये कि सब आपके मित्र हैं; कोई आपके प्रति ईर्षालु नहीं; कोई आपकी चुगली नहीं करता। मित्रभाव रखनेसे मनमें शान्ति बनी रहती है और सामाजिक सम्बन्ध मधुर बनते हैं।

१७०
आशाकी नयी किरणें

वर्तमानका सदुपयोग करें

जो कार्य, कर्तव्य या उत्तरदायित्व हमारे सामने है उसपर ध्यान न देकर हम सदा बीती घटनाओंकी चिन्ता करते रहते हैं— 'यदि मैं ऐसा न करता, तो यह कष्ट न आता; यदि उसने मुझे यह सहायता दी होती, तो यह ऐसा हो जाता, अथवा कहीं ऐसा न हो जाय ? आदि मिथ्या भयोंसे सदा व्याकुल और त्रस्त रहते हैं। अर्थात् भूत और भविष्यमें ही निवास करते हैं जब कि हमारा निवास केवल वर्तमानमें ही सम्भव है और उसीको उपयोगी बनाकर हम सफल बन सकते हैं । जो बीत चुका वह तो मर गया; उसकी चिन्ता क्यों करें ? जो भविष्यमें आनेवाला है, वह वर्तमानके सदुपयोगसे उज्ज्वल बनेगा ।

चुनकर पुस्तक पढ़ें

अनुभवसे ज्ञान परिपक्व बनता है, लेकिन अध्ययनसे ज्ञान पूर्ण होता है । पुस्तक पढ़नेका तात्पर्य यह है कि आप किसी समुन्नत प्रकाशित आत्माका सत्संग कर रहे हैं । सत्संगका प्रभाव चुम्बक-जैसा है । इससे बड़ा अच्छा वातावरण उत्पन्न होता है । इस वातावरणमें रहकर आप आध्यात्मिक पथपर सरलतासे अग्रसर हो सकेंगे । अतः आप पुस्तकें चुनकर पढ़ें । जीवन इतना बड़ा नहीं कि संसारकी समग्र पुस्तकोंका अध्ययन-मनन हो सके; आपके पास इतना धन भी नहीं कि सभी खरीद सकें । अतः नित्यप्रतिके सांसारिक कार्योंसे जो समय बचे वह चुनी हुई पुस्तकोंमें लगाया करें । फालतू पुस्तकें पढ़नेसे मनकी गम्भीरता जाती रहती है ।

अप्रिय कार्य पहले कर लें

कुछ कार्य ऐसे हैं जो आपके लिये आर्थिक, सांसारिक, राजनीतिक या अन्य किसी कारणसे आवश्यक हैं; किंतु उन्हें करनेमें आपको मजा नहीं आता। मन बार-बार उनसे ऊबकर मनोरञ्जक कार्योंकी ओर अग्रसर होता है। यह सही है कि उन कार्योंमें आपका मन नहीं लगता, पर उनके बिना काम भी नहीं चल सकता। करने अति आवश्यक हैं। उनपर विजय प्राप्त करनेका सरल उपाय यह है कि आप अप्रिय कार्योंको पहले करें! शुरू-शुरूमें आप ताजे रहते हैं। कार्य-शक्ति भरी रहती है। मन काममें लगना चाहता है, शरीर कुछ काम माँगता है। अतः इन सख्त कार्योंपर नियन्त्रित होकर लग जायँ। मनको मजबूतीसे कार्यपर एकाग्र रक्खें। दृढ़ इच्छा-शक्तिके प्रतापसे यह शुष्क कार्य जल्दी होगा और अच्छा होगा। सरल कार्य तो तब भी हो जाता है, जब आप थके होते हैं।

साहसपूर्ण जीवन व्यतीत करें

यदि आप साहस करके किसी कार्यक्षेत्रमें प्रविष्ट हो जायँ, तो दूसरोंपर आपकी धाक बैठती है और आपकी गुप्त शक्तियाँ जाग्रत् होकर अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे कार्य करती हैं। इसके विपरीत यदि आप भयभीत होकर दब जायँ, इसका दूसरा अर्थ यह है कि दूसरोंके व्यक्तित्वका प्रभाव आपपर पड़ गया है। साहस एक प्रकारका चुम्बक है, जो दूसरोंपर अपना अद्भुत प्रभाव डालता है।

साहस पुस्तक या उपदेशमात्रसे विकसित नहीं होता; प्रत्युत

नित्य-प्रतिके अभ्यासपर और कार्यमें लेनेपर अवलम्बित है । आपका साहस एक ऐसी सम्पदा है, जिसे आप पग-पगपर भुनाते हैं । अतः विवेकपूर्ण होकर अपनी इस उच्च शक्तिका विकास करते चलें ! हिम्मतसे काम लें ।

बातको कलपर न टालें

प्रत्येक कार्यको करनेका साहस और उत्साहपूर्ण क्षण होता है । यह क्षण जोश और रुचिसे भरा रहता है । यदि कोई कार्य इस क्षण (Intense moment) पर कर लिया जाय तो कठिन कार्य भी सहजमें ही सम्पन्न हो जाता है । कार्य-भार प्रतीत नहीं होता । जब यह जोश ठंढा पड़ जाता है, तो कार्यशक्तियाँ शिथिल पड़ जाती हैं । मनका सहयोग प्राप्त नहीं होता; एक प्रकारका आलस्य आकर कार्यशक्तियोंको पंगु कर देता है ।

कलपर बात टालनेवालेका सर्वनाश होता है । इस उक्तिका प्रत्यक्ष उदाहरण रावण है जो महाबली और सामर्थ्यवान् होकर भी अमृत-घट पीनेकी बात टालता रहा ! अन्तमें उस आलस्य और टालवृत्तिके कारण मृत्युको प्राप्त हुआ । बातको टालना मानसिक शैथिल्य और मनकी चञ्चल वृत्तिका परिचायक है । जो कुछ करना है पर्याप्त सोच-समझके उपरान्त, तुरंत पूरा और पक्का कर लेना चाहिये ।

खुले दिलसे अपनी भूल स्वीकार करें

यदि आप भूलको स्वीकार न करें तो आपकी आत्मापर एक प्रकारका आन्तरिक भार रहता है । आत्मा तो सत्यकी प्रखर ज्योतिकी

तरह है। उसके सामने कालिमा कैसे टिक सकती है ? भूलसे उत्पन्न आन्तरिक दुःख एक प्रकारकी कालिमा है। अतः यदि आप भूलको स्वीकार कर मुक्त हृदयसे माफी माँग लेते हैं, तो मनके गुप्त प्रदेशसे कालिमा चेतनाके ऊपरी स्तरपर आ जाती है। चेतनाके सम्मुख आते ही मानसिक क्लेश दूर हो जाता है। माफ़ न करनेपर मन ईर्ष्या और प्रतिशोधकी कलुषित भावनाओंसे उद्विग्न रहता है। अतः भूलको स्वीकार करना आध्यात्मिक पथपर आगे बढ़ना है। भविष्यमें भूल न करनेकी सावधानी रख दृढ़तासे कर्त्तव्य-पथपर आरूढ़ रहें। पुरानी गलतियोंसे जीवनका पाठ सीखें। सावधान, उनकी पुनरावृत्ति न होने पाये।

सहन करना सीखें

संसार, देश, प्रान्त और परिवारके झगड़ोंका मूल व्यंग्य है। हम दूसरोंकी बात, चाहे वह न्यायपूर्ण ही क्यों न हो, सहन नहीं करना चाहते। ज़रा-ज़रा-सी बात हमारे हृदय-कमलमें काँटेकी तरह घुस जाती है। कड़वी बात, अपनी आलोचना, बुराइयाँ या हमारी बातका कट जाना हमारी पीड़ाका कारण बन जाता है। उत्तेजित होकर हम झगड़ा कर बैठते हैं। फलतः हम अपने अच्छे सम्बन्धोंको अनायास ही तोड़ बैठते हैं। क्रोध शान्त होनेपर हमें अपनी मूर्खताका ज्ञान होता है। यदि हम दूसरोंकी बात सहन करना सीखें, अपने आपको संयमित कर लिया करें, तो अनेक स्थानोंपर विजयी हो सकते हैं। मित्रता, पारिवारिक सम्बन्ध, ग्राहक, श्रोता इत्यादि हमारे मित्र बने रह सकते हैं।

मध्य मार्ग ही श्रेष्ठतम है

महान् विचारक अरस्तूने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'नीतिशास्त्र' में एक स्थानपर एक बड़ी मार्मिक बात लिखी है। वे कहते हैं कि संसारमें श्रेष्ठतम मार्ग मध्यका ही मार्ग (Doctrine of me an) है। वे कहते हैं कि सद्गुण और दुर्गुणमें केवल अतिका अन्तर है। सद्गुण दो अतियोंके मध्यकी स्थितिको कहते हैं। अति (Execss) जिस ओरको हो जायगी, वही दुर्गुण बन जायगा, चाहे वह अच्छाई-की अति हो अथवा बुराईकी।

उदाहरणके लिये यदि हम अपनी आयकी अपेक्षा अधिक व्यय करें, व्यय अतिकी स्थितिमें पहुँच जाय, तो वह अपव्यय (फिजूल-खर्ची) कहलायेगा। यदि हम आयसे बहुत कम व्यय करें और अपनी स्थायी आवश्यकताओंकी भी अवहेलना करते चलें, तो वह कृपणता (कंजूसी) कहलायेगी। यदि इन दोनों अतियों—अपव्यय तथा कृपणताके मध्यका मार्ग ग्रहण कर लें, तो वह मितव्ययिता नामक सद्गुण बन जायगा। तनिक-सी कमी या आधिक्य सद्गुणको दुर्गुणमें बदल देगा। यही नियम प्रत्येक गुण या अवगुणके विषयमें लागू होता है।

साहस नामक गुणको लीजिये। यदि इस गुणका आधिक्य हो जाय, तो वह क्रूरता या दुस्साहस बन जाता है। यदि कमी हो जाय, तो वह कायरता कहलाती है। क्रूरता और कायरता दो अतिकी मन:-

स्थितियाँ हैं। हमें चाहिये कि विवेकसे इनकी मध्य स्थिति ग्रहण करें।

अरस्तूने जिस गुणके ऊपर सबसे अधिक जोर दिया है, वह है—Stateliness (गौरव या महत्त्व)। अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा और स्थितिके अनुकूल ही मनुष्यके रहन-सहन और महत्त्वका प्रदर्शन होना चाहिये। जो जितना सम्पन्न है, वह उतनी ही सम्पन्नताका रहन-सहन रक्खे। यदि अपने पदके अनुसार वह रहन-सहन न रक्खे, तो वह उसका टुच्चापन कहा जायगा। यदि उससे अधिक मिथ्या वैभवको दिखलाये, तो वह उसका छिछोरापन कहलायेगा। यदि अपनी स्थिति, पद और वातावरणके अनुसार रहन-सहन रक्खा जाय तो यह उसका सद्गुण ही कहा जायगा और समाजमें उसकी यश-प्रतिष्ठा होगी। अब लीजिये, कोई व्यक्ति उच्च वर्गका है, ऊँचा वेतन पाता है, तो उसे वैसा ही रहन-सहन भी रखना चाहिये। उससे निम्न स्तर उचित नहीं है। इसके विपरीत जो व्यक्ति साधारण स्थितिके होकर बाहरी मिथ्या प्रदर्शन करते हैं वे अपनी और समाजकी बड़ी क्षति करते हैं।

तर्क एक अच्छा गुण है। जो ठीक तरह तर्क कर सकता है, वह वितण्डावादसे मुक्त रह सकता है, हानिकर रूढ़ियोंसे अपनी रक्षा कर सकता है। अन्धविश्वास, भ्रम, पाखण्डमें सफाई पेश कर सकता है। पर यदि यही गुण अतिकी सीमापर पहुँच जाय, तो कुतर्क हो जाता है। कुतर्क करनेवाला उचित-अनुचितका विवेक न कर समय-असमय फजूलकी बहस करने लगता है और बकवासी या झक्की कहलाता है। यदि इस गुणकी कमी हो जाय, तो लोग उसे भोंदू

और बुद्धिहीन कहने लगते हैं। नियत मर्यादाके भीतर रहनेसे यह तर्क बना रहता है और सत्यकी खोजमें लाभदायक होता है।

जो व्यक्ति केवल कल्पनाके ही महल बनाता रहता है, कार्य कुछ नहीं करता, उसे लोग शेखचिल्ली कहकर चिढ़ाते हैं। यह सत्य है कि उस व्यक्तिमें सोचने और नये-नये मनसूबे, नवीन योजनाएँ बनाने, बढ़-चढ़कर बातें बनानेके गुण हैं, पर बिना कार्यके वह व्यक्ति अव्यावहारिक और आलसी ही कहा जायगा। इसके विपरीत सारा दिन इधर-से-उधर फिरनेवाला, घरमें न बैठनेवाला, सारा दिन कार्य-ही-कार्य करनेवाला व्यक्ति भी अच्छा नहीं समझा जाता; क्योंकि उसे भले-बुरेका विचार करनेके लिये भी समय नहीं मिलता। कार्य और विचार दोनोंका उचित समन्वय—मध्यस्थिति ही श्रेष्ठ मार्ग है। ऐसे ही व्यक्ति सफल होते देखे जाते हैं।

बातचीतके विषयमें भी यही नियम लागू होता है। व्यर्थ अधिक बातें करनेवालेको लोग बकवासी और चुलबुला कहते हैं। किसी मीटिंग या मित्रमण्डलीमें चुपचाप, गुमसुम बैठनेवाला मन्दबुद्धि या मूर्ख समझ लिया जाता है। मध्यका मार्ग ही समाजमें मनुष्यकी योग्यता, सामर्थ्य और सच्चे गौरवको प्रकट करनेवाला है। मध्यस्थितिमें ही सद्गुणका अस्तित्व है। अनुचित सीमा या मर्यादासे बाहर हो जाना ही मनुष्यका दुर्भाग्य है।

भगवान् बुद्धने धर्मका मध्यम मार्ग ग्रहण करनेका उपदेश दिया था। वास्तवमें समाज, कुल, परिस्थिति, काल इत्यादिको दृष्टिमें रखकर मर्यादाओंका पालन ही सर्वोत्तम मार्ग है।

सौन्दर्यकी शक्ति प्राप्त करें

अगर सौन्दर्यके साथ सद्‌गुण है तो वह दिलका स्वर्ग है, उसमें दुर्गुण हो तो वह आत्माका नरक है—वह ज्ञानीकी होली और मूर्खकी भट्ठी है। —क्वार्ल्स

सौन्दर्य आनन्द है और रसका आधार है। सृष्टिका यह सारा वैभव, प्रकृतिका अनुपम एक रूप-लावण्य, सौन्दर्यका उपादान है। इस वैभवपर जो सामूहिक, शान्त, मृदुल, मधुर, स्निग्ध, रम्य—एक प्रकारसे अनिर्वचनीय प्रभाव मनपर पड़ता है वही सौन्दर्य है।

आप दर्पणमें अपना चेहरा देखते हैं। आपका रंग श्वेत, त्वचा कोमल, रक्त स्वस्थ सब कुछ ठीक हैं। पर फिर भी चेहरेसे मायूसी टपकती है। मुखमण्डलपर झुर्रियाँ पड़ी हुई हैं। मुद्रा तेजहीन और उत्साहशून्य है। अपने चेहरेपर जिन कृत्रिम प्रसाधनोंका आप प्रयोग करते हैं, जितना रुपया आप सौन्दर्य-प्रसाधनोंपर व्यय करते हैं, उनके बावजूद आपके मुखपर तेज नहीं। आकर्षण नहीं। इसका क्या कारण है?

संसारके मनोवैज्ञानिकोंने मनुष्यके चरित्रका विश्लेषणकर यह सिद्ध किया है कि मनुष्यके चेहरेके सौन्दर्यका केन्द्र मुखपर नहीं, उसके आन्तरिक मनोभावोंपर है। मुख तो एक दर्पणमात्र है, जिसपर हमारे आन्तरिक मनोभाव प्रकट होकर जनताके आकर्षण अथवा घृणाके केन्द्र बनते हैं।

हमारे मनमें दो प्रकारके मनोभाव हैं—(१) हर्ष, उल्लास, प्रेम, दया, प्रसन्नता, हास्य, आह्लाद, उत्साह, सहानुभूति आदि कल्याणकारी मनोभाव,(२)क्रोध,आवेश,चिन्ता,ईर्ष्या, दर्प, घृणा, भय आदि मानसिक तनाव रखनेवाले मनोभाव। प्रथम वर्गमें सुख-आकर्षण और आनन्दमय जीवन बनानेवाले तत्त्व हैं, तो दूसरे वर्गमें आस-पासके व्यक्तियोंको दुखी कर उत्तेजना उत्पन्न करनेवाले घातक तत्त्व मौजूद हैं। एक जीवनको परिपूर्ण, चेहरेको आकर्षक बनाते हैं, तो दूसरे उसे कटुता और चिन्तासे भर देनेवाले हैं।

मैं अपने परिवारसे सम्बन्धित एक अतीव सुन्दरी स्त्रीको जानता हूँ जिनका चेहरा चाँद-सा सुन्दर, त्वचा नवनीत-सी कोमल और रंग चमेलीके पुष्पकी भाँति निखरा हुआ है। स्वास्थ्य बहुत उत्तम है। ईश्वरने जैसे समस्त सौन्दर्य कूट-कूटकर भर दिया हो! पर यदि आप उनकी ओर देखें, तो आपको तनिक भी आकर्षण प्रतीत न होगा। उनके घर पर्याप्त सम्पत्ति है; मान-प्रतिष्ठाकी कमी नहीं; हर प्रकारकी सुविधाएँ प्राप्त हैं, फिर भी चेहरेपर निराशाकी कालिमा और चिन्ताकी रेखाएँ हैं। कहीं-कहीं झुर्रियाँ भी नजर आती हैं। वे हर समय अपने आपको एक दार्शनिक-जैसा बनाये रखती हैं

मानो समस्त संसारका बोझ उन्हींपर आ गया हो ! वे जीवनको भार-स्वरूप मानती हैं; किसी-न-किसी कल्पित असुविधा, कमी असंतोष या आनेवाली विपत्तिकी बात सोचती रहती हैं। उन्हें यह भ्रम है कि उनके साथ न्याय नहीं हुआ है; अतः वे कल्पित भय, क्रोध और आवेशमें जलती-भुनती रहती हैं ! उनसे बातें कीजिये तो अपनी सैकड़ों परेशानियाँ गिना डालेंगी। कल्पित परेशानियों—चिन्ताओं, नाराजी और असंतोषने उनके मुखमण्डलके सौन्दर्यको नष्ट कर दिया है।

हम मनमें जैसे भाव रखते हैं, उनका गुप्त प्रभाव हमारे मुख-मण्डलसे प्रकाशित हुआ करता है। जैसी भावनाएँ स्वयं हमारे मनमें भरी हैं, बाहर जगत्से, अपने इष्ट-मित्रों, परिवारके सदस्यों तथा सहयोगियोंसे हम वैसी ही भावनाओंकी अपेक्षा रखते हैं। हमारा आकर्षण चेहरेकी बनावटकी अपेक्षा इन्हीं भावात्मक प्रभावोंका आकर्षण है। सौन्दर्य हमारी मानसिक अवस्था, विचारोंके चुनाव, जीवनकी समस्याओंके प्रति दृष्टिकोणसे सम्बन्धित है। जब चिन्ता या कल्पित परेशानीके विचार मनमें जम जाते हैं, तो मनुष्य हर घड़ी नैराश्यमें डूबा रहता है; जीवनको भारग्रस्त समझता है, चेहरेपर मुर्दनी ले आता है और स्नायु-जालमें नाना विकार उत्पन्न कर लेता है। अनिष्टकी आशङ्का, कठिनाइयाँ, अपराधी वृत्ति, हीनत्वकी भावना, परिवारकी छोटी-बड़ी उलझनोंके विचार मनुष्यके मुखमण्डलके सौन्दर्य-को नष्ट करनेवाले संहारक तत्त्व हैं। ये मनुष्यके चेहरेपर एक प्रकारका तनाव उत्पन्न करते हैं। कालान्तरमें ये तनाव स्थायी रूप धारण कर लेते हैं और सौन्दर्य जाता रहता है। जीवन भारग्रस्त हो जाता है।

कुछ व्यक्ति बच्चोंको डराने-धमकाने अथवा मातहतोंपर रोब डालनेके लिये सदा गम्भीर मुद्रा बनाये रखते हैं; बात-बातपर क्रोध करते और डाँट-फटकार बताते हैं। यह आवेशपूर्ण स्थिति भी सौन्दर्यकी शत्रु है। जिस प्रकार रेशमी वस्त्रमें मोड़ने या तह लगाकर रखनेसे उसमें सिकुड़न उत्पन्न हो जाती है और बार-बार प्रयत्न करनेसे भी दूर नहीं होती, वही बात चेहरेकी झुर्रियोंके भी सम्बन्धमें है। चेहरेकी रगोंको, नसोंको किसी विशिष्ट मुद्रामें देरतक बनाये रखने, मोड़ने या सिकोड़नेकी आदत पड़ जानेपर वह आसानीसे दूर नहीं की जा-सकती। फिर तो मनुष्य इस निराशावादी या उग्र रहनेकी आदतसे लाचार हो जाता है। उसे लाख प्रयत्न करनेपर भी उससे छुटकारा नहीं मिलता।

अतः सौन्दर्यके लिये मनमें यौवन, उत्साह, प्रफुल्लता, प्रेम, सहानुभूति आदिके उदार विचार प्रचुरतासे आने दीजिये। इन्हीं भव्य विचारोंको स्थान दीजिये। ऐसा प्रयत्न कीजिये कि इन शुभ सात्त्विक कल्याणकारी मनोभावोंका प्रकाशन आपके मुखमण्डलपर हो! प्रायः अभिनेता इन मनोभावोंको मुखपर लानेका दीर्घकालतक अभ्यास करते हैं। मनोविज्ञानका यह नियम है कि जो भाव आप मुखमण्डलपर प्रकट करेंगे, वैसा ही अंदर मनमें अनुभव भी करेंगे। अतः आशा, उत्साह, उल्लास, प्रफुल्लता, मस्तीका अभिनय किया कीजिये। इनकी छाया धीरे-धीरे आपके मुखमण्डलपर प्रकट होकर उसे सुन्दर बना देगी। प्रारम्भमें छोटे-छोटे शुभ मनोभावोंको मुखमण्डलपर प्रकाशित करें। उग्र मनोविकार मुखश्रीको नष्ट कर देते हैं। इस

बातको सदैव ध्यानमें रखते हुए अपनेको मानसिक उद्वेगों—शोक, भय, क्रोध, ईर्ष्या, घृणा, उत्तेजना, निराशा आदिका शिकार न बनने दें। मनमें शान्ति, आनन्द और उत्साहवर्धक विचारोंको स्थायीरूपसे स्थान दें। सद्विचार, सद्भावना, सदाचरणके स्थायित्वसे ही मुखाकृति आकर्षक और प्रभावशाली बन सकती है!

(२)

जीवनमें सौन्दर्यको प्रविष्ट कीजिये

प्राचीन कालमें जब आक्रमणकारियोंने ग्रीसपर आक्रमण किया था, तो विजयके पश्चात् उन्होंने वहाँके समस्त सुन्दर मन्दिरों, नयनाभिराम मूर्तियों, कलाकी सर्वोत्कृष्ट कृतियोंको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। जिस-जिस वस्तुमें उन्हें सौन्दर्यके दर्शन हुए ईर्ष्या और आवेशमें उन सभीको विनष्ट करनेमें वे प्रयत्नशील रहे। यद्यपि उन्होंने सुन्दर कलाकृतियोंको नष्ट कर दिया, किंतु सौन्दर्यकी कलात्मक मनोवृत्तिका विनाश वे न कर सके। ग्रीसके नागरिकोंके हृदयमें सौन्दर्यानुभूति, सौन्दर्याभिव्यक्ति तथा सौन्दर्यका आनन्द लेनेकी भावनाको वे न हटा सके। कोई भी असभ्य शक्तिशाली सभ्य जातिके मनमें रहनेवाली सौन्दर्यकी भावनाको नहीं हटा सकती। ग्रीक कलाके पश्चात् रोमन कलाका जन्म हुआ। जब रोमनिवासियोंने इटलीको विजय किया, वहाँ भी सौन्दर्यकी उपासना फैली। रोमकी कलाकृतियोंके अनुकरणपर इटलीकी आश्चर्यचकित करनेवाली कलाका जन्म हुआ। इन कलाकृतियोंके व्यापक प्रसारसे इटली-निवासियोंकी सुप्त सौन्दर्यभावनाएँ जाग्रत् हो उठीं।

किसी व्यक्तिने प्लेटोंसे प्रश्न किया था, 'सबसे उत्कृष्ट शिक्षा कौन-सी है ?' प्लेटोने उत्तर दिया, 'सच्ची शिक्षा वह है जो मनुष्यको शारीरिक एवं आत्मिक सौन्दर्यकी चरम परिणति करा दे। जिस व्यक्तिने सौन्दर्यकी सर्वोच्च साधना की है, वही सच्चे अर्थोंमें शिक्षित है।'

वही पूर्ण परिपक्व जीवन है, जो सौन्दर्य एवं विवेकके सामञ्जस्यसे युक्त है, जिसमें सौन्दर्यके प्रेमके साथ दूसरोंको भी सौन्दर्यानुभूति करानेकी सद्भावना है। मनुष्यका व्यक्तित्व अति विशाल है। अपने व्यक्तित्वके सर्वाङ्गीण विकासके लिये उसे विभिन्न प्रकारके मानसिक एवं शारीरिक भोजनोंकी आवश्यकता है। आप चाहे जो वस्तु कम कर सकते हैं, किंतु स्मरण रखिये, उसीकी कमी आपके व्यक्तित्वमें धीरे-धीरे प्रकट हो जायगी। सभी तत्त्वोंके बिना व्यक्तित्वका सर्वाङ्गीण विकास असम्भव है। शरीरको भोजन देकर आप आत्माको भूखा नहीं रख सकते और ऐसा करके आप संतुलित व्यक्तित्व पानेकी आशा नहीं कर सकते। न आप आत्मिक और मानसिक विकास करते हुए शरीरको उपेक्षित कर सकते हैं।

सौन्दर्यके प्रति इच्छा हमारे व्यक्तित्वको एक आवश्यक तत्त्व प्रदान करती है। सौन्दर्यसे विमुख होना इस बातका प्रमाण है कि उसके हृदयमें सौन्दर्यको पहिचानने, अनुभव करनेकी शक्ति नहीं है। दैनिक जीवनमें जो व्यक्ति सौन्दर्यको स्थान देता है, उसकी कलात्मक अभिरुचिका विकास होता है। सौन्दर्य ईश्वरीय गुण

है । ईश्वरको हम चिर सुन्दरके रूपमें देखते हैं । जब हम प्रकृतिके विशाल प्राङ्गणमें दृष्टिपात करते हैं तो पाते हैं कि सृष्टिकर्ताने सर्वत्र सौन्दर्य बिखेर दिया है । प्रकृतिमें विहँसते हुए सुन्दर पुष्पोंको देखिये, भ्रमरोंका सुमधुर संगीत सुनिये, पक्षियोंके मनोरम रंगोंका निरीक्षण कीजिये । सुन्दर गंध, सुमधुर ध्वनि, रंगोंकी चित्रशाला प्रकृतिके कोने-कोनेमें लहरा रही है । प्रकृतिके इस सुन्दर रूपका दर्शन कर और उसे हृदयमें उतारकर हम जीवनकी कुरूपतासे अपनी रक्षा कर सकते हैं ।

सर्वत्र सौन्दर्यका दर्शन करनेवाला व्यक्ति मानसिक तनावसे दूर रहता है । उसे मायाकी चकाचौंध पथ-च्युत नहीं कर सकती; क्योंकि उसका विवेक सदा जाग्रत् रहता है । सच्चा सौन्दर्य-पारखी विवेकबुद्धिको जाग्रत् रखता है । सौन्दर्यका विवेकके साथ निकट साहचर्य उसे भाता है । वह शिवम् और सुन्दरम्को पृथक् नहीं देखता । उसे सौन्दर्यका वही पक्ष पसंद आता है जो उसके जीवनको ऊँचा उठाता और दुष्प्रवृत्तियोंको परिष्कृत या समुन्नत करता है । सौन्दर्य मनुष्यकी रुचिको, उसके आदर्शों एवं भावनाओं-को ऊँचा उठानेवाला होना चाहिये । हम उन वस्तुओंमें सौन्दर्यके दर्शन करना सीखें, जो हमारी नैतिक, मानसिक या आत्मिक रुचिको परिष्कृत करनेवाली हैं । हमारी सौन्दर्य-साधना केवल बाह्य जगत्में, अथवा अपने शरीरमात्रमें पाये जानेवाले सौन्दर्यतक ही निर्भर न रह जाय, वरं उसे हमारे आन्तरिक जगत्में भी अपना कार्य करना चाहिये । भावनाओं, विचारों, हृदय तथा मन्तव्योंका

सौन्दर्य, जो हमारे अन्तःकरणमें निवास करता है, वही वास्तविक नित्य सौन्दर्य है ।

आत्मिक सौन्दर्य या आन्तरिक सौन्दर्य वह आधार-शिला है, जहाँसे हमारी सौन्दर्य-दृष्टिका निर्माण होता है । यदि हमारे अन्तःकरणमें सौन्दर्यकी पृष्ठभूमि बैठ जाय, तो हम सृष्टिमें सर्वत्र विवेकमय सौन्दर्यके दर्शन करने लगें ।

यदि आपकी इच्छा है कि विस्तृत अर्थोंमें 'पूर्ण मनुष्य' बनें—सम्पूर्ण व्यक्तित्व प्राप्त करें, तो आपको व्यक्तित्वके एक अङ्गमात्रका विकास कर संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिये। मनका निरीक्षण कर देखिये, आपकी सौन्दर्यानुभूति कितनी विकसित हुई है । स्मरण रखिये, अर्थोपार्जनसे तो आपके व्यक्तित्वका एक छोटा-सा भाग विकसित होता है । यह भाग स्वार्थ एवं अहंसे परिपूर्ण है । इससे मनुष्यकी कलात्मक रुचिका परिष्कार नहीं होता । सौन्दर्यविहीन व्यक्ति मालदार भले ही हो, पर प्रसन्न, शान्तचित्त, कलात्मक नहीं हो सकता । सौन्दर्य-प्रेमका प्रभाव यह होता है कि उससे चरित्र उत्तरोत्तर सुसंस्कृत, उदार, समुन्नत, ऐश्वर्ययुक्त और समृद्धिशाली बन जाता है । कलाविहीन कुरूप गन्दे वातावरण-में विकसित होनेवाले बालकोंमें एक प्रकारकी संकुचितता प्रविष्ट हो जाती है, जो जीवनपर्यन्त दूर नहीं हो पाती । वह बालक बड़ा अभागा है, जिसे पैत्रिक सम्पत्तिके रूपमें मकान, जायदाद, खेत, रुपया-पैसा तो प्राप्त होता है किंतु उसी अनुपातमें पौरुष, सज्जनता, सौन्दर्य, कलात्मकता और माधुर्य प्राप्त नहीं होता ।

बालकोंके व्यक्तित्वके सर्वाङ्गीण विकासके लिये उन्हें सौन्दर्यसे परिपूर्ण वातावरणमें, प्रकृतिके संरक्षणमें सुन्दर सुगन्धित पुष्पोंके मध्य, सुन्दर खिलौने, सुन्दर पुस्तकोंसे परिपूर्ण वातावरणमें रखना चाहिये। सुन्दर वातावरणमें निवास करनेसे प्रारम्भसे ही उनकी सौन्दर्यानुभूति जाग्रत् हो जाती है। बाह्य सौन्दर्यकी उपासनासे वे क्रमशः आन्तरिक सौन्दर्यकी ओर उन्मुख हो सकते हैं। माताएँ स्वयं स्वच्छ सुन्दर रहें और बच्चोंको अपना अनुकरण करने दें। गृह स्वच्छ सुन्दर रक्खें; आलमारियों, आलों, मेजों, बिस्तरों और पुस्तकोंको सुन्दर रखनेकी शिक्षा बच्चोंको सदैव देती रहें। इन प्रारम्भिक संस्कारोंसे बच्चोंकी कलात्मक बुद्धि विकसित होगी।

इस आनन्दका अनुभव एक भुक्तभोगी ही कर सकता है, जो मानव-जीवनके सर्वोत्तम गुणों—प्रेम, सौन्दर्य, कलात्मक अभिरुचि, उदारताके विकासके द्वारा मनुष्यको प्राप्त होता है। भिन्न-भिन्न रूपोंमें सौन्दर्य-भावना, कोमल कल्पनाओंका विकास मानव-चरित्रको समुन्नत करनेवाला है। हमें चाहिये कि प्रारम्भसे ही अपने जीवनको सौन्दर्यसे भर लें। इससे हमारे जीवनमें एक ऐसी रसमयताका प्रवेश होगा, जो समग्र जीवनको आनन्दित रक्खेगी। इससे न केवल हमारा आनन्द बढ़ जायगा, वरं हमारी कार्यशक्ति भी विकसित हो सकेगी।

हममेंसे प्रत्येकको अपने शरीरको सर्वोत्तम रूपमें रखना चाहिये और शारीरिक दृष्टिकोणसे पूर्ण परिपुष्ट, स्वस्थ, सुन्दर दीखना चाहिये। पोशाक, वेषभूषा दिखावटी न हो, सभ्य-शिष्ट

व्यक्तियों-जैसी हो । स्मरण रखिये, सरलतामें भी एक सौन्दर्य है । यह सत्य है कि शब्द, रूप, रस, गंध, रंगका अतुल सौन्दर्य संसारको सुन्दर बनाता है, किंतु मन और हृदयका सौन्दर्य तो ईश्वरीय सत्ताके समीप पहुँचा देता है । हम बाह्य सौन्दर्यकी ओर इसीलिये आकृष्ट होते हैं; क्योंकि वह हमें आन्तरिक आत्मिक सौन्दर्यतक ले जाता है; प्रवृत्तियोंको पवित्र कर हमारे मार्गको प्रशस्त करता है । परमेश्वरके अनन्त सौन्दर्यकी अनुभूति हमें जिस दिन हो जायगी, उसी दिन हम सौन्दर्यका वास्तविक अभिप्राय समझ सकेंगे ।

सफाई, सुव्यवस्था और सौन्दर्य

सफाई एक दैवी गुण है । अंग्रेजीमें एक कहावत है जिसका तात्पर्य है कि 'सफाईसे रहना देवत्वके समीप रहना है । जो साफ रहता है, अपने रहन-सहनद्वारा देवत्व प्रकट करता है । सफाईसे सौन्दर्य-वृद्धि होती है और साधारण वस्तु भी अपने आकर्षणरूपमें प्रकट होती है । वस्तुओंका जीवन बढ़ जाता है । मशीनोंकी सफाई करने या समय-समयपर कराते रहनेका तात्पर्य उसकी कार्य-शक्तियोंको बढ़ा लेना है ।

जब किसी मशीनको ओवर हाल (आमूल नये ढंगसे फिटिंग) किया जाता है तो न केवल सफाई हो जाती है, प्रत्युत सब पुर्जोंको साफ कर नये सिरेसे रखनेके कारण उनमें नयी स्फूर्तिका संचार होता है । जो पुर्जे चूँ-चूँ चर्र-चर्र करते थे, वह थोड़े-से तेलसे सहज स्निग्ध होकर मजेमें चलने लगते हैं । उनकी कार्य-शक्ति बढ़ जाती है ।

इसी प्रकार मानव-शरीररूपी मशीनका हाल है। हमारे शरीरमें अनेक छोटे-बड़े सूक्ष्म पुर्जे हैं। हमारा शरीर मस्तिष्क, हृदय, फेफड़े, उदर अनेक ग्रन्थियोंसे मिलकर बना है। इन पुर्जोंमें निरन्तर भोजनको पचाकर रक्त बनानेकी क्रियाके कारण मैल एकत्रित हो जाता है। जीवनमें पैसेके लिये हम शरीरको अधिक घिस डालते हैं, प्रायः नेत्रोंकी ज्योति क्षीण पड़ जाती है, गाल पिचक जाते हैं, दाँत गिर जाते हैं, पाचनमें विकार उत्पन्न हो जाते हैं। ये सब रोग शरीरकी अधिक घिसावटके दुष्परिणाम हैं। यदि हम शरीरकी आन्तरिक एवं बाह्य दोनों प्रकारकी सफाईका ध्यान रक्खें, तो शरीर-मन-प्राणमें नयी स्फूर्ति, नयी शक्ति और प्रेरणाका संचार हो सकता है।

भारतमें जिस तत्त्वकी बड़ी कमी मिलती है वह सफाई है। सुव्यवस्था और सौन्दर्य इसके पुत्र-पुत्री हैं। लोगोंके पास मान-प्रतिष्ठा, उत्साह है; पर स्वच्छता और सुव्यवस्थाका बड़ा अभाव है। दूकानें, गलियाँ, सार्वजनिक स्थान, भोजन तथा मिठाईके बाजारोंमें पत्तोंके ढेर, जूँठन, मैल, मक्खियाँ, नालियोंमें भरा हुआ कीचड़, मल-विष्ठा देखकर हमें अपनी गंदी आदतोंपर लज्जा आती है। लोग बड़ी-बड़ी धर्मशालाएँ बनाते हैं, पर उनमें सफाईपर ध्यान नहीं देते। टट्टियों तथा नालियोंकी सफाईपर व्यय नहीं करते। सार्वजनिक टट्टियोंमें सभ्य व्यक्तिको जाते हुए शर्म आती है। मेहतर अपने कर्त्तव्योंका पालन नहीं करते। अधिकारीवर्ग देख-रेखके मामलेमें शिथिलता दिखलाता है। टट्टी-विष्ठासे सने घिनोने स्वरूप रेलके

डिब्बों और रेलके स्टेशनोंपर पायी जानेवाली टट्टियोंमें भी देखे जाते हैं। जितना बड़ा शहर, उसकी गलियोंमें उतना ही अँधेरा, बदबू और गंदगी पायी जाती है। जहाँ मवेशी बाँधे जाते हैं वहाँका तो कहना ही क्या ?

सफाई एक सार्वजनिक आदत है। हम भारतीयोंको अपनी सार्वजनिक गंदगीपर लाज आनी चाहिये। जहाँ दूसरे राष्ट्रोंमें सफाई-की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है, सरकार पर्याप्त व्यय करती है, म्यूनिस्पैलिटी बहुत ध्यान देती है, प्रत्येक नागरिक सार्वजनिक सफाई-की ओर ध्यान देता है, वहाँ हमारे यहाँ कोई भी इस ओर ध्यान नहीं देता। नागरिक, विशेषतः ग्रामीण व्यक्ति और नारी-समाज इतने पिछड़े हुए हैं कि जहाँ कहीं जाते हैं सार्वजनिक स्थानोंको गंदा छोड़ जाते हैं। कूड़ा-करकट सड़कोंपर डाला जाता है। केले, आम, संतरे तथा अन्य फलोंके छिलके सड़कोंपर डाले जाते हैं और कितने ही व्यक्ति उनसे फिसलकर घायल होते हैं। सिनेमामें मूँगफलीके ढेर-के-ढेर छिलके, बीड़ी-सिगरेटके टुकड़े, पानकी पीक यत्र-तत्र फैले हुए मिलते हैं। स्टेशनोंको हर आध घंटे पश्चात् साफ किया जाता है, पर वह गंदा होता जाता है। यह हमारी गंदी आदतका सूचक है। हमें अपनी इन आदतोंपर लज्जित होना चाहिये।

शारीरिक स्वच्छताके दो अङ्ग हैं—बाह्य तथा आन्तरिक सफाई। नित्यप्रति मालिश और व्यायामके पश्चात् स्नान करनेसे और खुरदरे तौलियेसे पोंछनेसे शरीर स्वस्थ होता है। प्रायः लोग बार-बार स्नान करनेका क्रम करते हैं, जलमें पड़े रहते हैं, असंख्य गोते लगाते हैं,

बाल्टीपर बाल्टी पानी उँड़ेलते हैं; लेकिन सच्चे अर्थोंमें यह स्नान नहीं है। जबतक शरीरके रोमकूप स्वच्छ नहीं होते और त्वचाका संचित मल दूर नहीं होता, तबतक शरीरकी स्वच्छता नहीं हो सकती। खुरदरे तौलियेको पानीमें भिगोकर त्वचापर रगड़नेसे त्वचा साफ होती है। नाखूनोंको काटना, नासिकाद्वारको स्वच्छ रखना, जिह्वाकी स्वच्छतासे प्रायः उपेक्षित रहते हैं। इनपर बड़ा ध्यान देनेकी आवश्यकता है।

आन्तरिक स्वच्छताका साधन उपवास है। पंद्रह दिन पश्चात् उपवास करनेसे संचित भोजन पच जाता है, मल पदार्थ निकल जाते हैं और पेटकी बीमारियाँ दूर होती हैं। हमारे देशमें उपवासको धर्मके अन्तर्गत इसीलिये रक्खा गया है कि सब इससे लाभ उठा सकें। यथासाध्य ठंडे जलसे स्नान करें। मूत्र-त्याग और मल-त्यागके पश्चात् इन्द्रियोंको शीतल जलसे धो डालें।

आपका घर वह स्थान है, जिसके वातावरणमें आप पलते, वायु पाते, संसर्गसे प्रभावित होते हैं। प्रतिदिन हमारा १४-१५ घंटेका जीवन घरमें ही व्यतीत होता है। घरकी चारदीवारी, कमरों, फर्नीचर, वस्त्रों तथा विभिन्न स्थानोंपर जो समय हम व्यतीत करते हैं, उनसे हमारी आदतें और स्वास्थ्यका निर्माण होता है। घर जितना ही स्वच्छ और सुव्यवस्थित होगा, उससे उतनी ही स्वच्छ वायु तथा आनन्द प्राप्त हो सकेगा। यदि आप दूकानदार हैं या आफिसमें आठ घंटे व्यतीत करते हैं तो दूकान और आफिसके वातावरणका भी प्रभाव गुप्त रूपसे पड़ता रहता है। मान लीजिये आप तंबाकू,

शराब, गाँजा, भाँग, चरस अथवा जूतेकी दूकान करते हैं तो इन वस्तुओंकी बदबू निरन्तर आपके स्वास्थ्यपर प्रभाव डालती रहती है। अतः हमें चाहिये कि हम अपने घर, दूकान या आफिसोंको खिलौनोंकी तरह सदा साफ-स्वच्छ रक्खें।

स्वच्छ घरमें रहनेवालेकी आत्मा प्रसन्न रहती है। आप स्वच्छ धुले हुए वस्त्र पहनकर देखें, मन कितना खिला रहता है। इसी प्रकार सफेद पुता हुआ कमरा, स्वच्छ फरनीचर, स्वच्छ वस्त्र, स्नानसे स्वच्छ शरीर आत्माको प्रसन्न करनेवाले हैं।

स्वच्छ रखकर हम अपने घरके सौन्दर्यकी वृद्धि करते हैं और चीजोंके जीवनको बढ़ा लेते हैं। हमें आन्तरिक शान्ति प्राप्त होती है। सफाई प्रकृतिका अङ्ग बन जानेसे सर्वत्र सौन्दर्यकी सृष्टि करती है।

आफिस, घर और दूकानमें छोटी बड़ी असंख्य वस्तुएँ होती हैं। इनमें कुछ ऐसी हैं जिनका नित्य प्रयोग होता है, तो कुछ ऐसी होती हैं जो देरसे निकलती और काममें आती हैं। कुशल व्यक्ति अपने घर, दूकान या आफिसकी वस्तुओंकी व्यवस्था इस प्रकार करते हैं कि आवश्यकता पड़ते ही, तुरंत जरूरतकी चीज मिल जाती है। ग्राहक आकर जिस छोटी वस्तुकी माँग करता है, चतुर दूकानदार एक क्षणमें उसे प्रस्तुत कर देता है। घरमें दवाईसे लेकर सुई-डोरा-आलपिन तक एक क्षणमें मिल जानी चाहिये। आफिसकी फाइलका कोई भी कागज तुरंत अफसरके सम्मुख आ जाना चाहिये। पुस्तकालयमें

जो पुस्तक माँगी जाय, तुरंत पाठकको प्राप्त हो जानी चाहिये।

अव्यवस्थित दूकानदार, अफसर या परिवारका मुखिया उस व्यक्तिकी तरह है, जो उर्द, मूँग, मसूर, गेहूँ, जौ इत्यादि भिन्न-भिन्न अनाजोंको एक साथ मिश्रित कर लेता है और जरूरतके समय उनको पृथक्-पृथक् करनेमें व्यर्थ समय और शक्तिका क्षय करता है। वह न गेहूँ निकाल सकता है, न उर्द, न मूँग। और यदि निकालता भी है तो उस समय जब उसके हाथसे अवसर निकल जाता है। यदि प्रारम्भसे ही वह व्यवस्थासे इन अनाजोंको अलग-अलग रखता तो क्यों इतना श्रम और समय नष्ट होता ?

प्रायः अफसर लोग चिल्लाया करते हैं और क्लर्क फाइलोंको, भिन्न-भिन्न पत्रोंको, रेफरेन्सोंको तलाश करते हुए थक जाते हैं। दूकानदार वस्तुओंको गलत स्थानपर रखकर झींकते रहते हैं। घरमें दियासलाई, चाकू, नालदानी, साबुन, तौलिया, रूमाल, हाथका थैला, पेन्सिल, कलम इत्यादि प्रायः अव्यवस्थित होनेसे बड़ा हल्ला मचता रहता है। जो डाक्टर अपने यहाँ विभिन्न दवाइयोंको क्रम-व्यवस्थासे नहीं रखते, वे पछताते रहते हैं। सर्वत्र व्यवस्थाकी आवश्यकता है।

आप चाहे जिस स्थिति, वर्ग या स्तरके व्यक्ति क्यों न हों, क्रम और व्यवस्थाकी आपको सबसे अधिक आवश्यकता है। व्यवस्थासे आपका कार्य सरल होगा, श्रम और समयकी बचत होगी और जल्दी आप काम कर सकेंगे। मनमें किसी प्रकारकी उलझन उपस्थित न होगी। काम करनेकी तबीयत करेगी।

जिस व्यक्तिमें अपनी वस्तुओंको एक निश्चित क्रम और व्यवस्थासे रखनेकी आदत होती है, वह उनको उचित स्थानपर रखकर सौन्दर्यकी सृष्टि करता है। पं० जवाहरलाल नेहरू जब जेलमें थे, तो उनके पास कुछ गिनी-चुनी वस्तुएँ थीं—हजामतका सामान, कंघा, कलम, दावात, कागज इत्यादि। लेकिन वे अपनी आत्मकथामें लिखते हैं कि 'उन्होंने उन्हींको क्रम और व्यवस्थासे रखकर सौन्दर्य-सृष्टि की और अपनी आत्माको आनन्दित किया था।' आपके पास जो भी वस्तुएँ हों उन्हींको किसी निश्चित क्रम-व्यवस्थासे रखकर सौन्दर्य और उपयोगितामें वृद्धि कर सकते हैं।

अपने घरके पृथक्-पृथक् कमरोंको लेकर यह निश्चित कीजिये कि आप उस कमरेको किस कार्यके लिये रखना चाहते हैं—बैठक, स्टोर, प्राइवेट कमरा, औरतोंके बैठने-उठनेका कमरा, भोजन करनेका कमरा इत्यादि। प्रत्येक कमरेको उसी कार्यके लिये क्रमवार सुव्यवस्थित कीजिये।

मान लीजिये, बाहरवाले एक कमरेको आप बैठक बनाना चाहते हैं। इसमें एक मेज, कुर्सी, सोफासेट या फर्श, तकिया इत्यादि रखिये, पाँव पोंछनेके लिये पायदान, दीवारोंपर कुछ कलेण्डर और एक-दो अच्छे चित्र, खूँटी और जूता रखनेका स्थान। इस कमरेमें व्यर्थकी चीजें, खूँटियोंपर कपड़े या फालतू वस्तुएँ नहीं रहनी चाहिये। मेण्टलपीसपर कलात्मकरूपसे सजे हुए फूलदान और एक-दो फोटो। अधिक सजावट भी असभ्यताकी निशानी है।

आपके स्टोरमें अनाज, दालें, महीनेभरके कुटे हुए मसाले, घी, तेल, गुड़, चीनी, एक ओर वस्त्रोंके संदूक तथा अन्य घरकी वस्तुएँ रहनी चाहिये। यदि मकान छोटा हो तो क्रमसे रक्खी हुई लकड़ियाँ और उपलें भी रह सकते हैं। मिट्टीका तेल और लालटेन भी रक्खी जा सकती है। सोनेके कमरेमें भी वस्तुएँ कम ही रहें; क्योंकि फालतू वस्तुओंसे मच्छर होते हैं। रसोईमें भी भिन्न-भिन्न बर्तन क्रमसे सजे रहें। सीने, काढ़ने, बुनने और कातनेका सब सामान एक स्थानपर सजा रहे। मशीन हो तो स्वच्छ तेल लगी हुई रहे। पुस्तकालय हो तो उसकी सब पुस्तकें विषयवार सजी रहें, जिससे जिस समय आवश्यकता हो निकाली जा सकें। संक्षेपमें, आपके पास जो भी स्थान हो, जो-जो वस्तुएँ हों, वे स्वच्छ-से-स्वच्छ और सबसे आकर्षक रूपमें मौजूद रहें, जिन्हें देखकर आपको भी प्रसन्नता हो और देखनेवाले भी प्रसन्न रहें।

हमारे घरोंमें वस्त्रोंकी जो दुरवस्था है, उसे देखकर क्षोभ होता है। प्रायः स्त्रियाँ महँगे-से-महँगे रेशमी वस्त्र खरीदती हैं, पर उनके साथ अकथनीय अत्याचार होता है। इधर-उधर फेंका जाता है, आले या कोनेमें मैले पड़े रहते हैं, धोबी (बीस-बीस) दिनोंमें धोकर वापिस नहीं लाता। यदि हम वस्त्रोंकी उचित व्यवस्था रक्खें, मैला होनेपर स्वयं उसे धो लिया करें तो हम आधे वस्त्रोंमें मजेसे काम चला सकते हैं, रुपये बचा सकते हैं और स्वच्छ भी रह सकते हैं। महँगे कपड़े बना लेना आसान है, पर उनकी सेवा करना

तथा उनसे अधिकतम लाभ उठाना कुशलता और चतुराईका काम है।

वस्त्रोंके संदूक या आलमारीमें वस्त्रोंको तरीकेसे रखना चाहिये। इससे वस्त्रोंके कोने सिकुड़ने या मुड़ने नहीं पाते और इस्तरी नहीं टूटती। रेशमी साड़ियोंको कागजमें लपेटकर पृथक् रखना चाहिये। फिनायलकी गोलियाँ रखनेसे वस्त्र विशेषतः साड़ियाँ कीड़ोंसे बची रहती हैं।

वस्तुओंकी सम्हाल तथा व्यवस्था और भी आवश्यक है। सम्हाल रखनेसे मशीनका जीवन कई गुना बढ़ जाता है, जब कि तनिक-सी लापरवाहीसे कीमती चीजें भी जल्दी ही नष्ट हो जाती हैं। लेखकके पास एक फाउन्टेन पेन है। इसका मूल्य तीन रुपयेके लगभग है। अभीतक दस वर्षसे भी ऊपर यह काम कर चुका है। अब भी ठीक हालतमें है। इसी प्रकार घड़ी दस वर्ष, जूता दो वर्ष चलता है। वर्षमें तीन कमीज और चार पाजामोंसे काम चलता है। साइकिलको २६ वर्ष हो चुके हैं। यदि प्रत्येक वस्तुको उचित देख-रेखसे रक्खा जाय तो वह कई गुना अधिक काम देती है।

क्या आप जानते हैं कि आपका फाउन्टेन पेन घिसकर नहीं, प्रायः खोकर नष्ट होता है। पेन्सिलें कभी पूरी तरह काममें नहीं आतीं, कोई माँग लेता है अथवा खो जाती हैं। चाकू और रूमाल भी प्रायः खोते हैं। नालेदानी घरमें अनेक होती हुई भी इधर-उधर रखकर भुला दी जाती हैं। कीमती साड़ियाँ पहनी नहीं जातीं, संदूकोंमें रक्खी

रहती हैं और कीड़ोंका भोजन बनकर नष्ट होती हैं। जिस साड़ीपर सबसे अधिक व्यय होता है, वह उतनी ही कम पहनी जाती है। आभूषणोंपर औरतें प्राण देती हैं, किंतु वे खोकर नष्ट होते हैं, इनके कारण चोरियाँ होती हैं, औरतें चुरा ली जाती हैं और अपमानित होती हैं।

यदि आप अपनी थोड़ी-सी वस्तुओंको क्रम-व्यवस्थासे सजाकर रक्खें तो इन्हींकी सहायतासे आप घरकी शोभामें वृद्धि कर सकते हैं। सौन्दर्यके लिये अधिक वस्तुओंकी आवश्यकता नहीं है। जो थोड़ी-सी चीजें हैं, उन्हींकी सहायतासे आप सौन्दर्यकी उत्पत्ति कर सकते हैं। बस, आपकी दृष्टिमें कलात्मकता अपेक्षित है। कलात्मक-दृष्टिसे हर वस्तुका एक नियत स्थान है। जहाँ, वह सुन्दरतम लग सकती है। घरकी शोभा इस बातमें है कि आप उस स्थानको खोज निकालें। प्रत्येक वस्तुके लिये एक स्थान निश्चित करें। घरका प्रत्येक सदस्य उस वस्तुको उठाकर उसको नियत स्थानपर ही रक्खे। आपके कमरेमें एक चित्र हो या कैलेंडर, लेकिन यदि वही स्वच्छ हो, मैलका नाम-निशान न हो, तो वही आकर्षक प्रतीत होता है।

सौन्दर्य व्यवस्थापर निर्भर है। जूते कैसे नगण्य हैं, किंतु यदि आप उन्हींको पौलिश कर, सजाकर क्रमानुसार रक्खें, अपने संदूकोंको स्वच्छकर उनपर स्वच्छ वस्त्र बिछा लिया करें, चारपाइयोंकी चादरोंको गंदा न होने दें, कुर्सियों, मेजों, पुस्तकोंकी धूल झाड़ते रहें तो निश्चय जानिये, घरकी चीजोंमें ही सौन्दर्य प्रस्फुटित होगा

और आपको अपने साधारण घरमें ही आनन्द प्राप्त होगा। आत्मा प्रसन्न रहेगी और मनमें यह साहस रहेगा कि आप अच्छे तरीकेसे रहते हैं।

जीवनमें अधिक वस्तुओंकी आवश्यकता नहीं है, बल्कि जो थोड़ी-सी वस्तुएँ हों, उन्हींसे सबसे अधिक, सबसे सुन्दर क्रम-व्यवस्थासे काम लेनेमें आनन्द है। जिनके पास अधिक वस्तुएँ पड़ी रहती हैं, उनमेंसे आधी ही काममें आती हैं, शेष अनावश्यक, जंग लगी हुई, निष्क्रिय, अव्यवस्थित—बेकार पड़ी रहती हैं। आप अधिक वस्तुओंके संग्रहके मोहमें न पड़ें, वरं अपनी थोड़ी-सी वस्तुओंको सजा-सम्हाल कर प्रयोगमें लायें।

सार्वजनिक स्थानोंकी सफाई, सुव्यवस्था एवं सौन्दर्यका उत्तरदायित्व आपपर है। आप एक श्रेष्ठ नागरिक हैं। समाजकी उन्नतिमें आपका महत्त्वपूर्ण स्थान है। आपकी आदतोंसे समाज बनता-बिगड़ता, समुन्नत-अवनत होता है। अतः आप सार्वजनिक स्थानोंको कार्यमें लेते समय उनकी सफाई और सुव्यवस्थाके सम्बन्धमें बड़े सावधान रहें।

यदि आप धर्मशालामें टिकें, तो उसके कमरे या इर्द-गिर्दकी सफाईका ध्यान रक्खें, कमरेको वैसा ही सुन्दर छोड़कर जायँ, जैसा वह आपको मिला था। पब्लिक-पाखानोंका ठीक इस्तेमाल करें। पेशाबघरोंमें सर्वत्र ध्यान रक्खें। पब्लिक पार्क, मन्दिर, सार्वजनिक भवनोंको बिगड़ने न दें। रेलके डिब्बे हम सबके काम आते हैं

किंतु हम सफरके पश्चात् उन्हें छिलकों, पत्तों, पानी, धूल-मिट्टीसे सना हुआ, जूठनसे परिपूर्ण छोड़कर उठते हैं। यह हमारी गंदी आदतोंका परिचायक, गंदी वृत्तिका द्योतक है। हर सार्वजनिक स्थान सबके बैठने-उठनेके कार्यमें लेनेके लिये बना हुआ है। यदि हममेंसे प्रत्येक उसे अच्छी तरह प्रयोगमें लाये, तो वह अधिक दिन चल सकता है और सबको आकर्षक लग सकता है। सार्वजनिक स्थान हमारे हैं। जैसे हम अपनी वस्तुकी सफाई और सुरक्षाका ध्यान रखते हैं, उसी प्रकार हमें सार्वजनिक वस्तुओं तथा स्थानोंका ध्यान रखना चाहिये।

जो समर्थ हैं, अपनी शक्ति या रुपयेका दान दे सकते हैं, उन्हें सार्वजनिक स्थानों, पार्कों, पुलों, धर्मशालाओं, पब्लिक स्कूलों, टहलनेके स्थानों, मन्दिरों, स्नानके घाटों, रेलके डिब्बों, टट्टियों, प्लेटफार्मोंकी स्वच्छता और व्यवस्थाका पूर्ण ध्यान रखना चाहिये। अपने रुपयेसे मरम्मत या नयी वस्तुएँ बनवानेमें पीछे नहीं रहना चाहिये। रुपये दान देनेके स्थानपर उनसे मरम्मत या पुताई करा देना श्रेयस्कर है।

अपने देश, समाज तथा शरीरकी सफाई सुव्यवस्था और सौन्दर्यमें हम सबका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण दायित्व है। हमें चाहिये कि अपनी जिम्मेदारी अनुभव करें।

आत्मग्लानि और उसे दूर करनेके उपाय

आपसे अनजानमें या बिना सोचे-समझे असावधानीमें कोई पाप हो गया। आपको इस दुष्कृत्यपर पश्चात्ताप और आत्मग्लानि है। आपके हृदयका रोम-रोम पश्चात्तापसे क्लान्त है। आप अपने पाप-कर्मपर पर्याप्त दुखी हो चुके हैं। एक बार बौद्धिक तथा मानसिक दृष्टिसे पश्चात्ताप कर लेना ही यथेष्ट है। जब पश्चात्ताप मर्यादाका अतिक्रमण कर जाता है तो यह एक भावना-ग्रन्थि या कम्प्लेक्सका रूप ग्रहण कर लेता है जिसे आत्मग्लानि या रिमोर्स कहते हैं। अधिक दिनोंतक मनमें शोक और आत्मग्लानिके भाव रखनेसे

मनुष्यकी बड़ी मानसिक हानि होती है। अधिक पश्चात्ताप या शोक करनेसे बहुत-सी सृजनात्मक शक्तिका अपव्यय होता है।

मैंने ऐसे कई नवयुवक देखे हैं, जिनसे अनजानमें या अबोध अवस्थामें कोई पाप या दुष्कर्म हो गया था, पर जो जिन्दगी भर पश्चात्ताप करते रहे और विगत पापसे अपनेको शुद्ध न कर सके। अपनी करनीपर सदैव दुःख मनाते रहे।

आज भी ऐसे अनेक धर्मभीरु व्यक्ति देखनेमें आते हैं जो लज्जावश किसी भयानक दोषीकी भाँति मुँह छिपाये दारुण मानसिक यातना, अपमान, निरादर अथवा आत्मग्लानिकी स्थायी भावनाका अनुभव किया करते हैं। देशके लाखों हीरे बचपनके अन्धकार या अबोध अवस्थामें किये गये दुष्कर्म, हस्तमैथुन, वासना-लोलुपता, वेश्यागमन इत्यादिके शिकार बनकर आयु भर पछताते, रोते, कलपते रहते हैं। अपने आपको धिक्कारते रहते हैं। आत्मग्लानिके आधिक्यके कारण सामाजिक जीवनमें पदार्पण नहीं कर पाते या सार्वजनिक कार्योंसे डरते-घबराते रहते हैं। उनकी आकाङ्क्षाएँ, अभिलाषाएँ और उमंगें अधखिली कलीकी भाँति असमय ही मुरझा जाती हैं। उन्हें चाहे कितना ही अच्छा कार्य आता हो, ऊँचे उठने, योग्यताओंका प्रदर्शन करनेकी कैसी ही शक्ति क्यों न हो, वे बराबर चुप्पी धारण किये रहते हैं। वे हृदय खोलकर अपने मनकी गाँठें खोल देना चाहते हैं, किंतु आँखें चार करनेमें उन्हें लज्जा और गुप्त भय-सा अनुभव होता है। दृष्टि नीचे किये रहना, बात-बातमें शर्मा जाना, नवयौवना स्त्रीको भले ही आभूषित करता रहे, किंतु पुरुषोंके लिये

विशेषतः महत्त्वाकांक्षीके लिये तो यह बड़ा भारी मानसिक दोष है। अधिक आत्मग्लानिके शिकार बनकर या अतिशोकग्रस्त रहकर हम बिना अपराधके ही अपराधी बन जाते हैं। अनेक बार तो नीची दृष्टि देखकर लोग उन्हें दोषी और अपराधी भी समझ बैठते हैं। उफ! कैसी कारुणिक दशा है उस व्यक्तिकी, जो भला-चंगा होते हुए भी पग-पगपर इसी कारण अपनेको नीचा और अति साधारण समझता है, क्योंकि उससे एक बार पाप हो गया था। अति आत्मग्लानिग्रस्त व्यक्ति जब बाजारमें निकलता है, तो उसके मनमें यही गुप्त भय रहता है कि दुनियाके सभी व्यक्ति उसीके पाप, त्रुटि या कमजोरीको तीखी दृष्टिसे देख रहे हैं। चाहे वह कहीं हो, उसे ऐसा अनुभव होता है कि संसार उसकी प्रत्येक क्रिया, हाव-भाव, प्रत्येक छोटी बातको घूर-घूर कर देख रहा हो, जैसे पत्थर-पत्थरमें हजारों नेत्र हों जो उसे हड़प कर डालनेपर तुले हुए हों।

अपने पापका पश्चात्ताप करना निश्चय ही उचित है। आपसे कोई दुष्कर्म हो गया है, तो उसके लिये अवश्य प्रायश्चित्त करें, भविष्यमें उसे कभी न करनेकी कड़ी शपथ लें, बड़े सावधान रहें, कुसङ्ग और कुमित्रोंसे सदा बचे रहें, गन्दे स्थानोंपर न जायँ, कुविचार मनमें न आने दें। लेकिन जब आप यह सब कुछ कर चुकें, तो निरन्तर बीती हुई बातोंमें कदापि लिप्त भी न रहें।

कैथरीन मैन्सफील्ड लिखते हैं, 'आप इसे अपनी जिंदगीका नियम बना लीजिये कि कभी पश्चात्ताप न करेंगे और बीती हुई अप्रिय बातोंको भूल जायँगे, आप बिगड़ी हुई बातोंको कदापि नहीं बना

सकते—ऐसा करना कीचड़में सने रहनेके समान दूषित है।'

आत्मग्लानिका एक कारण गुप्त भय है। दूसरा साहसकी कमी है। इस मानसिक रोगीके मानसिक संस्थानमें गुप्त भय तथा डरपोक-पन अत्यधिक वर्तमान रहता है। वह लोगोंसे डरता है कि कहीं उसकी गुप्त बातें प्रकट न हो जायँ। मनुष्योंकी भीड़ उसके हृदयमें भयका संचार कर देती है। जहाँ दो-चार व्यक्ति दीखे कि उसे अनुभव होना शुरू हुआ, जैसे वे सब उसीको देखनेके लिये एकत्रित हों, वे उसका मजाक कर रहे हों, उसके पापों और पुराने दुष्कर्मों-की आलोचना कर रहे हों। आत्मग्लानिग्रस्त व्यक्ति सभा-समितियोंमें सम्मिलित नहीं होता, दस व्यक्तियोंके बीचमें बोलनेसे घबराता है। यहाँतक कि छोटे-छोटे बच्चोंमें भी आँखें ऊँची कर अपने विचार प्रकट करनेका साहस उसे नहीं होता। वह अपने उच्च अधिकारियोंसे मिलनेमें डरता है और अपने सहयोगी कर्मचारियोंसे मिलने-बोलनेमें घबराता है। अपरिचितोंसे घबराता है। अपनी योग्यता एवं क्षमतामें उसका आत्मविश्वास लुप्त हो जाता है। भय तथा डरपोकपनके अतिरिक्त आग्मग्लानिके कारणोंमें उदासीनता, गम्भीरता, लज्जा, निरुत्साह, आशङ्का और गुप्त रोग हैं।

आत्मग्लानि बढ़ने न दीजिये, अन्यथा यह स्थायी नैराश्य और नाउम्मीदी, स्वाभाविक मानसिक दुर्बलताका रूप धारण कर लेगी। हम प्रत्येक घटनाको अपने पक्षमें ही तय होनेकी कामना किया करते हैं, घटनाओंको व्यक्तिगत स्वार्थकी दृष्टिसे देखते हैं, अपने व्यक्तिगत मापदण्डोंसे नापते हैं। यदि ये घटनाएँ हमारे पक्षमें

घटित नहीं होतीं, तो हम खिन्न हो जाते हैं, क्रुद्ध होकर ईर्ष्या अथवा प्रतिशोधकी भावनासे जलने-भुनने लगते हैं। यह सत्य है कि हम अपना रोष स्पष्टतः प्रकट नहीं करते, किंतु अंदर-ही-अंदर वह हमें खोखला किया करता है। दूसरोंपर तो इसका कुछ प्रभाव पड़ता नहीं। उलटे हमारी ही हानि हो जाती है। फिर हम क्यों अपनी व्यर्थ आशाओंको ऊँचा चढ़ायें? क्यों कल्पनाके महल खड़े करते रहें? और फिर चारों ओरसे टकराकर क्यों आत्मग्लानिके शिकार बनें!

अपने पापोंपर पछतावा करनेके पश्चात् फिर उसके ध्यानमें निरत मत रहिये। दूसरे व्यक्ति भी इन्हीं परिस्थितियोंमेंसे होकर गुजरे हैं।

वास्तवमें हममेंसे पूर्ण निश्चल, पाक-साफ, दोष-मुक्त कोई भी व्यक्ति नहीं है। एक बार ईसा महान्ने कहा था—'वह मेरे ऊपर पत्थर मारे जिसने कभी पाप न किया हो।' यह सुनकर उन्हें दण्ड देनेवालेकी निगाहें झुक गयीं। उनके पुराने पाप एक-एक करके उनकी स्मृतिपर उभर आये और वे शरमा गये।

अपने पापोंपर व्यर्थका शोक और पश्चात्ताप छोड़कर नये सही जागरूक रूपमें जीवनमें प्रविष्ट होइये। व्यर्थका डर या पोचपन निकालिये और खोये हुए आत्म-विश्वासको बनाइये।

मि० मिल्टन पावेल साहबका कथन है कि 'यदि आप किसी आत्मग्लानिके रोगीको ठीक करना चाहें तो उसके मनसे गुप्त भय और डरपोकपन, भीरुता निकालिये। अपनी योग्यता और क्षमतापर

अविश्वास करनेके कारण ही रोगी दारुण मानसिक यातना भोगा करता है। अतएव उसमें साहस और आत्मविश्वास उत्पन्न करनेकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। मनुष्यका आत्मविश्वास ही वह अमोघ शक्ति है, जिसके कारण वह उत्साही, क्रियाशील रहता है तथा सार्वजनिक एवं सामाजिक जीवनमें सफलता प्राप्त करता है।

प्रिय पाठक ! तनिक सोचकर तो देखिये, जिस मनुष्यके मनसे भय, चिन्ता, शङ्का, डर, संदेह, निराशा, लाचारी और निर्बलता टपक रही है, वह क्या कभी कोई महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकेगा ? शङ्का और संदेह हमारी उन्नतिमें बड़ी बाधाएँ हैं। ये हमारी मानसिक एकाग्रतामें बाधक हैं और हमारे निश्चयको ढीला कर देनेवाले दुष्ट विकार हैं ? ये हमें अपने उद्देश्यसे चल-विचल कर देनेवाले फिसलनेके पत्थर हैं।

संसारमें हमें अविचल साहस एवं धैर्यसे कार्य करना चाहिये। बहुतसे मनुष्योंकी सफलता और समृद्धिका कारण यही है कि वे अपनी शक्तियों और सामर्थ्यमें पूर्ण विश्वास कर सकते हैं।

'हम कार्य कर सकते हैं, हमें ऊँचे दर्जेकी सफलता प्राप्त होगी, हम निरन्तर प्रभुता प्राप्त करते जा रहे हैं, ऊँचे उठते जा रहे हैं, निरन्तर उन्नतिके प्रशस्त पथपर आरूढ़ हैं'—इन दिव्य संकेतोंसे अपनी आत्माको सराबोर करते रहिये और इन्हें अपने मानसिक संस्थानका एक अङ्ग बना लीजिये, प्रचुर लाभ होगा।

प्रिय पाठक ! योगीकी तरह एकान्तवासी न बनिये। जहाँतक बने साहसपूर्ण ढंगसे सामाजिक कार्योंमें भाग लीजिये। आप व्यर्थ ही डरते

किस लिये हैं ? क्या आप नहीं जानते कि अन्य व्यक्ति भी आपसे अधिक नहीं जानते। वे भी मामूली ही हैं। जरा हिम्मतसे काम कीजिये।

अवसर मिले तो किसी सभा, समितिमें सम्मिलित हो जाइये और बेधड़क गाना-बजाना या खेल-कूद आदि सीख लीजिये, जिससे आप अपने क्लबके लोगोंसे खूब मिल-जुल सकेंगे। पहले-पहल यदि झेंपना पड़े तो घबरा न जाइये, प्रत्युत डटे रहिये। जहाँ मनमें आत्मग्लानि उत्पन्न हो तुरंत उसे मिटानेके लिये उसके विपरीत कार्य कीजिये। निरुत्साहके स्थानपर उत्साह और उल्लास धारण कीजिये। जहाँ हृदयमें लज्जा-संकोच अथवा भय आये, वहीं साहसपूर्ण जीवन व्यतीत कीजिये। 'हिम्मते मरदां मददे खुदा'। बिना हिम्मत संसारमें मनुष्यका कोई मूल्य नहीं है।

ढीले वस्त्र पहनिये, जिससे गहरा श्वास-निःश्वास हो सके। मांसपेशियोंको फुलाना आत्मग्लानिको भगानेमें बहुत सहायक होता है। किसी महत्त्वपूर्ण कार्यके लिये किसीसे मिलने जाना हो तो लज्जा न कर अवश्य वहाँ जाइये। जी न चुराइये। मनमें यह निश्चय कीजिये कि डरेंगे नहीं, संकोच और भय नहीं करेंगे। पुराने पापोंकी बात नहीं सोचेंगे।

पश्चात्तापकी अधिकता मनुष्यकी मौलिकता तथा नयी शक्तियोंका ह्रास करनेवाली है। अतः उससे मुक्त रहिये, मङ्गलमय भविष्यकी आशा रखिये।

जीवनकी कला

मनुष्यके जीवनमें नाना प्रकारके रस हैं। जिस प्रकार मधु-मक्खी सुन्दर सुरभित सुमनोंका मधु एकत्रित करती है, उसी प्रकार वह कडुवे नीमके कसैले फलोंसे भी शहद लेती है। मीठा और कसैला शहद मिलकर एक नया स्वाद देता है। इसी प्रकार मानव-जीवनमें सुख-दुःख आशा-निराशा, मजबूरियाँ-उल्लास, हर्ष-विषाद आदि नाना प्रकारके मीठे-खट्टे-कसैले पुष्प हैं, जिनसे हम जीवन-रस एकत्रित करते हैं।

हमारा जीवन एक वैज्ञानिककी प्रयोगशालाकी तरह है, जिसमें हम स्वयं अपने साथ तथा समाजके अन्य नागरिकोंके साथ रहकर नित्य नूतन प्रयोग किया करते हैं। एक तरह हम सब ही इस संसार-रूपी प्रयोगशालामें अपने अनुभवोंद्वारा प्रयोग कर रहे हैं। हमारी पाँच इन्द्रियाँ, हमारा मस्तिष्क, हमारा शरीर वे यन्त्र हैं, जिनसे हम जीवन और संसारविषयक ज्ञान एकत्रित कर रहे हैं।

वे कौन-से जीवन-सत्य हैं, जो संसारका अनुभव करनेके पश्चात् हमें मिलते हैं तथा जिनसे दूसरोंको लाभ हो सकता है? आइये, विद्वानों, महर्षियों तथा ज्ञानियोंद्वारा निर्णीत कुछ जीवन-सत्योंपर विचार करें।

जीवनमें रस लें

हमारा आधारभूत सत्य यह होना चाहिये कि हम अपने जीवनको प्यार करना, उसमें अधिक-से-अधिक सफलता, प्रतिष्ठा एवं

गौरव प्राप्त करनेका उद्देश्य अपने समक्ष रक्खें। बुद्धिमत्तापूर्वक जीवनका कार्यक्रम, पेशा, कार्यक्षेत्रका चुनाव करें। जो कार्य हमें जीवनभर करना है, उसपर रचनात्मक दृष्टिसे विचार करें। उसमें आनन्द लें। लोग कुछ वर्ष पश्चात् अपने कार्यमें दिलचस्पी या रस लेना छोड़ देते हैं और कामको भारस्वरूप समझने लगते हैं। यह बड़े क्षोभका विषय है।

अपने कार्यमें रस लीजिये, उसे दिलचस्प बनाइये। दिलचस्पी-से अपना कार्य करनेसे मनुष्यका स्थायी उत्साह बना रहता है और कार्य सहज सरल हो उठता है। गहराईसे अपने पेशेके गुप्त रहस्य मालूम करें और अपने आपको कार्यके अनुकूल बना लें, ढाल लें। जैसे-जैसे आपकी शक्ति, स्वभाव और आदतें पेशेके अनुकूल ढलती जायँगी, वैसे-वैसे एकरसता हटती जायगी। हम निरन्तर अपने पेशोंमें उन्नति करते जा रहे हैं—यह भाव मनमें रखनेसे स्थायी उत्साह बना रहता है।

प्रत्येक व्यक्तिको कुछ-न-कुछ कार्य करना पड़ता है, हम भी अपना कार्य कर रहे हैं। जब बिना काम जिंदा नहीं रहा जा सकता तो हम क्यों न अपने कार्यमें रस लें—यह मनमें बैठा लेना चाहिये।

प्रधान कार्यके अतिरिक्त कुछ अवकाशका समय निकालें, जिसमें कुछ-न-कुछ मनोरञ्जन करते रहें। मनोरञ्जन जीवनका रस है। कुछ कालके लिये आप संसारकी चिन्ताएँ भूल जायँ। उत्साहसे खेलोंमें भाग लें। उत्साह बनाये रखनेसे शरीरकी शक्तियाँ सक्रिय हो जाती हैं और आत्मविश्वास बढ़ता है।

पेशेमें रस बनाये रखनेके लिये यह आवश्यक है कि आप कुछ दिनोंके लिये मुख्य पेशा छोड़ते रहें और दूसरे कार्योंमें संलग्न होते रहें। नया कार्य करनेसे सरसता बनी रहती है तथा कुछ काल पश्चात् पुराने पेशेके प्रति पुनः उत्साह जाग्रत् हो उठता है।

बन्धनोंसे मुक्त समझें

सम्भव है आपके मानसिक जीवनमें गुप्त भावना-ग्रन्थियाँ पड़ी हों। आप ऐसे सभी संस्कारोंसे मुक्त रहनेका अभ्यास करें, जो अनुचित रीतिसे आपके व्यक्तित्वपर भार डाल रहे हैं। अपने सामर्थ्य-पर रहकर नये विचारोंकी दुनियामें रहा करें। नये रूपमें अपनी परिस्थितियों, कठिनाइयों और नाना समस्याओंपर विचार करें।

आपके बन्धन बाहरी या मानसिक दोनों प्रकारके हो सकते हैं। उनका विचारपूर्वक विश्लेषण करें, वर्गीकरण करें, फिर पृथक्-पृथक् विचार कर एक-एकको सुलझाएँ। समस्याओंकी गुत्थियाँ सम्भव है, आपको भयभीत कर दें, किंतु जैसे-जैसे आप उनका वर्गीकरण करेंगे, वैसे-वैसे वे साफ होती जायँगी। बिखरे और उलझे हुए बालोंको देखकर मन कैसा घबराता है, किंतु उन्हीं केशोंको जब स्वच्छ कर कंघेसे सुलझा लिया जाता है, तो वे ही सुन्दर प्रतीत होने लगते हैं। यही हाल जीवन-समस्याओंका है। दूरसे उलझा हुआ देखकर आपको जो घबराहट होती है, समीप आनेपर वह विलुप्त हो जाती है।

आवश्यक-अनावश्यकका भेद करना सीखें

अनेक बार हमारी मानसिक शक्तियाँ धोखा दिया करती हैं। कठिन श्रमपूर्ण कार्योंके प्रति हमारा सम्मान नहीं होता। अरुचिकर

कामोंको हाथमें लेनेको तबियत नहीं करती। सच्चे और ठोस कार्यसे बचनेके निमित्त प्रायः हम अनावश्यक कार्योंको हाथमें ले लेते हैं और उनमें ऐसे संलग्न हो जाते हैं, मानो अत्यन्त जरूरी काम कर रहे हों। कष्टसाध्य कार्योंसे भागनेकी और खेल-कूदमें प्रवृत्त रहनेकी वृत्ति बच्चोंमें विशेष रूपसे पायी जाती है। हममेंसे भी अनेक इसी वृत्तिके शिकार हैं। हम उन जरूरी कार्योंको न करेंगे, जिनमें श्रम लगता है। कहानी, उपन्यास पढ़नेवाले ढेरों हैं, पर गम्भीर साहित्यमें आनन्द लेनेवाले नगण्य हैं।

कठिन, अरुचिकर, परिश्रम और मनोयोग चाहनेवाले कार्योंको आप सबसे पहले करें। प्रातःकालका समय ऐसे कठोर कार्योंके लिये सुरक्षित रखिये। इसमें आप कठिन कार्योंको बखूबी कर सकते हैं; क्योंकि आपका मन और शरीर ताजा है।

कौन काम पहले, कौन बादमें करें इसका विवेक मनुष्यको अपनी उच्चतम शक्तियोंको एक स्थानपर केन्द्रित करना सिखाता है। अनावश्यक कार्य सरल होते हैं पर उनसे कोई स्थायी लाभ नहीं होता। ऐसे मोहक प्रलोभनसे सावधान!

सच्ची इच्छा और नकली इच्छामें विवेक करें

आप जीवनमें छोटी-बड़ी अनेकों इच्छाओंको पूर्ण करने तथा बड़े बननेके अनेकों स्वप्न देखा करते हैं। 'मैं यह भी कर लूँ वह भी कर लूँ' 'लक्ष्मीकी मेरे पास कृपा हो' 'सरस्वती सहायक हो' ऐसी-ऐसी सैकड़ों इच्छाएँ सागरमें तरङ्गोंकी भाँति मनमें उत्पन्न होती रहती हैं। ये थोथी बातें हैं। जो निरी कपोल-कल्पनामें निमग्न रहता

है, कार्य कुछ नहीं करता, वह निरा शेखचिल्ली ही कहा जायगा। ये सब नकली इच्छाएँ हैं, जिनका कुछ महत्त्व नहीं।

सच्ची इच्छा मनमें रखनेवाला अपने लक्ष्यके प्रति उत्साह, जागरूकता और परिश्रमसे युक्त रहता है। नकली इच्छा मेहनतका अवसर आते ही विलुप्त हो जाती है। असली इच्छा कठोर परिश्रम, कठिनाई, असफलता तथा कष्टोंके बावजूद स्थायी बनी रहती है। सच्ची इच्छामें स्थायी प्रयत्नकी भावना है। जिसके प्रति जितनी दृढ़ सच्ची इच्छा होती है, वह उतनी ही सफल होती है। नकली इच्छा आकस्मिक सक्रियता मात्र है, सच्ची इच्छा निरन्तर उत्साहपूर्ण सक्रियता है। नकली इच्छाको शक्तिका अपव्यय, आलस्य और व्यसन नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं, पर सच्ची इच्छाके सामने ये दुम दबाकर भाग जाते हैं।

शक्तिके अपव्यय (बिखरना) से बचकर कार्यको हाथमें लें, उसीमें गड़ जायँ, तभी आप सच्ची इच्छाकी साधना कर सकते हैं। सावधान! आलस्य एवं व्यसनको पास न फटकने दीजियेगा। मानव-संस्कृतिने जितने महान् कार्य किये हैं; वे तीव्र स्थायी इच्छा-शक्तिके संतुलनद्वारा ही सम्पन्न हुए हैं। इच्छा-शक्ति ही आपको आगे प्रेरित करनेवाली अमोघ शक्ति है। निश्चयमें कभी ढीले न रहें।

समीपसे देखें

दूरकी दुनिया, व्यक्ति, मनुष्य, संस्थाएँ, एक अभिनव आकर्षणसे युक्त प्रतीत होते हैं। वस्तुकी दूरी एक भीना धुँधलापन नेत्रोंपर बिछा देती है। इस अस्पष्टताके आवरणमें असुन्दर अकल्याणकारी भी सुन्दर और कल्याणकारी प्रतीत होने लगता है। दूरसे चित्रोंमें नया

सौन्दर्य भर जाता है। समीपसे देखनेपर आप ऐसे अनेक रँगे सियारोंसे परिचित हो जायँगे, उनके अनेक रहस्य आपके सामने प्रकट होंगे, संस्थाओंकी कलई खुल जायगी, बड़े व्यक्तियोंकी पोलें खुल जायँगी। आप देखेंगे कि जो दूरसे चमकता है, वह सब सोना नहीं होता। चाँदमें भी कालिमा लगी हुई है। समीपसे देखनेपर आपको बड़े व्यक्तियोंमें तुच्छता और तुच्छ समझे जानेवालोंमें त्याग और बलिदानकी महानता दृष्टिगोचर होगी।

अपनी गुप्त बातें हर-किसीसे न कहें

प्रत्येक व्यक्तिके पास कुछ ऐसी गुप्त बातें रहस्योंके रूपमें होती हैं, जिनकी गोपनीयतापर उसकी प्रतिष्ठा, साख या सामाजिक स्थिति निर्भर रहती है। अनेक बार ऐसी गुप्त व्यथाएँ होती हैं, जिन्हें दूसरे व्यक्ति बाँट नहीं सकते, केवल हँसी और व्यंग्य अवश्य कर सकते हैं। आपके कष्ट सुनकर उनकी दर्प-पूर्ति और ईर्ष्याकी वासनाएँ शान्त होती हैं। आपकी तकलीफोंको सुनकर वे अपने-आपको उनसे ऊँचा समझते हैं। आपको हेय दृष्टिसे देखते हैं। मन-ही-मन आपकी मजबूरियों और असफलताओंपर हँसते हैं। जो बाहरसे सान्त्वना भी देते दिखायी देते हैं, उनके मनमें भी प्रायः अपनी दर्प-पूर्तिका भाव रहता है।

जिनकी आप सहानुभूति चाहते हैं, उनसे आपको कोई लाभ होने-जानेवाला नहीं है। जो सहानुभूति केवल मिथ्या प्रदर्शनके लिये है, उससे क्या लाभ? यही सहानुभूति प्रदर्शन करनेवाले दूसरोंके सम्मुख जाकर आपकी गुप्त बातें फैलायेंगे और आपकी अप्रतिष्ठाका कारण बनेंगे। आपके मित्र ही आपके गुप्त भेद चारों ओर फैलाकर किनारा कस लेंगे।

कविवर रहीमने इसी तत्त्वको स्पष्ट करते हुए लिखा है—

रहिमन निज मनकी व्यथा मन ही रखिये गोय ।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँट न लैहै कोय ॥

व्यापारियों, उच्च अधिकारियों तथा नेताओंके लिये अपने कार्यालय, व्यापार, दूकान, घर या पार्टीके भेदोंको गुप्त रखना आवश्यक है । गोपनीयतासे आपमें दूसरोंको आकर्षण प्रतीत हो जायगा ।

सम्भव है, आपमें कुछ ऐसी गुप्त कमजोरियाँ हैं, जिनका दूसरोंको बताना आपके, आपके परिवार या अन्य व्यक्तियोंके लिये अहितकर हो । ऐसी दुर्बलताओंको दफना देनेमें ही लाभ है ।

व्यापारमें अपने लाभ-हानि, वास्तविक आर्थिक स्थिति किसीसे कहना अत्यन्त हानिप्रद है । जबतक बाहरवाले यह समझते हैं कि आपकी आन्तरिक स्थिति अच्छी है, आप खूब लाभ कमा रहे हैं, आपके पास पूँजी एकत्रित है, तबतक आपकी साख बँधी रहती है, उधारसे भी आपके व्यापारमें सहायता मिलती है; किंतु आपके घाटेकी बात सुनकर आपके निकटसम्बन्धी भी किनारा कस लेंगे, कोई तनिक भी सहायता प्रदान न करेगा । बनी-बनीके सब कोई साथी हैं, पर बिगड़ीका कोई नहीं है । सम्भव है, धीरे-धीरे आपकी हानि दूर होकर फिर अच्छे दिन फिरें, समयकी गतिके साथ आप पुनः समृद्धिशाली बन जायँ । अतः जिन मानसिक उलझनों, हानियों, कष्टोंमें आप हों, उन्हें पृथक्-पृथक् सुलझाकर स्वयं हल करें । अपने आत्मबल, गुप्त सामर्थ्यको उत्तेजित करें और स्वयं अपनी सहायता करें । दूसरोंसे अपने कष्टों एवं मजबूरियोंकी कहानियाँ न कहते फिरें ।

समृद्धि अथवा निर्धनताका मूल केन्द्र—हमारी आदतें !

एक विद्वान्ने लिखा है, 'आप एक कंजूस या लोभी व्यक्तिसे सब कुछ छीन सकते हैं। उसके घर-बार, वस्त्र-आभूषण, पूँजी सब कुछ लूट सकते हैं और उसे घरसे बाहर अकेला खड़ा कर सकते हैं, किंतु फिर भी उसके पास एक महान् वस्तु रह ही जाती है। आप उसकी आदतों—रुपया जोड़ने और एकत्रित करनेकी प्रवृत्तिको नहीं लूट सकते। यह आदत उसके पास रह ही जायगी और अवसर प्राप्त होते ही वह इसीके बलपर पुनः एक दिन समृद्धिशाली बन जायगा।'

स्टीविनसन कहा करते थे—'सांसारिकता और व्यवसायसे ग्रस्त मनुष्योंको आप संसारके कोलाहल एवं चिन्ताओंसे दूर किसी सुरम्य प्रदेशमें ले जाइये, मनोरम उद्यानमें रखिये, उनके आन्तरिक कष्ट दूर करनेके लिये उनका खूब मनोरञ्जन कीजिये, किंतु उनके मनमें सांसारिकतामें लिप्त रहनेकी जो आदत है, वह उस सुरम्य प्रदेशमें भी उनका पीछा न छोड़ेगी। वे घर, परिवार, रुपयेकी लेन-देन, पूँजीको एकत्रित करने अथवा विवाहोंकी चिन्ताओंमें संलग्न रहेंगे। मनोरम प्रकृति उन्हें उल्लसित-प्रमुदित न कर सकेगी।'

वास्तवमें, मनुष्यके सुख-दुःख, चिन्ता, आनन्द-समृद्धि, निर्धनताका कारण बाह्य संसार या परिस्थितियोंमें नहीं है। वह

स्वयं मनुष्यकी अपनी व्यक्तिगत आदतोंमें विद्यमान है। आदतोंकी बुनियादपर हमारी सामाजिक प्रतिष्ठाका महल खड़ा होता है। हमारी अमीरी-गरीबीका मूल केन्द्र ये आदतें ही हैं। कुछ उदाहरण लीजिये—

क्या कारण है कि बनिये अल्प आयमें भी अमीर बन जाते हैं, जब कि दूसरे वर्गके व्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक आय करते हुए भी आर्थिक दृष्टिसे खोखले बने रहते हैं? कारण—उनकी आदतें हैं। बनिया संयमी होता है। वह अपनी आदतोंपर कठोर नियन्त्रण एवं अनुशासन रखता है। उसमें इन्द्रिय-लोलुपता, रुपयेका अपव्यय करना, बाह्य प्रदर्शन, थोथी शानकी दिखावटी आदतें बहुत कम पायी जाती हैं। वह चार पैसे कमाता है, तो एक पैसा व्यय करता है। तीन पैसे संकट-कालके लिये बचाकर रखता है। यह बचानेकी, संयम और निरभिमानताकी आदतें बनियोंमें कुलसे चली आती हैं। इसीलिये बनियेका पुत्र उन्हीं परिस्थितियोंमें अपनी आदतोंका निर्माण करता है। बनिया-परिवार बहुत कम गरीब होता है।

दूसरी ओर आजकलके दिखावटी, दंभी, झूठी शानमें मस्त 'बाबू' वर्गकी आदतोंको लीजिये। वे बाहरी दिखावा, सफेद लिबास, श्रृंगार, असंयम खूब करते हैं। महीनेमें पैंतालीस रुपये कमायेंगे और दिखायेंगे ऐसा मानो डेढ़ सौ रुपये कमाते हों। भले ही इस अपव्यय और मिथ्या शानको कायम रखनेके लिये ऋण लेना पड़े। पैन्ट भी हो, नेकटाई भी और सिनेमा-सिगरेट-पान भी। जूतेपर पालिश और बालोंमें सुगन्धित तेल, यह दुनियाँको

धोखेमें डालनेके लिये एक कृत्रिम पर्दा खड़ा कर लेना चाहते हैं जिससे उनका असली स्वरूप प्रकट न हो सके। जो चार पैसे कमाकर छः पैसे व्यय करेगा, वह क्या कभी समृद्ध हो सकेगा ? भले ही वह दो-चार वर्ष जनतापर झूठी शान जमा ले, किंतु उसकी नींव बालूपर ही स्थित समझनी चाहिये।

एक दिन मैं चमारसे जूता गठवा रहा था। कम उम्रका लड़का था, कमीज भी जरा उजली, धोती भी ढंगकी और बालोंमें तेल। बातें चल पड़ीं। मैंने पूछा, 'कितना कमाया है ?' वह बोला—'अभी क्या, बाबूजी कुल छै-सात आने पैसे आये हैं, सिनेमाके लायक, बस। सिनेमाका शो देखते जायँगे। भोजनके लिये शामतक आठ आने और चाहिये।'

'क्या तुम रोज सिनेमा देखते हो ?'

शामका शो, पाँच पैसेकी बीड़ी, एक माचिस और दो बार पान, बस सरकार—यह नहीं छूटते। इनके लिये आठ-नौ आने रोज—पहले इकट्ठे करते हैं। बादमें भोजन देखा जाता है। कभी-कभी भूखे पेट सोना पड़ता है।'

'पैसे ही नहीं हैं, सरकार। विवाह कर बीवी-बच्चोंको पालनेके लिये एक डेढ़ रुपया चाहिये। यहाँ एक अकेले खुदका ही पेट नहीं भर पाता हूँ। बीबी-बच्चोंका भार कैसे सम्हाला जाय ? कपड़ेतकके लिये पैसा नहीं। रहनेको एक मित्रके टूटे छप्परमें पड़ रहता हूँ और ठिठुरकर रात काट देता हूँ।'

मुझे चमारकी गरीबीका रहस्य मिल गया था। वह था

उसका असंयम और घृणित आदतें । उसकी आय एक रुपया प्रतिदिन थी जिसे जोड़ने और समझदारीसे व्यय करनेपर वह एक भले नागरिक-जैसा जीवन व्यतीत कर सकता था । पर नहीं, कौन उसकी आदतोंपर नियन्त्रण करे । एक बार जिस रास्तेपर चल पड़े हैं, उसीपर चले जा रहे हैं । मनुष्यकी आदतें भी बड़ी जटिल होती हैं ।

मुझे इस उक्तिमें बड़ा भारी सत्य दिखायी देता है—

'पूत कपूत तो क्यों धन संचै ?
पूत सपूत तो क्या धन संचै ?'

यदि आपका पुत्र कपूत है, तो उसके लिये धन एकत्र करनेसे क्या लाभ ? अपनी गंदी अपव्ययी आदतोंके कारण वह सब नष्ट कर देगा । यदि आपका पुत्र सपूत है, तब भी धन-संचयसे कोई लाभ नहीं । कारण, अपनी मितव्ययी एवं संयमी आदतोंके बलपर वह पूँजी स्वयं एकत्रित कर लेगा । हमारी आदतें ही हमारी गरीबी या अमीरीका कारण हैं ।

भारत-विभाजनके प्रसंगमें असंख्य परिवार लुट गये । धनवान् गली-गलीके मुहताज बन गये; दूकानदारोंकी दूकानें लुटीं, जमीन-जायदाद, घर-बार जाते रहे । पर उनकी आदतें न छूटीं, न छीनी गयीं । हमने आश्चर्यसे देखा, हमारे शहरमें आये हुए पचास फी सदी शरणार्थी अपनी अल्प पूँजीपर मजबूत संयमी एवं मितव्ययी आदतोंके बलपर पुनः समृद्धिशाली बन गये; उनके रोजगार चल निकले; चार पैसे फिर एकत्रित हो गये । दूसरी ओर पाकिस्तानमें गये मुसलमान अपनी असंयमी अपव्ययी आदतोंके बलपर दरिद्र और पतित हो गये । पंजाब उजड़ गया ।

हरे-भरे खेत वीरान बन गये । आलीशान मकानोंपर पीक और बीड़ीके टुकड़े नजर आने लगे । जिस पंजाबमें अनाजका कोष था, जो सारे भारतको पालता था, वही पंजाब आरामतलब मुसल्मानोंके हाथमें आकर अकाल-पीड़ित बन गया । इधर भारतमें श्रमी हिंदुओंने रेगिस्तानी इलाकोंमें भी नहरें निकाल डालीं । ये हैं, मनुष्यकी व्यक्तिगत अच्छी-बुरी आदतोंके परिणाम । हम नागरिकोंकी व्यक्तिगत आदतोंसे ही राष्ट्रके चरित्रका निर्माण होता है । यदि राष्ट्रको समुन्नत करना है, तो प्रत्येक नागरिकके चरित्रमें श्रम, मितव्यय, संयम, संगठन और ईमानदारीको स्थान देना होगा ।

व्यक्ति-निर्माणसे राष्ट्र-निर्माणका कार्य होता है । अतः हममेंसे प्रत्येक माता-पिता, भाई-बहिनका कर्तव्य हो जाता है कि बच्चोंमें आदतरूपी मानसिक मार्गोंका निर्माण करें ।

प्रथम उत्तम आदत स्वास्थ्य और संयमकी है । इससे मानवकी मौलिक उन्नति होती है । शरीर स्वस्थ और नीरोग बनता है । व्यसनोंसे विशेष सावधान रहनेकी आवश्यकता है । प्रत्येक बच्चेको स्वस्थ आदतोंमें पालना चाहिये । चाय, तम्बाकू, पान इत्यादि तथा सिनेमाकी गंदी तस्वीरों तथा उत्तेजक साहित्यसे दूर रखनेकी आवश्यकता है ।

मानसिक आदतोंमें संयम, नियमितता, निरभिमानता, सादगी और सचाईकी आदतोंकी अतीव आवश्यकता है । हम जैसे हैं, वैसे ही दूसरोंके समक्ष उपस्थित हों; स्वयं अपनेको या दूसरेको धोखेमें न डालें—यह बड़ी उपयोगी वृत्ति है ।

जो आय हो, उसीमें जीवनकी समस्त आवश्यकताओंकी पूर्ति हो जाय, ऋण लेनेकी आवश्यकता न पड़े, वरं कुछ-न-कुछ प्रतिमास बचता रहे, ऐसी योजना बनाकर चलना चाहिये, ज्यों-ज्यों आमदनी गिरे, त्यों-त्यों आवश्यकताएँ भी तदनुसार कम होती रहें ।

ईश्वरमें विश्वास होना चाहिये । यदि हम कोई पाप करेंगे, तो ईश्वर हमें दण्ड देंगे; आज नहीं तो कल हमें अपने पापोंका दण्ड अवश्य मिलेगा; हम उससे बच नहीं सकते; जगन्नियन्ताको धोखेमें नहीं डाल सकते; अतः हमें धर्मभीरु बनकर सन्मार्गका ही पथिक बनना चाहिये । सत्य, प्रेम, न्याययुक्त जीवन ही सुख-शान्तिमय होता है, सदा श्रमी ही विजयी होता है, यह आदतोंमें सम्मिलित कर लेना चाहिये ।

वासनाकी पूर्ण तुष्टि सम्भव नहीं है । यह मानना गलत है कि वासना-पूर्तिसे स्वयं विरक्ति हो जायगी । वासनाओंकी भट्ठी निरन्तर अधिकाधिक जलती रहेगी । मन एक स्त्रीसे दूसरीपर हमेशा भागता रहेगा । अतः उसको वासनासे विरक्तिकी आदत डालनी होगी । उसे सिनेमा, अश्लील साहित्य, गंदे विचार, व्यभिचार इत्यादिसे बराबर खींचकर सत्कार्योंमें लगाना होगा । सत्-चिन्तन, सद्ग्रन्थावलोकन, सत्पुरुषोंकी सेवा, सत्सङ्गमें लगानेकी आदतोंका निरन्तर विकास करना चाहिये । सत्-चिन्तन, उच्च कार्योंकी प्रवृत्ति भी एक प्रकारकी आदत ही हैं । अतः प्रारम्भसे ही इन अच्छी आदतोंकी ओर प्रवृत्ति रखनी चाहिये । मनुष्यकी आदतें ही सच्चे व्यक्तित्वका निर्माण करती हैं ।

स्वभाव कैसे बदले ?

क्या मानव-स्वभाव परिवर्तित हो सकता है ? कई महानुभाव कह उठते हैं, 'क्या बतायें, हमारा तो क्रोधका स्वभाव है, हमें जल्दी ही गुस्सा आ जाता है। हम उत्तेजनाको रोक नहीं पाते। लड़ बैठते हैं। हमारी किसीसे नहीं बनती।' कुछ व्यक्ति दूसरोंकी टीका-टिप्पणी करने, दोष निकालने, पीठ पीछे बुराई करनेमें बड़ा आनन्द लेते हैं। वे जानते हैं कि यह उनके स्वभावका दोष है; पर बेचारे स्वभावसे विवश हैं।

मानव-स्वभावको बदला जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति यदि अभ्यास करे, तो वह अपनी पुरानी बुरी आदतें छोड़कर अच्छी आध्यात्मिक आदतें धारण कर सकता है। प्रेम, सहानुभूति, मैत्री भाव इत्यादि प्रत्येक आदतका विकास निरन्तर अभ्याससे होता है।

आदतें हमारा स्वभाव निर्माण करती हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे प्रत्येक आदत एक मानसिक मार्ग है। पुनः-पुनः एक कार्यको दोहरानेसे एक विशेष प्रकारकी आदतका निर्माण होता है। प्रत्येक गंदी आदतका विरोधी शुभ भाव बढ़ानेका अभ्यास करें। इस नवीन आदतको दृढ़ संकल्पसे बढ़ाते रहें। जो न्यूनताएँ या असभ्यताएँ आपके चरित्रमें आ गयी हैं, उन्हें निकालनेके लिये उनकी विरोधी शिष्टताओंको धारण कर प्रत्येक व्यक्ति नये व्यक्तित्वका निर्माण कर सकता है।

अशिष्ट आदतोंकी मानसिक जड़ें बचपनके दूषित कुसंस्कार हैं, जिन्हें बच्चे घरसे, मुहल्लेके गंदे बच्चोंसे तथा स्कूलसे सीखते हैं। ये अन्तर्मनमें प्रविष्ट होकर जटिल ग्रन्थियाँ बन जाती हैं।

इसके विपरीत जो शिष्टताकी आदतें हमारे बचपनमें बरबस अन्तर्मनमें प्रविष्ट करा दी जाती हैं, वे हमारे आकर्षणका विषय बन जाती हैं। छोटे बच्चोंको शिष्टाचारसम्बन्धी शिक्षा न देनेके कारण उनका उच्च सोसाइटीमें प्रविष्ट होना कठिन हो जाता है। बच्चे निरन्तर हमारा अनुकरण किया करते हैं।

यदि हम अपने बच्चोंको शिष्ट, सभ्य, आकर्षक, सुन्दर और उत्तरदायित्वपूर्ण नागरिक बनाना चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि हम स्वयं उनके सम्मुख शिष्ट व्यवहारका ऐसा नमूना प्रस्तुत करें, जिसका अनुकरण उन्हें जीवनमें उत्साह और प्रेरणा प्रदान कर सके। जो माँ-बाप स्वयं व्यवहारमें ढीले-ढाले हैं, प्रातःकाल शय्या त्यागने, दन्तमञ्जन, स्नान, पूजापाठ या वस्त्र-धारण तथा उन्हें यथास्थान रखनेमें नियमोंका पालन नहीं करते, उनके बच्चे, जो चौबीस घंटोंमें पंद्रह-सोलह घंटे उनके साथ रहते हैं, किस प्रकार सभ्यता और शिष्टाचारका पाठ पढ़ सकते हैं ?

जैसे हम हैं, वैसा ही हमारा वातावरण भी है। सभ्य व्यक्तिकी प्रत्येक वस्तु आपको यथास्थान साफ-सुथरी, आकर्षक मिलेगी। जूतोंसे लेकर कमीज, कोट, टोपी या बाल काढ़नेका कंघातक स्वच्छ रक्खा मिलेगा। उसके जूतोंपर न मैल होगा, न कंघेमें बाल लगे हुए होंगे। उसके कोट या पतलून या धोतीमें शिकन न मिलेगी। वह वस्त्रोंकी देखभाल, सम्हालके कारण दूसरोंसे आधे वस्त्रोंमें भी आकर्षक प्रतीत होगा। कम खर्चेमें वह अधिक तरहके सुख प्राप्त कर सकेगा। उसे लम्बा-चौड़ा बढ़िया मकान नहीं चाहिये। छोटेसे मकानमें या एक कमरेका ही वह इतना उत्कृष्ट प्रयोग करेगा कि उसकी सभ्यता प्रकट हो जायगी। शिष्टाचारका अर्थ यही नहीं कि आप दूसरोंके साथ कैसा व्यवहार करते हैं। स्वयं अपने साथ भी आपका व्यवहार उत्तम होना अनिवार्य है। यदि आप अपने साथ दुर्व्यवहार करते हैं, तो बड़ा पाप करते हैं।

आप पूछेंगे कि हम अपने साथ किस प्रकार दुर्व्यवहार करते हैं ? इसके अनेक रूप हैं। आप जानते हैं कि ठीक समयपर उठने, व्यायाम करने, टहलने या विश्राम करनेसे आपका स्वास्थ्य ठीक रहता है; किंतु शोक ! आप न तो ब्राह्म मुहूर्तमें उठते हैं, न व्यायाम, टहलना या विश्राम करते हैं। आप रुपयेके लोभमें दिन-रात तेलीके बैलकी तरह पाई-पाई इकट्ठी करनेमें मारे-मारे फिरते हैं। आपके पास पर्याप्त धन है, जिसके द्वारा आप भोजन, वस्त्र तथा अच्छे मकानका प्रबन्ध कर सकते हैं; किंतु आप कंजूसीके कारण इनमेंसे कोई भी काम नहीं करते। यह सब अपने प्रति दुर्व्यवहार है।

अपने शरीरकी बुराईकी तरह जानते-बूझते आप अपने बच्चोंकी आदतों या सभ्यतासे गिरे हुए व्यवहारको नहीं रोकते या उनकी गलतीपर सजा नहीं देते, तो आप अन्याय करते हैं। अपनी पत्नीकी असभ्यताओंको रोकना आपका एक पुनीत कर्तव्य हो जाता है। परिवारके और सदस्योंकी खराबियों या अशिष्टताओंका आप शिष्ट रीतियोंसे परिष्कार कर सकते हैं; अपने अधीन नौकरों आदिको अशिष्टतासे रोककर आप समाजमें अच्छाइयोंके बीज बो सकते हैं। यदि ऐसा नहीं करते, तो यह आपका दुर्व्यवहार है।

आपकी दृष्टि कमजोर है, किंतु फिर भी आप सिनेमा देखते हैं, मिर्च-मसाले, खट्टी चीजोंका व्यवहार करते हैं, यह अपने प्रति दुर्व्यवहार हुआ; अपने अंदर किसी मादक द्रव्यको लेनेकी आदत डालकर विषपान करना आत्मघात करनेके बराबर गर्हित है।

शक्तियोंको खोलनेका मार्ग

मनुष्यका यह स्वभाव है कि दूसरे आदमी उसे जैसा पुनः-पुनः कहते हैं, धीरे-धीरे वह स्वयं भी अपने बारेमें वैसा ही विश्वास करने लगता है । उसका गुप्त मन दूसरोंकी बातोंको चुपचाप पकड़ता रहता है और अन्ततः वह उन्हींके अनुसार ढल जाता है ।

चाहे हम ऊपरसे दूसरोंकी बातोंसे मन फेर लें; किंतु दूसरोंकी बातचीत और टीका-टिप्पणीका गुप्त प्रभाव हमारे ऊपर बहुत जल्द पड़ता है । किसीको आप जैसा कहते रहें वह धीरे-धीरे वैसा ही होकर रहता है । हमारी यह आन्तरिक कामना रहती है कि दूसरे व्यक्ति हमें अच्छा कहें, हमारे गुणोंकी प्रशंसा करें, हमारी महत्ता स्वीकार करें और तभी हमें अपने अच्छे मनपर विश्वास भी होता है, जब लोग हमें अच्छा कहते हैं । हम चाहे वास्तवमें लाख अच्छे ही हों; पर यदि हमें अपने अच्छेपनका सबूत दूसरोंके शब्दों-द्वारा नहीं मिलता, तो हमारे गुप्त मनपर गहरा आघात पहुँचता है । हमारे अच्छेपनके गुण क्षीण होने लगते हैं । कभी-कभी तो हमारा मन विद्रोह कर उठता है और हम दुर्गुणीतक बन जाते हैं । कहा जाता है कि रावण एक विद्वान् सद्गुणी ब्राह्मण था । पर जब संसारने उसके सद्गुणोंको स्वीकार कर प्रोत्साहन न दिया तो उसका व्यक्तित्व विद्रोही बन गया । उसके सद्गुण विलुप्त हो गये और असुरत्व विकसित हो उठा । यदि उसके दिव्य गुणोंको पर्याप्त प्रोत्साहन लगातार मिलता रहता तो वह भी भारतका कोई ऋषि बनता । जन्मसे ब्राह्मण अनेक वेदोंका पण्डित, ज्ञानी, विचारक एक

असुर बन गया । यह है गलत दिशामें प्रोत्साहन देनेका दुष्परिणाम ।

श्रीश्रीप्रकाशजीने एक बार श्रीमती ऐनी बेसेन्टसे पूछा था कि 'हम भारतीयोंमें क्या दोष है कि हम उन्नति नहीं कर पाते । हमें सफलता नहीं होती और हम तथा हमारे कार्यकर्ता हारकर बैठ जाते हैं ?'

श्रीमती ऐनी बेसेन्ट शिष्टाचारकी मूर्ति थीं । वे किसीके हृदयको कष्ट देना नहीं चाहती थीं । बड़े-बड़े संघर्षोंके समय भी सौम्य संयत भाषाका ही प्रयोग करती थीं । व्यक्तिगत स्नेह बनाये रखनेकी कला-में भी अपूर्व रीतिसे प्रवीण थीं । उनके सार्वजनिक विरोधमें भी इसी कारण कोई कर्कशता कभी नहीं आती थी । वे उत्तर देनेमें संकोच कर रही थीं । श्रीश्रीप्रकाशजीने बार-बार आग्रह किया, तो उनका उत्तर वास्तवमें नई रोशनी देनेवाला था । थोड़ेसे शब्दोंमें उन्होंने बहुत बड़े अनुसंधानका परिणाम बतलाया था ।

उन्होंने केवल इतना ही कहा था, 'तुमलोगोंमें उदारता नहीं है ।' (यू आर नाट ए जेनरस पीपुल) ।

उदार नहीं हैं ? हिंदूजाति तो पशु, कीट, पतंग तककी हत्या नहीं करती, अहिंसाका सदा पालन करती है । फिर हम कैसे, क्योंकर उदार नहीं हैं ?

प्रश्नका उत्तर श्रीश्रीप्रकाशजीके शब्दोंमें सुनिये, 'यकायक सुननेमें यह अनुदारताकी बात हिंदूजातिके लिये बहुत कड़ी मालूम पड़ती है । हम भारतीयोंका विशेषकर हिंदुओंका यही विचार है कि हम बड़े दानी, उदार, सहनशील, सर्वलोकहितैषी हैं । हमारे मठ, मन्दिर, अन्न-क्षेत्र, सदाव्रत, धर्मशाला इत्यादि हमारी दानशीलता

और उदारवृत्तिके सहस्रों वर्षोंसे सूचक रहे हैं। हम भारतीयोंसे बढ़कर कौन उदार हो सकता है ?'

श्रीमती ऐनी बेसेन्टको भी, यह कहते हुए, इस कड़वी दवाकी छोटी-सी घूँट पिलाते हुए अवश्य कष्ट हुआ। वे तो सदासे ही भारतीयोंकी प्रशंसक थीं। वे तो हमारी कुरीतियोंकी भी जैसे समर्थक मालूम पड़ती थीं। लेकिन जिस त्रुटिकी ओर उन्होंने हमारा ध्यान आकृष्ट किया था, वह गुण-ग्राहकताका अभाव था। दूसरोंको प्रोत्साहन देनेमें उदारताकी कमी थी।

वास्तवमें प्रोत्साहनका अभाव हमारे राष्ट्रीय जीवनकी एक बड़ी कमजोरी बन गयी है। हम दूसरेके प्रति दो-चार अच्छे या मीठे शब्द कहनेके बजाय उसे तुच्छताका भ्रम कराना ही पसंद करते हैं। बहुत-से माता-पिता, शिक्षक इत्यादिमें यह खोटी आदत होती है कि बच्चोंकी जरा-सी भूलोंपर अथवा शीघ्र पाठ न समझ सकनेपर चिढ़कर कटु वचनोंका उच्चारण करने लगते हैं। 'तुमसे कुछ न होगा। तुम्हारे दिमागमें भूसा भरा हुआ है। तुमसे जीवन-में कुछ न होगा।' इन संकेतोंका ऐसा कुप्रभाव पड़ता है कि कोमल शिशु अपनी महानताको नहीं पहचान पाता। बालक वैसे ही भावुक होता है। जरा-सी मानसिक ठेससे उसमें तुच्छताकी हानिकर भावना जड़ पकड़ जाती है और उसकी बाढ़ हमेशाके लिये रुक जाती है। आप गम्भीरतासे देखें तो आपको अनेक ऐसे डरे-दुबके भीरु प्रकृतिके अवसनपे बच्चे मिल जायँगे जो इस तुच्छताकी ग्रन्थिसे परेशान अपनी महानता न खोज सके हैं, न पनपा ही सके हैं।

एच० जी० वेल्स नामक अंग्रेजीके एक प्रख्यात लेखक हो गये हैं। बचपनसे ही उन्होंने थोड़ा-थोड़ा लिखना शुरू कर दिया था। वे अपने अपरिपक्व विचारोंसे युक्त लेख पत्र-पत्रिकाओंमें छपनेके लिये भेजा करते थे। बहुत-से नयी उम्रके लड़के इस प्रकार कलम चलाया करते हैं। एक बार अंग्रेजीके एक बड़े सम्पादकके हाथमें युवक एच० जी० वेल्सका एक लेख आया। उसे पढ़नेपर उन्हें इस नये लेखकमें गहराई और वजन मालूम हुआ। उन्होंने उसके लेखको सुधारकर छापा। वेल्सको प्रोत्साहन मिला। सम्पादकने उनसे और लेख माँगा। उन्होंने उसे खुश करनेके लिये और भी श्रम लगाकर एक नया लेख लिखा, वह भी छपा। इसी प्रोत्साहनको पाकर एच० जी० वेल्स अंग्रेजीके अमर लेखक बन गये। कल्पना कीजिये कि यदि यह प्रोत्साहन न मिलता तो वह अन्य लेखकोंकी तरह विस्मृतिके गर्भमें विलीन हो जाते। उचित प्रोत्साहनके अभावमें सैकड़ों कवियोंकी इच्छा, अभिलाषाएँ तथा महत्त्वाकांक्षाएँ सूखकर नष्ट हो जाती हैं।

यदि आप कहें कि ताड़ना या कठोर वचन कहकर डरानेसे लोग सुधरते हैं, तो यह ठीक नहीं है। डराने-धमकानेसे और कुछ भले ही हो जाय, सुधार नहीं होता। दोषीके मनमें आपके प्रति घृणाकी भावना उत्पन्न हो जाती है। विषभरे वाक्य आदमी कभी नहीं भूल पाता। व्यंग्य-बाण हृदयमें बिंधे रहते हैं। इसलिये जिसका सुधार करना हो, उसके सद्गुणोंको सही दिशामें प्रोत्साहित कर उसकी शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक शक्तियोंका मार्ग खोलिये।

वहम, शंका, संदेह

वहम एक अँधेरा है, जो मनुष्यकी चित्त-वृत्तिको भ्रान्त और संकल्प-शक्तिको क्षीण करता है। वहमी आदमी तनिक-तनिक-सी बातोंमें संदेह करता है। भोजन करते समय उसे यह संदेह होता है कि कहीं इसमें विष न मिला हो अथवा अमुक वस्तु खानेसे स्वास्थ्यको हानि पहुँच जायगी। मैंने अमुक वस्तु खा ली इसीलिये स्वास्थ्य नष्ट हो रहा है। दाल मुझे भारी पड़ती है। रात्रिमें दही खाऊँ या नहीं? शंकाशील स्वभावका व्यक्ति यदि किसी यात्रापर जायगा तो सोचेगा कि आज मुहूर्त कौन है? आजका दिन शुभ है अथवा अशुभ? आज चलनेसे पूर्व ज्योतिषी या पण्डितसे पूछ लेना चाहिये। कहीं रेलें न लड़ जायँ, जहाज न डूब जाय, अकस्मात् ताँगा और मोटरमें भिड़ंत न हो जाय, बिजली न गिर पड़े अथवा ट्रेनमें आग न लग जाय आदि। वह अपना रुपया किसीको देता है तो बार-बार गिनता है, अनेक प्रश्न करता है, बैंकोंके स्थायित्व तथा फेल हो जानेकी शंका करता है। यदि मेरा रुपया मारा गया तो क्या करूँगा? अमुक-सा रोग उत्पन्न होते ही उसे वहम होता है कि मैं इस रोगसे मर न जाऊँ। कहीं मुझे कोई घातक रोग तो नहीं है? यह रोग किसीके जादू-टोनेका दुष्परिणाम तो नहीं? इस मकानमें किसी प्रेतात्माका प्रभाव तो नहीं?

शंकाशील स्वभावमें दुखी होनेके लिये तनिक-सा सहारा मिलते ही क्षोभ उत्पन्न हो जाता है। मन गलत दिशामें स्वयं अपने विरोधमें अपना शत्रु बन जाता है। वहमी मनुष्य सदा व्याकुल बना रहता है, वह ठीक और गलतका निर्णय नहीं कर पाता। विवेक ही हमारी वह शक्ति है, जो सत्प्रेरणा देती है और उचित निर्णय करनेमें सहायक होती है। यह संरक्षक सत्ता प्रत्येक मनुष्यके अन्तःकरणमें निवास करती है और उसे ठीक स्थितिमें रखती है। मनुष्य यदि विवेकके प्रकाशमें चलता रहे तो बुद्धि निर्णय करनेमें सफल होती है। दुःख-कष्टोंकी सम्भावना कम होती है। संशय मिट जाते हैं।

शंका, संदेह और वहम मनुष्यकी भारी कमजोरियाँ हैं। बार-बार इन मानसिक बीमारियोंमें फँसे रहनेसे मनुष्यका मन दुर्बल हो जाता है और ये मनुष्यको किसी भी उत्तरदायित्वपूर्ण पदके उपयुक्त नहीं छोड़तीं। वहमी व्यक्ति धीरे-धीरे अविश्वासी, संकोची और कायर बन जाता है। वह तनिक-सी बातसे भयभीत और झूठी कल्पनाओं और मिथ्या भयोंमें लिप्त रहता है।

अत्यधिक शंका करनेका परिणाम नाश होता है। 'संशयात्मा विनश्यति'। अत्यधिक शंकाशील व्यक्ति चिन्तित और निराश रहता है। उसके मनमें नाना विरोधी विकारों—जैसे ग्लानि, लज्जा, अस्थिरता, कायरता, असंतोष, उदासीनता और कुतर्कका संघर्ष चलता रहता है। उसका जीवन अव्यवस्थित और अशान्त हो जाता है। मानसिक व्याकुलता तथा दुर्बलता बढ़ती जाती है और स्मरण-शक्तिका विनाश

जाता

शंका और संदेहसे मुक्तिके साधन हैं दृढ़ता, विवेक और मनोबलमें वृद्धि। जिस कार्यके विषयमें सोचें, उसपर शीघ्र निर्णय करें। हर एक दृष्टिकोणसे देखनेके पश्चात् किसी निर्णयपर जल्दी ही आ जायँ। एक बार निश्चय कर उसीपर डटे रहें। गलती और असफलताकी कल्पना न करें। यदि हो जाय तो कारण जानकर उन्हें दूर करें। व्यर्थ ही मिथ्या भ्रमोंसे लिप्त न रहें। जिन वस्तुओं या परिस्थितियोंसे भयभीत हैं, वे वास्तवमें होनेवाली नहीं हैं। कल्पित भयोंको मनसे सदाके लिये निकाल दीजिये। निडर बनिये।

आप जीवन-संग्राममें प्रविष्ट हों तो मन, वचन और कर्ममें सामञ्जस्य कर यह भावना कीजिये कि आपका भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल होगा और आप अपनी आकाङ्क्षाओंको पूर्णतया प्राप्त करेंगे, आप पूर्ण उन्नतिशील तथा सुखी होंगे, आपको सफलता और विजय प्राप्त होगी, सब प्रकारकी स्फूर्तिदायक सामग्री मिलेगी। सर्वप्रथम इसी भावनाको अपने मनमें स्थिर कीजिये। बार-बार अपने मनको इसी दिशामें अर्थात् अपनी उन्नतिकी ओर सोचनेमें लगाइये। एकान्तमें अपने इन निश्चयोंको और दृढ़ कीजिये।

आप ऐसा सोचिये, मानो आपके मनोरथ क्रमशः आपकी ओर आकृष्ट होकर आपके पास आ रहे हैं। आपकी कठिनाइयाँ सरल होती जा रही हैं। आप क्रमशः शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सिद्धियाँ प्राप्त करते जा रहे हैं।

अपनी आशाओंको निर्बल न होने दीजिये, प्रत्युत उन्हें कार्य-द्वारा और भी दृढ़ बनानेका प्रयत्न कीजिये। कोई बात नहीं, यदि

आपको प्रारम्भमें कुछ प्रतिकूलताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। प्रत्येक महापुरुषके जीवनमें ऐसा ही हुआ है, किंतु वे सबल इच्छाशक्तिसे सदा सफल हुए हैं। आपका मार्ग भी शीघ्र ही निष्कण्टक होनेवाला है। यह निश्चय कर लीजिये।

आशापूर्ण कल्याणमय पवित्र चित्रोंको मन-मन्दिरमें सजाना भी एक कला है। यह सफलताका प्रथम पग है। इसमें पारंगत बनकर कठोर कार्यमें आगे बढ़ते हुए सफलताके मीठे फल चखिये। आप चाहे किसी भी क्षेत्रमें आगे बढ़ें, शंकाओंका परित्याग कर पूर्ण दृढ़तासे अग्रसर हों, आरम्भसे ही अपनी विशेषताएँ दिखाइये और शुभ भविष्यको देखनेकी आदत डालिये। आजसे ही शुरू कीजिये।

एकान्तमें यदि कभी अपने प्रति अविश्वास, शंका या संदेहके कायर विचार मनमें आयें, तो सावधान हो जायँ। इसके विपरीत प्रचुर मात्रामें आशा, उत्साह, वीरता और साहसके मजबूत विचार मनमें आने दीजिये। अपने आपको विवेकबुद्धिकी तराजूपर तौलिये। जिस बातको आपकी विवेक-बुद्धि स्वीकार कर ले, उसीको मनमें रखिये। दोषका तिरस्कार कीजिये। तनिक सोचिये, यदि आप छोटी-छोटी-सी बातोंपर भय या संदेह करते रहेंगे और अपने-आपको नहीं सम्हालेंगे, अपनी गुप्त शक्तियोंका विकास नहीं करेंगे, तो आपका ठौर-ठिकाना कहाँ होगा? कौन आपको पूछेगा? मिथ्या भयों, कल्पित चिन्ताओं तथा अविचारोंको आज ही सदाके लिये मनसे दूर कर दीजिये।

संशय करनेवालेको सुख प्राप्त नहीं हो सकता !

भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है—'संशयात्मा विनश्यति' जो मनुष्य संशय करता रहता है, वह इस लोक या परलोक—कहीं भी सुख प्राप्त नहीं कर सकता। संदेहवृत्ति उसका नाश कर देती है।

मैं अमुक कार्य करूँ अथवा न करूँ? यह संशयवृत्ति हमें उस कार्यको नहीं करने देती। हम सोचते ही रह जाते हैं कि इस कार्यको करें या न करें। अन्ततः वैसे-के-वैसे ही रह जाते हैं।

अर्जुनके सामने कौरवोंकी बड़ी-बड़ी सेनाएँ सजी हुई खड़ी थीं। उनमें उनके कुछ बन्धु-बान्धव तथा दूरके रिश्तेदार भी थे, जिनसे उसका रक्तका सम्बन्ध था। कौरव अन्यायके पथपर चल रहे थे और राज्यमेंसे पाँच गाँव भी पाण्डवोंको नहीं देना चाहते थे। अर्जुन सोचने लगे कि स्वयं अपने परिवारके सदस्योंका वध करनेसे तो भयानक पाप लगेगा। यदि इनका वध नहीं करता हूँ, तो देवी द्रौपदीके अपमानका बदला नहीं उतरता है, न राज्य ही प्राप्त होता है। उलटे ये ही मुझे मार डालेंगे। उनके मनमें एक ओर दयाकी भावना थी, दूसरी ओर कर्तव्य तथा भावी जीवनके विचार। इन दोनोंमें द्वन्द्व मचा हुआ था। दया कहती थी कि ये तेरे भाई हैं, परिजन हैं, इनका वध मत कर। कर्तव्य कहता था, अन्याय और असत्य मार्गपर चलनेवाला कभी बन्धु और परिजन नहीं हो सकता। वह तो शत्रु है। प्राणोंका प्यासा है। इसलिये उसका वध कर देना चाहिये। वे संशयमें फँसे हुए थे कि किस पक्षमें निर्णय करें। इस स्थितिमें भगवान् श्रीकृष्णने उनकी सहायता की और कहा कि वृथा

मोहमें मत पड़ो । अपना कर्तव्य पालन करो । इस संकेतको सुनकर अर्जुनका संशय दूर हो गया और वह युद्ध करनेको तैयार हो गया । जबतक संशयमें लगा रहा, तबतक शक्तियाँ पंगु रहीं ।

यही हाल उस व्यक्तिका होता है जो खड़ा-खड़ा यही सोचता है कि क्या करूँ ? किस ओर बढ़ूँ ? किसपर विश्वास करूँ, किस-पर न करूँ ? कोई मेरी सहायता करेगा अथवा नहीं ? मेरा स्वास्थ्य अमुक कार्यको सम्पन्न करनेके योग्य है अथवा नहीं ? मेरी तैयारी परीक्षाके लिये उपयुक्त है अथवा अनुपयुक्त ? अमुक व्यापारमें मुझे हानि होगी अथवा लाभ ?

जो वास्तवमें कमजोर हैं या जिनकी तैयारी अपर्याप्त है, वे यदि संशय करें तो उचित भी माना जा सकता है, लेकिन खेद तब होता है, जब समर्थ और योग्य व्यक्ति सर्वसम्पन्न होते हुए भी अपनी शक्तियोंके प्रति संशय करते रहते हैं और उसके कुफल भोगते रहते हैं । संशयवृत्तिका तात्पर्य है स्वयं अपनी शक्तियोंके प्रति अविश्वास । जीवनके आनन्द और उन्नतिके लिये इस प्रवृत्तिको छोड़ दीजिये ।

एक बार रात्रिमें एक व्यक्तिको लघुशंका हुई । भयंकर जाड़ा था । उसकी पत्नीने सफेदीके तसलेको ला दिया । पतिने उसीमें मूत्र कर दिया । सुबह उठे तो वह मूत्र सफेदीमें मिला हुआ दिखायी दिया । पति संशयसे भर गये । जरूर मेरे मूत्रमें कोई विकार है । यह सफेद-सफेद क्या तत्त्व मूत्रमार्गसे बहने लगा है ? मुझे कोई भयंकर मूत्र-रोग हो गया है । वैद्यके पास गये । उन्होंने बिना पूर्ण जाँच-पड़तालके कह दिया कि तुम्हारे मूत्रसे शक्कर आने लगी है ।

तुम्हें डाइब्रिटीज रोग हो गया है। सम्भव है और भी कोई घृणित रोग हो। यह सुनकर वह व्यक्ति रोगी बन गया। निरन्तर इसी भ्रम—संदेहमें रहता कि मुझे भयंकर रोग हो गया है और मैं जल्दी ही मृत्युका ग्रास बन जाऊँगा। वैद्यजी दवाइयाँ देते और उससे रुपया लेते रहे। एक दिन संयोगसे उनका उतरा हुआ चेहरा देखकर मैंने ही पूछा, 'कहो मोड्डूलालजी, क्या बात है ?' उन्होंने उत्तर दिया, 'डाइबिटीज हो गयी है। इलाज चल रहा है।' और गहराईमें गये, तो उन्होंने अपने मूत्रमें सफेदी आनेकी बात कही।

'क्या आपने मूत्रकी वैज्ञानिक परीक्षा करायी है ?'

'नहीं, डाक्टरके पास तो नहीं गया।'

'तो पहले शफाखानेमें जाकर मूत्रकी परीक्षा जरूर कराओ। फिर इलाजकी सोचो। इस इलाजसे काम नहीं चलेगा।'

दूसरे दिन वे डाक्टरके पास शीशीमें मूत्र ले गये। वैज्ञानिक परीक्षा हुई, तो मालूम हुआ शक्कर नहीं आती है। और भी कोई खराबी नहीं है।

यह नतीजा देखकर वे फिर उसी रातके विषयमें सोचने लगे। उनकी पत्नीको स्मरण हुआ कि उन दिनों दिवालीके सिलसिलेमें उनके यहाँ पुताईका काम चल रहा था। कलीसे सना हुआ तसला पास ही अंदर पड़ा था। उसीमें पेशाब कराया गया था। इसलिये वह सफेदी पुतनेवाली कलईकी थी। गाँठ खुल गयी। संशय दूर हो गया। उसी दिनसे मोड्डूलालजी स्वस्थ होने लगे और कुछ दिनों पश्चात् बिल्कुल स्वस्थ हो गये। संशयका पर्दा छाते ही मनुष्य

हतप्रभ हो जाता है। उसका विवेक पंगु हो जाता है। दूर होनेपर फिर प्रभावान् हो उठता है।

अपने अध्यापक-जीवनकी एक घटना मेरे स्मृति-पटलपर सजग हो आयी है। मानिकलाल इंटरके विद्यार्थी थे, परिश्रमी और साधारणतया बुद्धिमान्!

संयोगसे वार्षिक परीक्षामें तर्कशास्त्र (Logic) में फेल हो गये। फेल होते ही उनके मनमें कुछ ऐसा संशय बैठा कि जब कभी तर्कशास्त्रका क्लास होता, उसमें मन-ही-मन डरते रहते। यह नहीं कि पढ़ते न हों। पढ़ते वे बहुत थे, पर मनमें यह संशयवृत्ति रखकर कि यह विषय मुझे कम आता है, मैं कहीं आगे भी फेल न हो जाऊँ।

दूसरे वर्ष वार्षिक परीक्षा फिर आयी। मानिकलालकी तैयारी बहुत थी। वर्षभर दिल लगाकर पढ़ा था और विषयोंके पर्चे अच्छे हुए। दूसरे दिन तर्कशास्त्रकी परीक्षा थी। आजसे ही उनके मनमें धुकधुकी थी, मनका संशय उभर रहा था। मैं सुपरिंटेंडेंटके रूपमें परीक्षा दिलाने साथ गया था। रातमें तीन बजे उठता हूँ, तो क्या देखता हूँ कि टट्टीकी बिजली जल रही है, इस वक्त कौन है जो टट्टीमें है। देरतक देखता रहा, पर कोई न निकला। आवाज दी, तो उत्तर नदारद। साहस कर अंदर झाँका, तो क्या देखता हूँ कि मानिकलाल डरे-सहमे-से अंदर तर्कशास्त्र पढ़ रहे हैं।

'तुम्हारी तैयारी बहुत काफी है।' मैंने कहा।

'मुझे तो कुछ भी याद नहीं। क्या होगा?'

'घबराओ नहीं। तुम निश्चय ही पास होओगे।'

समझा-बुझाकर किसी प्रकार उस रात उन्हें उस समय तो सुला दिया। दूसरे दिन परीक्षा हुई। आश्चर्य ! महान् आश्चर्य !! मानिकलाल गिरे मुँह निढाल चेहरा और रोनी सूरत बनाये हुए हमारे पास आये और रोकर कहने लगे 'फेल हो गये।'

मैंने कहा, 'नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। तुम्हारी बड़ी पक्की तैयारी थी। फेल नहीं हो सकते।'

और जब नतीजा आया, तो वास्तवमें मानिकलाल फेल थे। बादमें मालूम हुआ कि तर्कशास्त्रमें ही वे फेल हुए थे। उनका अपनी शक्तियोंके प्रति संशय ही उन्हें ले डूबा था। विषयका ज्ञान उन्हें काफी था।

फिर तो तीन सालतक निरन्तर वे तर्कशास्त्रमें ही फेल होते रहे और अन्ततः निराश होकर उन्होंने पढ़ना ही छोड़ दिया। संशय ही उनके मानसिक पतनका प्रधान कारण था। इसी शत्रुके कारण वे पतनकी चरम सीमापर पहुँच चुके थे।

यह ठीक है कि कुछ विषय कठिन होते हैं और प्रायः उनमें उत्तीर्ण होनेके लिये बहुत परिश्रम करना पड़ता है। लेकिन इसका यह मतलब बिल्कुल नहीं है कि आप अपनी शक्तियोंके प्रति अविश्वासी बन जायँ और संचित शक्तियोंको ही हाथसे निकाल दें। सदा संशय और अविश्वासके मोहजालमें फँसा हुआ व्यक्ति अपने लिये भी कुछ नहीं कर सकता तो दूसरोंके लिये क्या करेगा ?

कभी-कभी व्यक्तिमें पूरी शक्तियाँ होती हैं। फिर भी वह संशय ही करता रहता है। हमें अपनी बहिनकी एम्० ए० की परीक्षाकी स्मृति आ रही है। उन्होंने काफी तैयारी की थी। रात-दिन पढ़ती

रहती थीं। जब परीक्षा आयी, तो कहने लगीं, मेरी तैयारी पूरी नहीं है। शायद पास भी नहीं होऊँगी। परीक्षामें न जानेके बहाने किये। कहने लगीं, हमें बुखार है। थर्मामीटरसे टेम्परेचर लिया, जो वह न निकला। फिर कहा, पेटमें दर्द है। सर दर्द कर रहा है। हम समझ गये कि संशयवृत्ति ही खराबी कर रही है। वही बात आगे चलकर सच भी निकली।

'तुम केवल परीक्षा-भवनमें चलकर पर्चा ले आना। फीस तो वापस मिलेगी नहीं।'

'ताँगा किराये कर उन्हें ले गया। उनका मन धुकपुक कर रहा था। परीक्षा-भवनसे कोई भी परीक्षार्थी आध घंटे पहले नहीं निकल सकता अतः जब वे बैठ गयीं तो लिखना पड़ा। याद बहुत था आध घंटेमें जो प्रश्न किया, बहुत ही अच्छा हुआ। साहस आया। कलम तेजीसे चलने लगी। वे तीन घंटे सिर ऊपर उठाये लिखती रहीं। जब परीक्षा-भवनसे बाहर निकलीं, तो उन्हें ऐसा लगा कि पर्चा बहुत संतोषजनक हुआ है।

फिर तो उन्होंने पूरी परीक्षा दी। जब नतीजा आया, तो द्वितीय श्रेणीमें उत्तीर्ण हुईं।

यदि वे संशयको न पछाड़तीं, तो संशय उन्हें तनिक-सी देरमें तोड़-मरोड़कर रख देता। संशयका माया-जाल तोड़नेसे ही सत्यका प्रकाश होता है।

संशय एक प्रकारका अँधेरा है, जो हमारे मन और आत्मापर छा जाता है और कुछ देरके लिये नेत्रोंको झूठे मोहमें बाँध देता है।

कहा है—

'इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि' (यजु० १ । ८)

अर्थात् असत्यको त्यागकर जो सत्य विचार है, उसीको ग्रहण करना चाहिये ।

यदि आप हर किसीपर शक या संदेह करते रहते हैं, तो भी संशयके मायाजालमें अटके हुए हैं । हो सकता है कि किसी विशेष व्यक्तिने आपको धोखा दिया हो या आपसे विश्वासघात किया हो, किंतु प्रत्येकको अविश्वासकी दृष्टिसे मत देखिये । संसारको अपना विरोधी मत समझिये ।

कुविचारों, जीर्ण-शीर्ण रूढ़ियों, मनके कुसंस्कार और अज्ञानके बन्धनोंसे स्वयं मुक्त हो जाइये और दूसरोंको भी मुक्त कर दीजिये ।

'स्वर्गतो धिया दिवम्' (यजुर्वेद) सद्बुद्धिसे ही स्वर्ग प्राप्त होता है । जिसकी बुद्धि शुद्ध नहीं हुई है, उसे सुख-शान्ति नहीं मिल सकती ।

जिस प्रकार आप दूसरोंके प्रति संदेह रखते हैं, वैसे ही स्वयं अपने विषयमें संदेह करते रहते हैं । अपने प्रति अविश्वास करना अपनी उत्पादक शक्तियोंको पंगु बना लेना है । इससे जीवन अस्थिर और निश्चय संदिग्ध रहता है । स्मरण रखिये, संशय चाहे किसी भी रूपमें क्यों न हो, मनुष्यका जीवन नष्ट कर देता है ।

'संशयात्मा विनश्यति'

मानव-जीवन कर्मक्षेत्र ही है

कर्मक्षेत्रं हि मानुष्यम्। (व्यास०)

मनुष्यका अधिकांश जीवन परिश्रमका जीवन है। जैसे बिना भोजन तथा वायुके जीवन असम्भव है, बिना श्रमके जीवन नीरस और शिथिल है। प्रत्येक मानव-विशेषणसे विभूषित होनेवाले व्यक्तिमें 'परिश्रम' वह दिव्य गुण है जिसके द्वारा वह संसारमें विकसित होता है; अपने शरीर, मस्तिष्क तथा आत्माके गुणोंकी वृद्धि करता है। परिश्रम हर प्रकार, हर स्थिति तथा वर्गके व्यक्तिके लिये एक आवश्यक तत्त्व है।

जब संसारके सब जीव श्रमद्वारा शक्तिका अर्जन कर रहे हैं, तो आप कैसे निष्क्रिय रह सकते हैं? बिना श्रमके भला क्योंकर अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा, सम्मान तथा उत्तरदायित्वकी रक्षा कर सकते हैं?

परिश्रम सर्वश्रेष्ठ शिक्षक है। इसके द्वारा हमारा सम्बन्ध अन्य व्यक्तियों तथा वस्तुओंसे होता है। यदि हम जीवनचरित्रोंका अध्ययन करें, तो हमें विदित होगा कि सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति प्रायः कठिन श्रम करनेके अभ्यस्त रहे हैं, अपने आविष्कारोंमें सतत लगनशील और उत्तरदायित्वोंमें वीर और दृढ़ रहे हैं। संसारमें आप जिन कार्योंसे चमत्कृत होते हैं, वे मानवके हाथों या मस्तिष्कके श्रमके अद्भुत चमत्कार हैं। उनमें श्रमका सौन्दर्य और स्थायित्व है। श्रम प्रगतिका चिह्न है।

बफून कहा करते थे, 'प्रतिभाशाली व्यक्तियोंकी प्रतिभाका मूल मन्त्र उनके धैर्यमें है ।' वे किसी विरोधसे भी पस्तहिम्मत न होते थे, न थकते ही थे । वे प्रत्येक मिनटका उचित उपयोग करते थे । अपेलीज प्रत्येक दिन कुछ-न-कुछ अवश्य लिखते थे । न्यूटन निरन्तर धैर्य और सतर्कतासे प्रकृतिका निरीक्षण किया करते थे । वाट कहा करते थे, 'हमें यह जानना चाहिये कि किस बातसे काम चलेगा, किससे नहीं ।' वास्तवमें जो व्यक्ति धैर्यके साथ निरीक्षण करनेकी बुद्धि विकसित कर लेता है, वह अच्छा श्रम कर पाता है । वह सत्यता और सही रूपमें प्रत्येक तथ्यको देखता है । एक बार न्यूटनने कहा था कि 'उन्होंने जिस गुणके विकासमें सबसे अधिक ध्यान दिया था, वह यह था कि वे किसी समस्याको अपने मानव-चक्षुओंके सम्मुख बहुत देरतक रख सकते थे और जीवनके अनुभवों-से उसकी सत्यता मालूम करते थे, यहाँतक कि उन्हें समस्याका हल प्राप्त हो जाता था ।'

आपके कार्यमें अनेक विघ्न-बाधाएँ, प्रतिरोध एवं प्रतिकूलताएँ पड़ेंगी, लेकिन ये कठिनाइयाँ वास्तवमें आपकी सहायक शक्तियाँ हैं, जो पग-पगपर आपकी शक्तियोंकी परीक्षा करती हैं और आपको दृढ़तर बनाती हैं । वे आपको अनुभव देती हैं और अध्यवसायी बनाती हैं ।

हरकूलीज़ नायक यूनानी वीरका सिर शेरकी खालसे ढका होता था और शेरके पंजे उसके गलेके नीचे चुभते रहते थे, जिसका तात्पर्य यह था कि जब कठिनाइयोंपर विजय प्राप्त हो जाती है, तो वे हमारी सहायक शक्तियाँ बन जाती हैं ।

घटनाएँ परिस्थितियोंसे सम्बन्धित रहती हैं। उनका फल हमारे चरित्रपर निर्भर रहता है। आप किसी घटनाके प्रति वैसी प्रतिक्रिया दिखाते हैं, यही कसौटी है। एक प्रतिभाशाली व्यक्तिके लिये असफलता सफलताका सोपान हो सकता है, जब कि एक कमजोर व्यक्तिके लिये वही एक ऐसा खन्दक बन सकता है, जिसमेंसे निकलना असम्भव हो। सब कुछ हमारी इच्छाशक्ति और संकल्पपर निर्भर है। जहाँ चाह है वहाँ राह अवश्य निकल आती है।

जिस वस्तु या जिन-जिन वस्तुओंको आप मूल्यवान् समझते हैं, उसका मूल्य श्रम ही है। श्रमके बिना उसकी प्राप्ति असम्भव थी। महान् पुरुषोंकी सफलताका गुण निरन्तर अनवरत श्रम है। उन्होंने जो कार्य हाथमें पकड़ा, वे लगातार उसीको आगे लेकर बढ़ते रहे हैं। हम यह मानते हैं कि उनमें जन्मजात प्रतिभा, बुद्धि तीव्रता रही होगी, किंतु उनमें जिस गुणका आधिक्य था; वह परिश्रम था। श्रमको सजा मत मानिये, प्रत्युत आशा और उत्साहका सम्मिश्रण कीजिये।

सेन्ट अगस्टाइन कहा करते थे, 'आलस्यमें बिना कुछ किये निष्क्रिय पड़े रहना सबसे कठिन कार्य है। वह व्यक्ति धन्य है जो अपना जीवन और शक्तियाँ उत्तम कार्योंकी सिद्धिमें लगाता है और अपनी योजनाएँ पर्याप्त सोच-समझकर निर्मित करता है। न केवल बड़ी योजनाओंमें, छोटी तथा मामूली योजनाओं तकमें, श्रमकी अतीव आवश्यकता पड़ती है। आलस्यमें सम्पत्ति अर्जित करनेमें लगे हुए समयसे आधे समयमें ही नष्ट हो जाती है।'

एक संस्कृत कहावतका सार है—'लक्ष्मी उस नर-शिरोमणिके साथ रहती है, जो सर्वाधिक श्रम करता है। वे व्यक्ति दुर्बल हैं, जो भाग्यको ही निर्माण करनेवाली शक्ति माने बैठे हैं।'

इस देशके नवयुवकोंका सबसे बड़ा शत्रु आलस्य है। बेकारोंकी संख्या बढ़ानेवाले कुछ व्यक्ति तो वास्तवमें काम न मिलनेसे परेशान हैं, किंतु अधिकांशमें उनमें ऐसी संख्यावाले अधिक हैं, जो आलसी, बेकार, निठल्ले और मुफ्तमें सब कुछ चाहनेवाले हैं। जो पेशे अधिक परिश्रम चाहते हैं, उनमें वे दिलचस्पी नहीं लेते। उन नौकरियोंकी ओर दौड़ते हैं जिनमें कम मेहनत करनी पड़ती है। काम न करके, वे आलस्यमें अपनी शक्तियोंका और भी क्षय कर रहे हैं। जिन शक्तियोंका उपयोग नहीं किया जाता, वे अन्ततः नष्ट हो जाती हैं। शारीरिक और मानसिक शक्तियोंके प्रति आलस्य-भावना अनर्थकारी है। आलस्यने उन्हें पतित और कमजोर बना दिया है। कुछ दिन तो मनुष्यको आलस्यमें कुछ आकर्षण प्रतीत होता है; किंतु बादमें खाली बैठे ठाले रहना भी दुःसह हो जाता है। आलस्यमें आनन्द मनाने, प्रसन्न रहनेकी शक्ति मारी जाती है। जिस व्यक्तिके जीवनमें सदा छुट्टी ही रहती हो, वह छुट्टीके आनन्दको क्या समझ सकता है। बिस्तरपर पड़े रहनेवालोंने कब क्या किया है? उन्हें अपने सोनेसे ही कब फुरसत मिली है? बड़े-बड़े अवसर निकले चले जाते हैं और वे सोये पड़े रहते हैं। जिसे हम आलस्य कहते हैं, वह हमारी शक्तियोंके पंगु होनेकी एक निशानी है।

आलस्य जीवित व्यक्तिकी समाधिकी तरह है। आलसी व्यक्ति न अपनी उन्नति, सेवा या प्रगति कर सकता है, न समाज, देश अथवा परमेश्वरके ही काम आ सकता है। वह तो चूहे, खटमल या मक्खी-मच्छरोंकी तरह व्यर्थ ही इस सृष्टिके अन्नको नष्ट करता है। जब उसके मरनेका समय आता है, तो वह व्यर्थजीवन कीट-पतंगों या पशु-पक्षियोंकी तरह नष्ट हो जाता है। ऐसे लोग जो कुछ करते हैं वह बंजर भूमिकी तरह व्यर्थ है। आलस्य समयकी बरबादी है।

पुराने यूनानी लोग कार्यको एक सामाजिक आवश्यकता समझते थे। सोलन कहते हैं कि जो व्यक्ति काम नहीं करता था अथवा उससे जी चुराता था, वह कोर्टके सुपुर्द कर दिया जाता था।' एक दूसरे यूनानी वेत्ताका कथन है कि 'जो व्यक्ति कामसे जी चुराता है, वह चोर-डाकू है। श्रम करनेवाले व्यक्ति अपराधी नहीं होते। उनकी वृत्तियाँ शुभ कार्योंमें लगती हैं। वे ऊँचाईकी ओर चढ़ते हैं। आलसी व्यक्तिका दिमाग झगड़ोंकी जड़ है। उसमें रह-रहकर शरारत और खुराफातें उठा करती हैं। खाली बेकार बैठकर हम प्रमाद-पापकी ओर प्रवृत्त होते हैं। जो व्यक्ति अपनेको कार्यसे मुक्त समझता है वह दयाका पात्र है, साथ ही सजाका हकदार है। यदि आप अशिक्षित हैं तो थोड़ेसे श्रमसे शिक्षित बन सकते हैं, यदि पिछड़े हुए हैं तो मेहनतसे भागकर आगे निकल सकते हैं, यदि दुर्बल हैं तो सशक्त और साहसी हृष्ट-पुष्ट बन सकते हैं, अपनी सब निर्बलताओंको दूर भगा सकते हैं और प्रतिष्ठाका जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

प्रलोभन आलस्यकी शक्लमें आता है और हमें कर्ममार्गसे च्युत

करता है। 'तनिक विश्राम कर लें'—ऐसा विचार मनमें आते ही, वह अपनी शक्तियोंको समेट लेता है। इस 'तनिक' से उसकी शक्तियोंको पूरा काम नहीं मिल पाता। फलतः वह अपनी सृजनात्मक शक्तियाँ खो बैठता है।

अरस्तूने कहा है—'आनन्द एक शक्ति है। दैनिक पर्यवेक्षणसे आपको विदित होगा कि आनन्द और स्वास्थ्यकी आलस्यसे पुरानी शत्रुता है। अनेक व्यक्तियोंके जीवनमें असंख्य अवसर आते हैं, उनकी प्रसन्नताकी प्राप्तिके बहुत-से साधन हो सकते हैं। समयका सदुपयोग कर ये व्यक्ति कहींके कहीं पहुँच सकते हैं। फालतू वक्तमें अपनी गुप्त शक्तियोंको बढ़ाकर ये अपने आपका, आमूल परिवर्तन कर सकते हैं और इन्हीं आलसियोंमें ऐसे अनेक व्यक्ति निकल सकते हैं जो शानदार फल प्राप्त कर सकते हैं, पर शोक! ये अपनी मोह-निद्रामें सोये पड़े रहते हैं। इन सदाके लिये अपने हाथसे भागते हुए मिनटों, घंटों, दिनों और सप्ताहोंको मजबूतीसे नहीं पकड़ते। इन्हें व्यर्थ मत क्षय होने दीजिये वरं अपने कार्यसे स्थायी बनाइये।'

यौवनका समय स्वर्णयुग है। जीवनके ये बहुमूल्य क्षण मनुष्यको किसी विशेष दिशामें मोड़नेके लिये समर्थ हैं। उस समय शक्तियाँ अपने पूरे उभारपर रहती हैं और उनसे खूब परिश्रम लिया जा सकता है। प्रौढ़ हो जानेपर ये शक्तियाँ चाँदीकी तरह हैं। चाँदीके जिस प्रकार अनेक उच्च उपयोग हो सकते हैं उसी प्रकार प्रौढ़ जीवनके समयसे भी प्रचुर लाभ उठाया जा सकता है। वृद्धावस्थाका युग शीशेकी तरह है, जिसके उपयोग हैं पर बड़े नहीं।

फिर भी अपनी शक्ति और सामर्थ्यके अनुसार उसका भी कुछ-न-कुछ उपयोग हो ही सकता है ।

यदि कार्य करें, लेकिन देरसे झिकाकर दुःख देकर करें, तो क्या लाभ ? कार्य तो वही उत्तम है, जो उचित समयपर समयानुकूल ही कर दिया जाय—जब समय निकल गया, तो उसे करनेसे न लाभ हो सकता है न प्रशंसा ही प्राप्त हो सकती है । नियमपूर्वक ठीक समयपर कार्य पूर्ण कर देना परमेश्वरका एक आशीर्वाद है । टालने या देरसे करनेके कारण अनेक बड़े व्यक्तियोंका पतन हुआ है ।

कुछ व्यक्तियोंके असफल होनेका कारण क्रम तथा व्यवस्थाकी कमी है । वे काम खूब करते हैं किंतु सब अव्यवस्थित, टूटा-फूटा, बेतरतीब, विशृङ्खल । जबतक ठीक योजना न बनायी जाय और अपने कार्यको क्रमानुसार पूर्ण न किया जाय; तबतक स्थायी लाभ प्राप्त नहीं होता, प्रस्तुत कार्य अधूरा-सा ही रह जाता है ।

क्रम तथा सुव्यवस्था सर्वत्र लाभदायक हैं । घर हो या आफिस, दूकान या और कोई अस्पताल, सुव्यवस्था अमित फल देनेवाली है । व्यवस्थित व्यक्ति थोड़ेसे श्रमसे बहुत काम निकाल सकता है, थोड़ी वस्तुओंसे बहुत-सा लाभ प्राप्त कर सकता है तथा रुपया भी बचा सकता है । आपके घर, दूकान या आफिसकी प्रत्येक वस्तुका एक नियत स्थान होना चाहिये । प्रत्येक सदस्य वस्तुको उसी नियत स्थानपर रक्खे, इधर-उधर न फैलाये । जो वस्तु जहाँसे उठायी जाय वहीं रक्खी जाय, जो पुस्तक आलमारीके जिस स्थानपर रक्खी है, वहीं रक्खी जाय । घरमें आपका चाकू, दियासलाई, लिखने-पढ़नेकी वस्तुएँ,

कपड़े, कुर्सी, मेज, कंघा, शीशा इत्यादिका जो स्थान नियत हो चुका है वहीं पहुँचना चाहिये। लिखने-पढ़ने, हिसाब-किताब, ऋण या मिलने-जुलनेमें भी समय और क्रमका ध्यान रक्खें। पहले सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य हाथमें लें, फिर कम महत्त्वपूर्ण, फिर अन्य साधारण काम। प्रायः लोग मामूली कामोंको पहले हाथमें ले लेते हैं, जब कि महत्त्वपूर्ण कार्य यों ही पड़े रह जाते हैं।

काममें समयकी पाबंदीका सतर्कतासे ध्यान रक्खें। बिना समय-की पाबंदीके मनुष्य चिन्तित रहता है तथा कामको पर्वतकी तरह भारी और दुरूह कष्टसाध्य मानता है। नियत समयपर कार्य करने-का गुण सर्वत्र प्रशंसित होता है। ऐसे व्यक्तिपर सब विश्वास करते हैं और जिम्मेदारीके कार्य प्रदान करते हैं।

जीवन एक प्रगति है। यह उन्नति और श्रेष्ठताकी ओर बढ़ना है। हम आशामय प्रयत्नोंसे निरन्तर आगे बढ़ते चलते हैं। प्रायः कठिनाई सत्य-प्राप्तिमें एक गुरुका कार्य करती है। विरोध हमारी गुप्त शक्तियोंको जाग्रत् करता और आगे बढ़नेकी प्रेरणा प्रदान करता है। अधिक कठिनाइयाँ पड़नेपर हमारा आत्म-विश्वास बढ़ता है, विनम्रता आती है और सहिष्णुताकी शक्तियाँ बढ़ जाती हैं।

आपका जीवन बंद पानीकी तरह एक स्थानपर बँधा हुआ सड़ता-गलता नहीं होना चाहिये। यदि आप उसे आगे नहीं बढ़ायेंगे, जीवनमें प्रवाह नहीं लायेंगे, तो वह पीछे (पतन, आलस्य और मृत्यु) की ओर चलने लगेगा। जहाँ आपको कठिनाइयाँ मिलें उनकी परवा न करते हुए आपको आगे बढ़ जाना चाहिये। सर फिलिप

सिडनीका मूल मन्त्र हमें प्रेरणा देनेवाला है—'मैं सफलता और कार्यसिद्धिका मार्ग मालूम कर लूँगा। यदि न मिला, तो स्वयं निर्माण कर लूँगा।' यदि आपको अपना मार्ग नहीं मिलता, तो अपनी मौलिकता, बुद्धि तथा अध्यवसायसे उसे मालूम क्यों नहीं कर लेते?

आराम तथा विलासमें रहनेसे मनुष्य जीवनभर बच्चा ही बना रहता है। कठिनाइयों और विरोधोंमें रहनेसे उसमें पुरुषोचित शक्ति और सामर्थ्यकी वृद्धि होती है।

बड़े बननेवाले व्यक्तियोंके जीवनका अध्ययन करनेसे विदित होता है कि उनमें कुछ अपूर्णताएँ, त्रुटियाँ या प्रकृतिकी ओरसे कुछ कमजोरियाँ थीं। इन कमजोरियोंको दूर करनेकी प्रतिक्रियाने उन्हें ऊँचा उठाकर आसमानतक चढ़ाया था। चरित्रकी दृढ़ता या कमजोरीकी सच्ची परीक्षा तभी होती है, जब बाह्य परिस्थितियोंमें कोई असाधारण परिवर्तन होता है या कोई विरोध उत्पन्न होता है। विरोधसे मनुष्यको अपनी सब शक्तियोंके सामूहिक बलपर अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षा करनी होती है। अनेक छिपी हुई गुप्त शक्तियोंका विकास होता है। कठिनता एक भारी हल है। उसे चलानेके लिये लोहेसे सख्त हाथोंकी आवश्यकता है।

आपका श्रम चाहे शारीरिक हो अथवा मानसिक, आपको चाहिये कि आप पूरी शक्ति और एकाग्रतासे उसमें संलग्न हो जायँ, तन्मयतापूर्वक उसे सम्पन्न करते रहें और जबतक उसे पूरा न कर डालें कदापि न छोड़ें। अपने पसीनेकी आयसे आपको समुन्नत होना चाहिये।

धनकी त्रुटियाँ बताते हुए प्रायः कहा जाता है कि इससे हमारी नैतिकताको धक्का लगता है; सहानुभूति, दया, करुणाका लोप होने लगता है, लेकिन गरीबी इससे भी बुरी है, निन्द्य है। गरीबीसे मनुष्यका साहस और उत्साह मारा जाता है, सच्चा और प्रतिष्ठित होना कठिन हो जाता है। अतः श्रमद्वारा अपनी गरीबीको दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

श्रमके साथ विश्राम और निर्दोष मनोरञ्जनका भी उचित सम्मिश्रण होना अपेक्षित है। आप परिश्रम करें और थकनेपर पर्याप्त विश्राम करें, मनोरञ्जनद्वारा मनका भार दूर करें, जिससे नया उत्साह और शक्ति प्राप्त हो सके।

अपने कार्यमें निरन्तर संलग्न रहना, मन उचाट न कर उसमें समृद्धिशील बननेका प्रयत्न करते रहना मनुष्यके लिये सबसे स्वस्थ शिक्षा है। जो अपनी शक्तियोंका सुचारु उपयोग श्रममें करता चलता है, वह कठिन कार्योंमें भी सफलता प्राप्त करता जाता है। समृद्धि उसके साथ चलती है।

श्रमशील व्यक्ति तड़के उठता है और अपने कामपर यथासमय जाता है। वह एक सेकंड भी व्यर्थ नष्ट नहीं करता। वह सतर्क और जागरूक बना रहता है, अवसरोंको व्यर्थ नहीं जाने देता। आपने पर्याप्त समझ-बूझकर अपना जो भी कार्यक्रम, उद्देश्य या मूल काम निश्चित किया हो, उसमें दृढ़तासे लग जाइये, अपने निश्चयोंके प्रति सच्चे रहिये। ध्यान रखिये कि आलस्य, तन्द्रा, विलास या बीमारी-की केंचुली आपके इर्दगिर्द चिपटी न रह जाय।

सक्रिय जीवन व्यतीत कीजिये

जो शक्ति पृथ्वीको धारण किये हुए है वह क्रियाशीलता है। यदि पृथ्वी अपनी धुरीपर न घूमे तो वह गिर पड़ेगी। इसी प्रकार यदि हम अपनी क्रियाशीलता, परिश्रमशीलता त्याग दें, तो जीवन-संग्राममें अवरोध उत्पन्न हो जायगा। क्रियाशीलता ही हमारे जीवन-का सब कुछ है।

रुपयेके परिवर्तनमें हम सब कुछ पा जाते हैं। पर रुपया वास्तवमें क्या है? यह है हमारा संचित श्रम। श्रमको स्थूलरूप प्रदान कर रुपया, जमीन, जायदाद बना लेते हैं। इसी संचित श्रमसे हम दूसरोंका विभिन्न प्रकारका श्रम खरीदा करते हैं। यदि यह श्रमके विनिमयकी प्रथा रुक जाय, तो संसारका समस्त कार्य रुक सकता है। लेकिन प्रत्येक व्यक्ति अपने शरीर, मन, बुद्धिके अनुसार समाजका

कुछ-न-कुछ कार्य करता है। किसीका श्रम शारीरिक है तो किसी-का मानसिक रहता है। इसी श्रमके आदान-प्रदानसे समाजका कल्याण होता है।

क्रियाशीलता प्रकृतिमें है। हवा और जलतक बिना क्रिया सड़ने-गलने लगेंगे। चाकूको जितना पड़ा रक्खेंगे, निष्क्रिय रक्खेंगे, जंगसे नष्ट हो जायगा। उसीको यदि प्रयोगमें लायेंगे, तो तेज, चमकदार और सुन्दर बन जायगा। ऐसा ही मानव-जीवन है। यदि हम अपनी शक्तियोंका सदुपयोग करते रहेंगे, तो मनके दुर्विकार, कूड़ा-करकट, मैल, दुर्गन्ध, सड़न, अव्यवस्था, आलस्य और दारिद्र्य नष्ट हो जायँगे। क्रियाशील रहनेसे हमारी चैतन्यता, जागरूकता, शुचिता और सात्त्विकताकी वृद्धि होती है। मनुष्य अंदर और बाहरसे स्वच्छ एवं प्रसन्न रहता है।

समयरूपी तालेमें परिश्रमरूपी ताली डालनेसे इस पृथ्वीके सब सुख-सम्पत्ति प्राप्त होते हैं। परिश्रमशील व्यक्ति सब कुछ कर सकता है—एक चौपाईका टुकड़ा देखिये—

सकल पदारथ हैं जग माहीं। कर्महीन नर पावत नाहीं॥

इसमें लेखकने ज्ञान और अनुभवका अखण्ड भण्डार भर दिया है। भगवान्ने मनुष्यको संसारमें भेजते समय यह क्रम रक्खा है कि कर्मनिष्ठा और परिश्रमशीलतासे ही सब सम्पदाएँ प्राप्त हों। विश्व कर्मप्रधान है। जो जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल चखता है! तरह-तरहके फल लोगोंको मिल रहे हैं, किसीकी आरती

उतर रही है, जयध्वनि बोली जा रही है यानी प्रतिष्ठा दी जा रही है, प्रशंसा की जा रही है। ये वे व्यक्ति हैं जिन्होंने श्रमद्वारा संसारके समयका उपयोग किया है। श्रमकी पूँजीसे जो चाहे खरीद लीजिये।

लोग अभावग्रस्त क्यों हैं? इसीलिये कि उन्होंने पूरी परिश्रम-शीलतासे काम नहीं किया है। पूरी निष्ठा नहीं लगायी है। भगवान् उसीका फल देंगे, जो आपने किया है। उन्होंने श्रमके ऊपर सब व्यवस्था रक्खी है। वे परम न्यायकारी हैं। वे देखते हैं कि कौन सही-सही परिश्रम कर रहा है। सही परिश्रमकी कसौटीपर ही हमें सांसारिक मान-प्रतिष्ठा, प्रसिद्धि प्राप्त होती है।

समय और श्रमकी उपयोगिता ही मुख्य है। जो कामसे जी चुराते हैं, वे मरते हैं, गरीब रहते हैं और पग-पगपर अपमानित होते हैं। जो फालतू आलसी निकम्मे शैतान हैं, वे लड़ेंगे, झगड़ेंगे, जुआ खेलेंगे; परेशान करेंगे। ये शैतान आपके दिमागपर अधिकार न कर लें, इसके लिये सावधान रहें। मनके शैतानको काम दीजिये। शारीरिक श्रमकी भी उपेक्षा मत कीजिये। श्रम और सम्पत्तिमें कोई अन्तर नहीं है। किसान पृथ्वीकी छाती चीरकर भोजन उत्पन्न करता है; मल्लाह नदीकी छाती चीरकर चलता है। जय, प्रशंसा, मान-प्रतिष्ठा, रुपया-पैसा, जायदाद—ये सब श्रमके पुरस्कार ही हैं।

महाभारतमें एक स्थानपर कहा गया है कि दोनों भुजाओंका कमाया हुआ अन्न हमारे पेटको मिलना चाहिये, बुद्धिकी कमाई

हमारे मनको मिलनी चाहिये । बुद्धिसे लोग अधिक कमाकर प्रायः फालतू अपव्यय करते हैं । शारीरिक श्रमसे कम पैसा मिलता है, लेकिन उसके बिगड़नेकी भी कम गुंजाइश है । बुद्धिकी कमाई धर्म, यज्ञ, दान, पुस्तक-क्रय, ज्ञानवर्द्धनमें व्यय होनी चाहिये । हमारी परम्परा ऐसी रही कि राजा जनक तक हल जोतकर जीविकोपार्जन करते रहे । खेतीका रुपया पसीनेका रुपया है । श्रमका रुपया है । नसीरुद्दीन कुरान लिखकर अपनी जीविका उपार्जन करता था । उसकी पत्नी उसके लिये भोजनकी व्यवस्था करती थी । वह टोपी बनाया करता था । बाजारमें किसीके यहाँ रखवा कर साधारण मूल्यपर ही उन्हें बिकवाता था । गांधी और विनोबा श्रमकी प्रतिष्ठाके ज्वलन्त उदाहरण हैं । उनके यहाँ जल तक मनुष्य खींचते रहे । स्वयं अपना काम करते रहे । व्यक्तिगत आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये स्वयं ही परिश्रम करनेकी जरूरत है ।

श्रम मनुष्यकी अभूतपूर्व वस्तु है । श्रमदान-यज्ञ मनुष्यके श्रमकी प्रतिष्ठाका एक जीता-जागता रूप है । कर्म ही मनुष्यको ऊपर उठानेवाला है । भगवान् स्वयं कर्मरत हैं । वे एक क्षणके लिये भी बिना कर्म किये नहीं रहते । यदि वे एक क्षणके लिये कर्म करना बंद कर दें, तो इस सृष्टिका प्रत्येक कार्य रुक जाय । वे निरन्तर कार्यरत हैं । हम भी उनसे शिक्षा लें और अपने-अपने ढंगसे परिश्रम करते रहें । बच्चे, युवक, वृद्ध, नारियाँ सब आयुपर्यन्त कुछ-न-कुछ श्रम कर सकते हैं ।

परिश्रम करनेकी मूल वृत्ति किसी-न-किसी विशेष उद्देश्यके लिये प्रयत्न करना है। एक उद्देश्यको रखकर हमें उसकी प्राप्तिके लिये परिश्रम करना उचित है। एक दिशामें प्रयत्न फल शीघ्र देता है। कई बार सामान्य परिश्रम या संयोगसे कोई-कोई बड़ी बात हो जाती है। एकाएक कुछ व्यक्ति अमीर बन जाते हैं या प्रयत्न विफल हो जाते हैं, लेकिन यह स्थिति असाधारण है। बिना श्रमके आयी हुई सम्पत्ति स्वयं निकल जाती है, स्थायी लाभ नहीं होता। फालतू पैसा अभिमानका नशा उत्पन्न करता है। कर्मको कर्तव्य समझकर निरन्तर श्रम कीजिये और खिन्नतासे निराश मत रखिये। प्रत्येक क्षण कर्म करते रहनेसे गुप्त शक्तियोंका विकास होता है और जीवन दीर्घ बनता है। जीवनमें जो समयकी पूँजी पड़ी है, उसे निचोड़कर तरह-तरहकी सम्पदाएँ प्राप्त कीजिये।

श्रुति कहती है—जीवन एक संग्राम है। उस जीवनमें वही विजयी होता है, जो सीना तानकर आफतोंका मुकाबिला कर सकता है। आफतोंकी घनघोर घटाओंमें बिजलीकी तरह मुस्करा सकता है, परिस्थितियोंका दास न बनकर उनका दृढ़निश्चयी स्वामी बनता है। जो हट जाना पसंद करता है, पर झुकना नहीं।

अक्षय यौवनका आनन्द लीजिये

क्रियाशीलता यौवन स्थिर रखती है

विकासवादी सिद्धान्त है कि पहले मनुष्य एक जंगली जीव था । सभ्यताके उषःकालमें जब अन्य वन्य पशुओंकी भाँति वह उन्मुक्त विचरण करता रहा; घूमना, फिरना, तेजीसे भागकर अपनी उदरपूर्तिके हेतु आखेट करना, तैरना, कूदना-फाँदना—जब उसके दैनिक क्रम रहे, यौवन और जीवन आनन्द प्राप्त करता रहा ।

सभ्यताका विकास हुआ या यों कहिये मनुष्य धीरे-धीरे कृत्रिमता-के बन्धनमें बँधने लगा, उसका दूर-दूरतक घूमना, फिरना, तैरना, खेलना, कूदना कम होने लगा । वह भोजनोंको भी पकाने लगा; जिह्वाके स्वादमें फँस गया । प्राकृतिक आहारके स्थानपर नाना प्रकारके कृत्रिम भोजनोंका आविष्कार किया गया ।

मनुष्यका जीवन आलसी बन गया । प्रकृति श्रमकी पुजारिन है । वह उन्हीं पशु-पक्षियों, जलचर, नभचर इत्यादिको विकसित करती है, जो लगातार परिश्रम करनेके अभ्यस्त हैं । जो जितना ही

क्रियाशील है, उतना ही स्वस्थ और सुडौल है। हरिण चौकड़ी भरता है, नीलगाय तेज दौड़ती है, अश्व जीवनपर्यन्त जीवनकी दौड़ दौड़ता रहता है; पक्षी निरन्तर व्यायाम करते हैं, बिना पंखोंका उपयोग किये, उन्हें भोजन भी प्राप्त नहीं होता, मछलियाँ निरन्तर तैरती रहती हैं, जंगलके जितने भी जानवर हैं, क्रियाशील रहकर ही जीवनके नाना उपादान एकत्रित करते हैं। गाय, भैंसे, बकरी, भेड़ दिनभर घूम-घूमकर घास खाते हैं। यह क्रियाशीलता ही उनके स्वास्थ्यका मूल है। न उन्हें कब्जकी शिकायत होती है, न कड़वी दवाइयाँ भक्षण करनी पड़ती हैं।

आलस्यके दुष्परिणाम

आजकलके युवक या युवतीका शरीर देखिये—पिचका हुआ मुख, धँसे हुए कपोल, नेत्रोंके चारों ओर कालिमा, पतले-दुबले हाथ-पाँव, न शरीरमें शक्ति, न मनमें स्फूर्ति। क्या कारण है कि हाथ-पाँव दुबले हैं, क्या कारण है कि सिर, कमर और जोड़ोंमें दर्द रहता है या पेट फूलता चला आ रहा है? कारण है परिश्रमका अभाव। जिन अङ्गोंसे मेहनत नहीं ली गयी, वे निर्बल ही रहेंगे। शक्ति उन्हीं अङ्गोंमें आती है, जिनसे यथेष्ट श्रम किया जाता है। शरीरसे खूब कार्य लीजिये, देखिये कितनी तीव्रतासे वह दृढ़ होता है; बाँहें मोटी होने लगती हैं, पिचके हुए कपोल पुनः गुलाबी आभासे परिपूर्ण हो जाते हैं, सिरदर्द जाता रहता है।

ग्रामीण मजदूरोंको देखिये, उनके पुट्ठों, आकार, स्वास्थ्यको देखिये और उनके रहस्य क्रियाशीलतापर गौर कीजिये। ग्रामीण

स्त्रियाँ बड़े तड़केसे ही चक्की पीसना प्रारम्भ कर देती हैं, उसीके साथ मधुर संगीतकी तान छेड़ देती हैं। कसरत और संगीत— यौवन छलछला उठता है।

आज युवकोंके शरीरोंमें जंग लग गया है। उनकी आदतें आलसी हैं। वे चलना-फिरना या शारीरिक कार्य करना नहीं चाहते। थोड़ी-थोड़ी दूरके निमित्त साइकिल या मोटर बसका आश्रय देखते हैं; खेलने-कूदनेमें उनकी रुचि नहीं है। अपना काम अपने हाथसे करनेमें लज्जाका बोध होता है। पैदल चलनेमें शर्म आती है। पाँवोंसे काम लेना छोड़नेके कारण शरीरकी रही-सही स्फूर्ति भी विलीन हो गयी है।

मेरा वश चले तो साइकिल नामके इस आलसी बनानेवाले यन्त्रको तोड़-फोड़ दूँ। संसारसे इसका बहिष्कार करा दूँ। इन कृत्रिम पाँवोंने हमारे वास्तविक पाँवोंकी शक्तिका शोषण कर दिया है। हमें आलसी बना दिया है। हमारे स्वास्थ्यका दिवाला निकालनेमें इस सवारीका प्रमुख हाथ है। साइकिल-सवारीका कुप्रभाव गुप्त अङ्गोंपर भी पड़ता है और घृणित रोगोंमें प्रकट होता है।

शारीरिक श्रम किया करें

यौवनके इच्छुकको चाहिये कि यथाशक्ति श्रम करे। चलने-फिरनेके कार्य पाँवोंसे करे। साइकिल तथा इक्कोंसे दूर रहे। यदि आपका दफ्तर दो मील दूर है तो आने-जानेका कार्य पाँवोंसे लीजिये। बाजारसे नाना प्रकारकी वस्तुएँ पैदल ही खरीदने जाना चाहिये। स्कूल पैदल चलें। प्रकृति चाहती है कि दिनभर आप काफी चलें; बैठे न रहें।

जल जब एक ही स्थानपर स्थिर रहता है, तो गंदा हो जाता है। वही जल जब लहरोंके रूपमें बहने लगता है, तो मल पदार्थोंसे स्वच्छ हो जाता है। चलने-फिरने क्रियाशील रहनेसे यौवन स्थिर रहता है। प्राकृतिक प्रणालीमें शरीरकी सफाई, पुनः-निर्माण और विकासके लिये क्रियाशीलता एक आवश्यक तत्त्व है।

फौजमें रहनेवालोंको नियमित रूपसे चार-पाँच घंटे ड्रिल करायी जाती है। कदम मिलाकर चलना, भागना, दौड़ना, कूदना उनके जीवनके साथ लगा दिया जाता है। फलतः वे दीर्घजीवी और परिपुष्ट होते हैं। सीधे खड़े होने, रीढ़को सीधा रखने, गहरी साँस लेनेसे, व्यायाम तथा कसरतसे यौवन स्थिर रहता है।

एक स्थानपर टिककर घंटों बैठे रहना, गद्दीपर मोटे तकियोंके सहारे लेटे रहना, स्वयं अपने हाथ-पाँवसे काम न कर दूसरोंकी बाट देखना, थोड़ी-थोड़ी दूरके लिये साइकिल, बस, रिक्शा या ताँगेका प्रयोग, टहलने न जाना, व्यायाम न करना, शारीरिक श्रमसे जी चुराना बुढ़ापेको आमन्त्रित करनेकी आदतें हैं। इनसे मनुष्यका विकास अवरुद्ध हो जाता है।

इसके विपरीत नित्य समयपर टहलने जाना जीवनको बढ़ा लेना है। टहलना अपने आपमें हलका व्यायाम है। श्री-भुवनेश्वरनाथ माधव लिखते हैं—'जो खुली हवामें टहलता है, उसे अस्पतालोंकी धूल फाँकनी नहीं पड़ती; न डाक्टरोंके पीछे-पीछे समयका खून करना पड़ता है। टहलनेवालेका विश्वास है कि शरीर, मन, प्राण और आत्माको चिर सुन्दर, चिर युवा, चिर उल्लासमय

रखनेके लिये टहलना यथेष्ट है, उसके विचारमें डाक्टर शत्रु और दवा जहर है। वह इन दोनोंसे बचेगा, उसे इनकी आवश्यकता न होगी। वह प्रकृति माताका स्तन पान करनेवाला भला अपने गलेके नीचे टिकिया या मिक्श्चरके जहरको क्यों उतारेगा? वह जानता है उसके शरीरके लिये जितना कुछ आवश्यक है, प्रकृति देती है। प्रायः लोग उपवासके समय मुर्देके समान पड़ जाते हैं। उपवाससे पूरा-पूरा लाभ उठानेके लिये टहलना नितान्त आवश्यक है। मीठी नींद आती है, टहलनेवालेको ही। वह शिशुकी तरह सोता है और सिपाहीकी तरह जागता है—बिल्कुल तरो ताजा।"

जो लोग तैर सकते हैं, वे तैरकर व्यायाम करें। जो सूर्य-नमस्कारका आनन्द उठा लेते हैं, वे सब प्रकारकी निराशा, विषाद, पीड़ा, दुःख और ग्लानिसे मुक्त रहते हैं। यदि आप कोई बड़ा व्यायाम नहीं करते, तो टहलने और मालिशको तो अपना ही लीजिये। ब्राह्ममुहूर्तमें टहलना, सङ्गीत, स्नान, पूजा, व्यायाम इत्यादि ऐसे पवित्र कर्म हैं, जिनसे आपके शरीर, मन, प्राण और आत्मा सुखी समृद्ध हो सकते हैं। आपका शरीर स्वस्थ, मन प्रसन्न, हृदय उदार और आत्मा तेजोमय हो सकती है। इन्द्रियोंके विकारोंसे शान्ति मिल सकती है और यौवन स्थिर रह सकता है। यदि आप हाथ-पाँव न हिलाना रईसी आदत समझते हैं तो प्रकृति आपको ऐसी सजा देगी जिससे आपके शरीरकी क्रियाशीलता पंगु हो जायगी।

चलते रहो !

निरन्तर तीव्र गतिसे प्रवाहित सरिताओंका जल जीवनयुक्त होता है, इसके विपरीत जिस जलमें प्रवाह नहीं है, जो एक स्थान-पर रुक गया है, वह सड़कर दुर्गन्धिमय हो उठता है। इस सड़े हुए स्थिर जलमें भी ज्यों ही प्रवाहकी गति आती है, त्यों ही इसमें नव जीवनका प्रादुर्भाव हो उठता है। गति ही जीवन है, स्थिरता मृत्युका पर्याय है।

प्रकृतिमें देखिये, अनन्त आकाशका भ्रमण करता हुआ सूर्य प्रातःसे अपना गतिमान् जीवन प्रारम्भ करता है और अपरिमित लोकोंको द्युतिमान् करता हुआ सम्पूर्ण दिन गतिशील रहकर रात्रिमें विश्राम ग्रहण करता है। उसकी इस यात्राका प्रतिफल प्रतिक्षण

गतिसे परिपूर्ण रहता है। निरन्तर गतिशील रहनेके कारण ही कदाचित् उसके द्वारा विश्वके जीव-जगत्का इतना भला होता है। सूर्य भगवान्का एक दिनका विश्राम जीव-जन्तु जगत्के लिये मृत्युका संदेश बन सकता है।

प्रकृतिके जीव-जन्तु-पक्षी जगत्को देखें, तो आपको स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि जो जीव गतिमान् रहते हैं वे स्वास्थ्य, सौन्दर्य और दीर्घजीवनका आनन्द प्राप्त करते हैं। निरन्तर यत्र-तत्र उड़नेवाले विभिन्न पक्षी, जंगलोंमें इधर-उधर दौड़नेवाले हिरण, गतिमान् जीवन व्यतीत करनेवाली गायें, बकरियें, भेड़ें, घोड़े, वृक्षोंपर उछल-कूदका जीवन व्यतीत करनेवाले बंदर, जलमें निरन्तर गतिशील मछलियाँ, कछुवे, मगर इत्यादि बड़ा स्वस्थ जीवन व्यतीत करते हैं। इसके विपरीत आलस्यमें जड जीवोंकी तरह स्थिर पड़े रहनेवाले जीव पंगु, अल्पायु और अस्वस्थ रहते हैं। निष्क्रिय जीवन व्यतीत करनेवाले जीव जल्दी मृत्युको प्राप्त होते हैं। उनके अवयव शैथिल्यमें पड़े रहनेके कारण अपना कार्य यथोचित रीतिसे पूर्ण नहीं कर पाते।

प्राणिशास्त्र हमें सिखाता है कि जो अपनी शारीरिक, मानसिक या आध्यात्मिक शक्तियोंका निरन्तर उपयोग करता है, उस गतिके कारण उसकी ये शक्तियाँ तथा निरन्तर सक्रिय रहनेवाले अवयव पुष्ट होकर सुन्दर बन जाते हैं। काम न करनेवाले अवयव सूखकर विनष्ट हो जाते हैं। निरन्तर कार्यसे हमारा शरीर पुष्ट होकर आत्माकी ऊँचाई प्राप्त करता है।

लेखकको अपनी माताजीका उदाहरण गतिमान् जीवनका जाग्रत् उदाहरण है, वे बड़े तड़के पाँच बजे गृहस्थके नाना कार्योंमें

दत्तचित्त हो संलग्न हो जाती हैं। ठण्ड हो या गरमी, वे शौचादिसे निवृत्त होकर स्नान, ध्यान, पूजन, गीतापाठके अतिरिक्त गृहस्थके सभी कार्य ऐसे करती हैं मानो किसी मशीनके द्वारा किये जा रहे हों। भैंस दुहनेका कार्य हो या वस्त्र धोनेका, पाकशालाके कार्य हों या सीने-पिरोनेके, वे निरन्तर चलते रहते हैं। समस्त दिन कार्यसे थककर वे रात्रिमें मीठी नींद सोती हैं। उन्हें पता नहीं रहता कि कहाँ सो रही हैं। भोजन कम-से-कम, वस्त्र सबसे थोड़े, किंतु कार्य सबसे अधिक। उनसे कोई उनके उत्तम स्वास्थ्यका रहस्य पूछे, तो वे उसे एक ही वाक्यमें कहेंगी, 'जो फिरैगो, सो चरैगो, बँधो भूखौ मरैगौ।' अर्थात् जो चल-फिरकर गतिशील जीवन व्यतीत करेगा, उसे खुलकर भूख लगेगी, जो एक स्थानपर बँधा रहकर गति-विहीन जीवन व्यतीत करेगा, उसकी निष्क्रियता उसे मार डालेगी। इस उक्तिसे उनके स्वस्थ-जीवनका पूर्ण मर्म खिंचकर आ जाता है। ये गतिको ही जीवनका प्रधान लक्षण मानती हैं।

आधुनिक मानवके गिरे हुए स्वास्थ्य, कुरूपता, अल्पायुका प्रधान कारण स्थिर गतिविहीन जीवन है। उसे थोड़ी-थोड़ी दूरके लिये सवारी चाहिये। बस-ट्रामने उससे यात्राका आनन्द छीन लिया है, साइकिल आधुनिक मानवका शत्रु है; क्योंकि इसने आधुनिक युवकके पैर जर्जरित पंगु शक्तिविहीन कर दिये हैं। वह साइकिलका ऐसा क्रीतदास हो गया है कि उसे थोड़ा भी चलना नहीं पड़ता। पाँवोंका समुचित उपयोग न करनेके कारण उसकी जीवन-शक्तिका ह्रास हो गया है।

हम यह जानते हैं कि कुछ शौकीन लोग टहलने जाते हैं। बड़ी आबादियोंमें ऐसे व्यक्ति दस प्रतिशतसे अधिक नहीं हैं जो टहलनेके अभ्यस्त हैं। चाहे आप कोई व्यायाम करें अथवा नहीं, किंतु टहलनेका लोकप्रिय व्यायाम अवश्य करें। यदि नहीं तो आजसे ही साइकिलका प्रयोग छोड़कर इधर-उधर जानेके लिये पैरोंका ही प्रयोग किया करें।

'चलते रहो' का तात्पर्य विस्तृत है। इसका एक अर्थ यह भी है कि कुछ-न-कुछ कार्य करते रहो, आलस्यमें निष्क्रिय जीवन व्यतीत न करो। एक कार्यके पश्चात् दूसरा कोई नवीन कार्य प्रारम्भ करो। मानसिक कार्यके पश्चात् शारीरिक, शारीरिक श्रमके पश्चात् मानसिक कार्य—यह क्रम रखनेसे मनुष्य निरन्तर कार्यशीलताका जीवन व्यतीत कर सकता है।

आलस्य शत्रु है, सक्रियता जीवन-जागृतिका लक्षण है। श्रम ही मनुष्यकी सर्वोत्कृष्ट पूँजी है। आलसी व्यक्ति परिवार तथा समाजका शत्रु है। वह दूसरोंके संचित श्रमपर निर्वाह करता है। ऐसे व्यक्तिसे प्रत्येक परिवारको बचना चाहिये।

परिवारोंमें जितने व्यक्ति हों, सभी सक्रिय रहें, अपना-अपना कार्य जागरूकतासे सम्पन्न करें। मुखियाका कर्त्तव्य है कि वह बच्चोंमें प्रारम्भसे ही कार्य करनेकी आदतोंका विकास करे। बच्चोंमें आलस्य उनके भावी जीवनके लिये बड़ा हानिकर है।

निरन्तर कार्य करनेसे वासनाएँ नियन्त्रित रहती हैं। थक जानेसे मनुष्यका मन घृणास्पद कृत्योंसे बच जाता है। उसकी

प्रवृत्तियाँ शुभ कार्योंकी ओर अधिक लगती हैं। कार्यशीलता चरित्रको चमकाकर द्युतिमान् कर देती है और स्वास्थ्यको सौन्दर्यसे परिपूर्ण कर देती है!

गतिशील जीवनका समग्र ज्ञान-विज्ञान एवं मर्म ऐतरेय ब्राह्मणके एक गीतमें बड़ी सुन्दरतासे व्यक्त किया गया है। इस गीतमें भगवान् इन्द्रने हरिश्चन्द्रके पुत्र रोहितको सक्रिय जीवन व्यतीत करनेका उपदेश इस प्रकार किया है—

हे रोहित! श्रमसे जो नहीं थका, ऐसे पुरुषको श्री नहीं मिलती। बैठे हुए आदमीको पाप धर दबाता है। इन्द्र उसीका मित्र है, जो बराबर चलता है। इसलिये चलते रहो।

जो पुरुष चलता है, उसकी जाँघोंमें फूल फूलते हैं। उसकी आत्मा भूषित होकर फल प्राप्त करती है। चलनेवालेसे पाप थक-कर सोये रहते हैं। इसलिये चलते रहो, चलते रहो!

बैठे हुएका सौभाग्य बैठा रहता है, खड़े होनेवालेका सौभाग्य सोता रहता है और उठकर चलनेवालेका सौभाग्य चल पड़ता है। इसलिये चलते रहो, चलते रहो!

सोनेवालेका नाम कलि है, अँगड़ाई लेनेवाला द्वापर है। उठकर खड़ा होनेवाला त्रेता है और चलनेवाला कृतयुगी होता है। इसलिये चलते रहो, चलते रहो!

चलता हुआ मनुष्य ही मधु पाता है। चलता हुआ ही स्वादिष्ट फल चखता है। सूर्यका परिश्रम देखो, जो नित्य चलता हुआ कभी आलस्य नहीं करता। इसलिये चलते रहो, चलते रहो!

व्यस्त रहा कीजिये

विन्स्टन चर्चिल दिन-रातके चौबीस घंटोंमें १८ घंटे परिश्रम करनेके आदी रहे हैं। उनसे जब पूछा गया कि क्या चिन्ताने कभी उनपर आक्रमण किया है, तो उन्होंने उत्तर दिया 'मेरे पास इतना काम है कि चिन्ता करनेके लिये समय ही नहीं मिल पाता।' चिन्ता फालतू आलसी निष्क्रिय मनका एक विकार है। कमजोर तबियतके व्यक्ति जब खाली होते हैं, तो बजाय उन्नत पहलू देखनेके, वे अपने विरोध, भय, दुःख, क्लेशकी बातें सोचा करते हैं। जिनके पास पर्याप्त कार्य है, उन्हें चिन्ता-जैसे विलासके लिये कहाँ अवकाश है ?

प्रसिद्ध वैज्ञानिक लुई पाश्चरने कहा है कि 'शान्ति दो ही स्थानों-पर रह सकती है, पुस्तकालयमें अथवा वैज्ञानिक प्रयोगशालामें।' इन दोनों स्थानोंमें क्यों शान्तिकी कल्पना की गयी है ? कारण, इन दोनोंमें कार्य करनेवाले व्यक्ति अपनी पुस्तकों तथा अनुसंधानोंमें इतने निमग्न रहते हैं कि उनके पास चिन्ता करनेके लिये अवकाश ही नहीं रहता। अनुसंधानमें रत व्यक्तियोंको स्नायविक दौरे नहीं पड़ते। चिन्ता-जैसी व्यर्थ सारहीन चीजके लिये उनके पास समय नहीं बचता।

यह बात मनोविज्ञानकी दृष्टिसे ठीक है। चाहे किसीका मस्तिष्क कितना ही तेज, बुद्धि कितनी ही कुशाग्र क्यों न हो, दिमाग एक समयमें एक ही बातपर केन्द्रित हो सकता है। जब आप अपने कार्यमें सुईकी तरह गड़ जाते हैं, तो फिर मनकी शक्तियोंको चिन्ताके विषयोंपर सोचने-विचारनेका अवसर ही प्राप्त नहीं होता। काममें तन्मय हो जाना,

रुचि और उत्साहसे उसे पूर्ण करनेका प्रयत्न करना चिन्तासे बचनेका श्रेष्ठ उपाय है।

जौन कूपर पौव्स अपनी पुस्तक 'अप्रियको कैसे भूलें ?' में लिखते हैं—'जब मनुष्यका मन किसी रुचि-अनुकूल कार्यमें तन्मयतासे लग जाता है, तो उसे एक प्रकारका आराम देनेवाला संरक्षण, एक आन्तरिक शान्ति, एक आनन्ददायक विस्मृतिका अनुभव होता है। उसके चिन्तावाले तनावका भी बन्धन टूट जाता है।'

ओसा जौन्सन कहा करते थे, 'मुझे संसारकी इस कर्मस्थलीमें कार्यमें निमग्न हो जाना चाहिये, अन्यथा मैं निराशा तथा चिन्तामें घुल जाऊँगा।'

बात ठीक भी है। यदि हम-आप किसी कार्यमें अपनी सम्पूर्ण शक्तियोंको व्यस्त न रक्खें, यदि हम बैठकर गड़े मुर्दे उखाड़ने लगें, दुःखद प्रसङ्गोंका स्मरण कर रोते रहें, तो हमारा जीना ही दुष्कर हो जायेगा।

बर्नाड शाने सही कहा है, 'दुखी रहनेका सीधा मार्ग यह है कि आप इस चिन्तामें पड़ जायँ कि मैं प्रसन्न हूँ या दुखी ?' अतः अहितकर चिन्तनके लिये मनको ढीला छोड़ देना ही मूर्खता है। आइये, फालतू बैठनेके स्थानपर किसी कार्यमें व्यस्त हो जायँ—अपना कमरा ही साफ कर लें; रूमाल ही धो डालें। बाजारसे सब्जी ले आयें या अपने जूतेपर पालिश ही कर लें। कार्य चाहिये। जहाँ आप किसी कार्यमें लिप्त हुए कि चिन्ता भागी। यह सबसे सस्ती दवाई है जिससे चिन्ताकी पुरानी शत्रुता है। चिन्तासे बचनेके लिये कार्य—

पढ़ाई-लिखाई, घरेलू काम, बच्चोंसे खेल-कूद, गायन या बागवानीमें लगे रहें ।

छोटी-छोटी बातोंके लिये चिन्तित न रहें

कुछ व्यक्तियोंकी यह आदत होती है कि वे आनेवाले भयको बहुत बढ़ा-चढ़ाकर तिलका ताड़ बनाकर देखते हैं। २४ शताब्दी पूर्व पेरेक्लीजने कहा था, 'सज्जनो ! हमारी बड़ी मानसिक कमजोरी यह है कि हम बैठकर छोटी-छोटी-सी बातोंकी चिन्तामें समय नष्ट कर देते हैं।' वास्तवमें यदि हम अपनी चिन्ताओंको उनके ठीक रूपमें देखें, तो हमें विदित होगा कि दर-असल ये छोटी-छोटी चीजें हैं जो हमें परेशान करती रहती हैं ।

डिजराइलीने कहा है, 'जीवन ऐसी छोटी-छोटी बातोंमें चिन्तित रहनेके लिये नहीं है। जीवन महान् है। वह साधारण बातोंमें विनष्ट होनेके लिये कदापि नहीं बना है।' ऐण्ड्र-मौरिसने उक्त शब्दोंके महत्त्वका निर्देश करते हुए लिखा है कि 'इन शब्दोंने मुझे जीवनके अनेक कारुणिक और चिन्तनीय स्थलोंमें सहायता की है।' अनेक बार हम गहराईसे सोचनेके कारण या दूर दृष्टिके अभावमें ऐसी बातोंकी चिन्तामें फँस जाते हैं; जिन्हें हम भूलना चाहते हैं और जिनसे हम घृणा करते हैं। ऐसी चिन्ताएँ हमारे जीवनमें अकारण ही एक यन्त्रणा पैदा कर देती हैं। हमारी ये छोटी-छोटी बातें कालके प्रवाहमें स्वयं विलुप्त हो जायँगी। हम क्यों जीवनके बहुमूल्य क्षण छोटे-छोटे चिन्ता उत्पन्न करनेवाले कार्योंकी बातें सोच-सोचकर बरबाद करें ? समय स्वयं इन्हें अपने अंदर आत्मसात् कर लेगा। अधिक

ऊँचे प्रश्न, उच्च स्तरकी जीवनसम्बन्धी समस्याओंमें ही हमें संलग्न रहना उचित है।

कल्पित भय व्यर्थ हैं

बच्चा अनेक अनहोनी घटनाओं, अजीब प्रकारसे आनेवाले फल, कष्टदायक चीजोंकी बाबत सोचकर चिन्तित रहा करता है। बिजली मेरे ऊपर न गिर जाय? मैं नदी या तालाबमें न डूब जाऊँ? मुझे सिंह न खा डाले? यदि मुझे अकेले छोड़कर पिताजी चले जायँ तो क्या हो? कहीं मैं मर न जाऊँ? ये सब कल्पित भय निरन्तर बच्चेके मनःक्षेत्रमें उदित होते रहते हैं। बच्चे इन मिथ्या भयोंमें अज्ञान-वश फँसे रहते हैं।

ऐसे ही अनेक मनुष्योंके मिथ्या भय और चिन्ताएँ होती हैं। उनके भय, निराशा, शंका, चिन्ता आदि कल्पित बन्धनोंपर आधारित होती हैं। वे इन थोथे बन्धनोंमें बँधे रहते हैं। अपने आनेवाले लाभों और उन्नतिके स्थानपर ये लोग मनकी व्यथा, पीड़ा, रोग, कष्ट, भय आदिके बाबत सोचा करते हैं। निन्यानबे प्रतिशत भय ऐसे हैं, जो आगे आते ही नहीं। यदि हम अपने इन कल्पित शत्रुओंको पराजित कर दें तो सुव्यवस्थित जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

ईश्वरकी इस सर्वाङ्गपूर्ण सुन्दर सृष्टिमें नष्ट होनेवाली चीज नहीं है। वह पूर्णतासे भरी है। जेनरल जार्ज क्रुक लिखते हैं, 'मेरा सब दुःख, चिन्ताएँ वास्तविक स्थितिसे उत्पन्न न होकर कल्पित भयोंसे उत्पन्न हुए।' इसीलिये शेक्सपीयरने कहा है कि 'कायर आदमी मौतसे पहले कई बार मर चुके होते हैं—इसी खयालसे कि

मौत अब आयी—अब आयी और बहादुर आदमी तो एक बार ही मरता है जब कि साक्षात् मृत्यु ही उसे घेर लेती है।'

यदि वास्तवमें आपको किसी बातकी चिन्ता है तो औसतन उनमेंसे अनेक बातें कभी न घटेंगी, केवल मनमें उनका भार मात्र बना रहेगा। सम्भव है, ये बातें औसतके नियमोंके अनुसार न आयें, जिनसे आप व्यर्थ ही मन-ही-मन परेशान हो रहे हैं।

अनिवारणीयसे संतुष्ट रहनेका प्रयत्न कीजिये

जो होना है, वह होकर रहेगा। यदि भवितव्यता निश्चय है, यदि आनेवाली दुर्घटना, दुःखभरे अवसर आनेवाले ही हैं, उनसे नहीं बचा जा सकता, तो उनसे मेल कर लेना ही ठीक है। मेल करनेसे तात्पर्य यह है कि आप अपने आपको उसी स्थितिमें समझ लीजिये। जिन बातोंको आप अपनी सम्पूर्ण शक्तियोंके बावजूद बदल नहीं सकते और जो आपके हाथकी बात नहीं है, उनके विषयमें चिन्तित होनेसे क्या लाभ? चिन्तित होकर तो जो रहा-सहा है, उसका भी आनन्द न आयेगा।

ईसा महान्का नैतिक साहस इतिहासके पन्नोंपर स्वर्ण-अक्षरोंसे लिखा रहेगा। मानवताने उनके साथ जो व्यवहार किया वह पाशविक था; किंतु उन्होंने बड़ी मनःशान्तिसे उसे सहन किया। सुकरातके सामने मृत्यु-दण्डके फलस्वरूप जब विषका प्याला लाया गया, जेलरने विषका प्याला उसे पीनेके लिये देते हुए कहा, 'जो कुछ होनेवाला है, उसे निश्चिन्त होकर वहन करो।' सुकरातने निश्चिन्ततासे प्याला पी लिया और शान्तिसे निर्भयतापूर्वक मृत्यु प्राप्त की। वह जिसे बदल न सका, उसे शान्तिसे सहन किया।

जो होना है, उसे होने दीजिये। प्रयत्नोंद्वारा स्थितिको सुधारनेका प्रयत्न कीजिये! चिन्ता करनेसे कोई लाभ नहीं। चिन्ता दूर करनेके लिये इस प्रार्थनाके मर्मको समझिये—

'हे परमेश्वर! हमें मनःशान्ति दीजिये।

जिन घटनाओंपर हमारा वश नहीं, उन्हें सहन करनेकी शक्ति दीजिये।

जिन बातोंको हम बदल सकते हैं उन्हें बदलनेका साहस दीजिये।'

जो घटनाएँ हो चुकी हैं; जो वर्ष, दिन या घंटे हमारे हाथसे छूटे हुए तीरकी भाँति अब हमारे वशकी बात नहीं रहे हैं, उनपर हमारा क्या अधिकार हो सकता है? हम उन्हें किस प्रकार वापस ला सकते हैं? किसी भी प्रकार नहीं। यह मुमकिन नहीं कि उन दिनोंमें हम दुबारा जी सकें, जिनमें हम एक बार जी चुके हैं। जो घटनाएँ व्यतीत हो चुकी हैं, हम उन्हें दूर नहीं कर सकते। हाँ, उनके प्रभावोंको थोड़ा-बहुत सुधार अवश्य सकते हैं।

परमेश्वरकी आनन्दमयी सृष्टिमें पुराने अनुभवोंसे केवल एक ही लाभ सम्भव है। पुराने अनुभवोंका विश्लेषण कर हम अपनी वे गलतियाँ मालूम कर सकते हैं, जिनके कारण हमें हानि उठानी पड़ी है। इन गलतियोंसे लाभ उठाकर उन्हें विस्मृतिके गर्भमें विलीन कर देनेमें ही बुद्धिमत्ता है।

मानसिक संतुलन धारण कीजिये

मनुष्यका अन्तर्जगत् सब जीवोंसे उच्चतर है। उसकी व्यवस्था जगन्नियन्ताकी अद्भुत कुशलताकी द्योतक है। मकड़ीके जालेके सदृश नाना स्मृतियों, इच्छाओं, कल्पनाओं तथा विचारोंके सूक्ष्म तन्तुओंका तानावाना उसमें फैला रहता है, जिनका सामूहिक प्रभाव मानव-शरीरपर दृष्टिगोचर होता है। प्रायः मनुष्य विचित्र-विचित्र कार्य करते देखे जाते हैं, किंतु वे अपनी विभिन्न क्रियाओंके मूल केन्द्र—अन्तर्जगत्से अपरिचित होते हैं। उन्हें विदित नहीं कि उनके सब सांसारिक या आध्यात्मिक कार्योंका आदि-स्रोत उनका मन है। बाह्य संसारका सुख-दुःख, आह्लाद अथवा क्लेशमयी मनःस्थिति, भलाई-बुराईकी ओर प्रवृत्ति, विक्षिप्तावस्था अथवा मनोमोहिनी मुद्रा हमारे उन संस्कारोंके परिणाम हैं, जिनको हमने अपने अन्तर्जगत्में उपजाया है। संसारमें जो व्यक्ति दुखी रहता है या जो बहुत अल्प साधनोंमें ही आनन्द लूटता है, इसका कारण उस व्यक्तिका मन ही है। अपने अन्तर्जगत्की प्रतिच्छाया ही हम इस लोकमें, व्यक्ति-व्यक्तिमें प्रतिफलित देखते हैं। हमारे संस्कारोंकी छाप हमारी दृष्टिमें निहित रहती है। अपने संस्कारोंके अनुसार ही इस सर्वगुणसम्पन्न सृष्टिसे हम पाप-पुण्य, भलाई-बुराई, आनन्द-क्लेश खींचते रहते हैं।

शरीरपर मनका अद्भुत प्रभाव देखा जाता है। जो रोग वास्तवमें शरीरमें नहीं हैं उनकी कल्पना करने तथा वैसे ही रोगी-विचारोंको अन्तर्जगत्में स्थान देनेसे वे रोग—व्याधि शरीरमें प्रकट होते देखे जाते हैं। अपने संस्कारोंके अनुसार ही हम

स्वास्थ्य, यौवन, सौन्दर्य आसपासके वातावरणसे खींचते रहते हैं।

रोगीका मन रोगी होता है। रोगमय मनःस्थितिसे शरीरमें रोगका प्रादुर्भाव होता है; काल्पनिक भयकी आशंकासे शरीर संतप्त हो उठता है। वासना तथा क्रोध उत्तेजना उत्पन्न कर शरीरको कँपा डालते हैं। निराशा, वेदना और कष्टके विचारोंसे क्लेशमयी परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। ईर्ष्या और प्रतिहिंसाके विचारोंसे शरीर दग्ध हो उठता है। लोभमें मनुष्य कल्पनाके महल निर्मित करता रहता है। संदेहदृष्टिसे मनुष्य प्रत्येक व्यक्ति अथवा स्थितिपर अविश्वास प्रकट करता रहता है। दुष्ट तथा अहितकर मनोवृत्तियोंके उद्दीप्त होनेसे मनका अन्तःप्रदेश अस्तव्यस्त तथा संतप्त हो उठता है।

हमारा कोई अनुभव व्यर्थ नहीं जाता। वह हमारे अन्तर्जगत्में अपनी जड़ अवश्य छोड़ जाता है। जैसे फसल कट जानेपर भी खेतमें वृक्षोंकी जड़ें उगी रहती हैं, वैसे ही हमारे सब अच्छे-बुरे, कड़वे-मीठे अनुभव, बाह्य जगत्की अनुभूतियाँ सदा-सर्वदाके लिये अन्तर्जगत्में अङ्कित हो जाती हैं। उसी ज्ञान तथा संस्कारसे हमारा कार्य संचालित होता रहता है। हमारे आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक सभी प्रकारके दुःख मनद्वारा संगृहीत किसी दुष्ट विकारके परिणाम होते हैं।

दुर्भावना तथा सद्भावना

हमारे अन्तर्जगत्का निर्माण करनेवाली दो वृत्तियाँ हैं—सद्भावना तथा दुर्भावना। ये जीवनके देखनेके दो विभिन्न मार्ग हैं। आप जिस मार्गसे जीवन-यात्रापर निकलते हैं, उस मार्गमें वैसी ही

वस्तुएँ आपको स्थान-स्थानपर मिलती जाती हैं। दुर्भावनाका मार्ग कण्टकों तथा शूलोंसे परिपूर्ण है। इस रास्तेसे जानेवालोंको सदा अतृप्तिका सामना करना पड़ता है। वह ईर्ष्या, प्रतिशोध, संघर्ष तथा हिंसाकी वृत्तियोंमें उलझा रहता है। दूसरोंपर अविश्वास और शङ्का करता है, सबको अपना शत्रु समझता है, जगत् उसे अपनी उन्नतिके मार्गमें अवरोध करता दिखायी देता है। उसके आत्मविरोधी विचार दुःखोंकी सृष्टि कर उसे मनकी नारकी स्थितिमें धक्का दे देते हैं। वह सदा अशान्त और अतृप्त रहता है।

दूसरा मार्ग सद्भावनाका है। इसमें मनुष्यके दैवी गुणोंका पावन प्रकाश है। यह मनुष्यकी उच्च स्थितिको लानेवाला आध्यात्मिक मार्ग है। इस पथमें विचरण करनेवाला पथिक प्रत्येक व्यक्तिको आत्मरूपसे देखता है, सबको अपना हितैषी मानता है, सबसे स्नेह करता है और सबकी उन्नतिमें सहायता करता है। अन्य जीव भी उससे प्रेम, सेवा, सहायता, उन्नति, उदारता प्राप्त करते हैं। संसारके समग्र प्राणियोंसे आत्मभाव रखनेके कारण स्वयं उसकी मनःस्थिति शान्त और संतुलनकी रहती है। उसमें व्यर्थके संघर्ष, प्रतिहिंसा, स्वार्थ या वासनाके ताण्डव नहीं होते। आध्यात्मिक शक्ति उसके मनमें एकत्रित होती चलती है। वह दूसरोंके लिये आत्मत्याग करनेके आनन्दसे परिचित होता है। त्याग, बलिदान और सेवाभाव उसके संकल्पोंको दृढ़ता प्रदान करते हैं। आध्यात्मिक शक्ति उसके अन्तर्जगत्में संचित होती चलती है।

सद्भावना सदा फलित होनेवाली जादूकी शक्ति है। जो

जितनी ही सद्भावना दूसरोंको देता है, वह उससे दुगुनी-चौगुनी सद्भावनाएँ बदलेमें पाता है। सद्भावना कभी व्यर्थ नहीं जाती। सद्भावनाएँ गुप्तरूपसे दूसरोंको हमारी ओर आकृष्ट करती हैं। यदि दूसरा आकृष्ट न भी हो तो, ये स्वयं हमें अमित शान्ति, धैर्य और साहस देनेवाली हैं। ये हमें संकुचिततासे बचाकर उदार बनाती हैं और अन्ततः कल्याणका कारण बनती हैं।

मानसिक द्वन्द्वोंसे मुक्त रहिये

मानसिक संतुलन भंग होनेसे पूर्व हमारे मनमें मानसिक द्वन्द्वोंकी उत्पत्ति होती है। दो विरोधी भावोंमें संघर्षकी स्थितिको द्वन्द्व कहते हैं। द्वन्द्वोंमें भय एक महत्त्वपूर्ण विकार है। इच्छा और भय, लोभ तथा भय, चोरी तथा पकड़े जानेका भय अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न करते हैं। भय एवं अनिश्चितता, चिन्ता और आशङ्का मानसिक उलझनें बनाती हैं। इनसे मनमें तनावकी स्थिति पैदा हो जाती है। भयसे गुप्त मानसिक उलझनें (न्यूरासिस) बनती हैं। प्रायः हमारे मनमें कोई इच्छा उत्पन्न होती है, किंतु उसे प्राप्त न करनेके कारण भावना-ग्रन्थि बनती है। ये ग्रन्थियाँ नाना विकारजन्य मूर्खताओंमें प्रकट होती हैं।

भय मनुष्यके विकासको रोकनेवाला दुष्ट विकार है। माता-पिताओं तथा गुरुओंको चाहिये कि बच्चोंको अधिक सजाएँ न दें; बच्चोंपर अनुचित सख्ती न बरतें। कठोर व्यवहारसे बच्चोंमें भयकी गुप्त ग्रन्थियाँ सदाके लिये बन जाती हैं, जो जीवनभर उनके कार्योंमें अर्द्धविक्षिप्तता, बेढंगापन, आत्महीनता या व्यर्थ चिन्ताएँ, बेबसी

उत्पन्न करती हैं। मनुष्यके संकल्पोंकी कमजोरीके कारण ये ही द्वन्द्व हैं! अच्छे व्यक्तित्ववाले आदमी भी कभी-कभी इनके शिकार बन जाते हैं। संतुलनके अभावमें वे आत्म-भर्त्सना किया करते हैं।

उन्नति, समृद्धि तथा स्वस्थताके लिये मानसिक द्वन्द्वोंसे बचे रहें। मनमें उचित विचार रखना, भविष्यके अनिष्टोंसे मुक्त रहना, वाणीसे मधुर बोलना, सबका भला चाहना, मनको उदार रखना—ये वे विचार-पद्धतियाँ हैं, जिनसे मनुष्य सभी प्रकारकी परिस्थितियोंमें शान्त बना रहता है। उचित विचार क्या हैं जिन विचारोंसे किसीका अनिष्ट नहीं होता, जो सबके प्रति सद्भावना, प्रेम, उदारतासे युक्त हैं, जिनमें मनुष्यमात्रकी भलाईके लिये लगन, प्रेम, उत्साह और सेवा-भावना है, जो सदा नये आध्यात्मिक भावनासे स्निग्ध हैं, वे ही सही विचार हैं।

सदा नये समाजोपयोगी कार्य करने, आशावादी भावनाएँ बनाये रखने और आध्यात्मिक चिन्तन करनेसे मनुष्य द्वन्द्वोंसे बच सकता है। जो व्यक्ति नये-नये लोकोपकारी कार्य करेगा, उसके मनमें द्वन्द्व कैसे ठहर सकते हैं? जहाँ सद्ज्ञानका दिव्य प्रकाश है, वहाँ अज्ञानान्धकार कैसे ठहर सकता है? कार्यमें निरत रहनेसे मनुष्य आलस्यसे बच सकता है। परोपकाररत साधकमें आत्मविश्वास बढ़ता है। एक कार्यके पश्चात् वह दूसरे कार्यमें सफलताएँ प्राप्त करता चलता है। सही विचार, उचित दृष्टिकोण, मौलिक दृष्टि और निरन्तर कार्य करनेसे द्वन्द्व दूर होते हैं।

संक्षेपमें, हमारे मनको उन्नत या अवनत करनेवाली दो शक्तियाँ

हैं—ज्ञान तथा कर्म। हम अध्ययन, मनन, सत्सङ्ग तथा संसारके नाना अनुभवोंसे ज्ञान प्राप्त करते हैं। फिर उनकी सहायतासे कर्ममें प्रविष्ट होते हैं। यदि ज्ञान और कर्म बराबर मात्रामें अपना कार्य करते हैं, तो मानसिक संतुलन स्थिर रहता है। ज्ञान और कर्मका महत्त्व हमारे प्राचीन विचारकों*ने माना है। बिना कर्मके ज्ञान अधूरा है; इसी प्रकार बिना ज्ञानके कर्म अन्धा है। दोनोंका पूर्ण सामञ्जस्य ही अपेक्षित है। ज्ञान और कर्म जब साथ-साथ बढ़ते हैं, तब जीवन आगे बढ़ता है। कर्म तथा ज्ञानके सामञ्जस्यद्वारा हम द्वन्द्वोंका निवारण करें। निरर्थक अनुचित और अनुपयोगी कार्योंसे समय बचाकर अपना समय उपयोगी कर्मोंमें व्यतीत करना चाहिये। कर्म-क्रमको धर्ममय बनानेसे द्वन्द्व छूटते हैं।

मानसिक तनाव या खिंचावकी स्थिति न आने दें। अर्थात् जैसे ही कोई इच्छा उत्पन्न हो, वैसे ही उसके पक्ष या विपक्षमें निर्णय कर डालें। यह करूँ या न करूँ—ऐसी संशयात्मक मनःस्थिति उत्पन्न न होने दें। संशयमें पड़े रहनेसे मनुष्यमें बड़ी दुर्बलता आती है। तनाव बढ़ता है। यदि कोई इच्छा उत्पन्न हो, तो उसकी पूर्ति इस ढंगसे करें कि वह सदा-सर्वदाके लिये निवारित हो जाय।

जिन वस्तुओं, नामों या सजाओंसे बच्चोंको भय उत्पन्न होता है, वे व्यवहारमें न लायें। बच्चोंको उत्साहित किया जाय और सजा इस प्रकार दी जाय कि वे मानसिक ग्रन्थियोंसे बच सकें।

---

* कर्म और ज्ञान जीवरूपी पक्षीके दो पंख हैं—योगवासिष्ठ।

बड़े व्यक्तियोंमें आत्मसंकेत तथा सजेश्चनसे ग्रन्थियोंका निवारण चलता रहे। आत्महीनता या आत्मलघुतासे ग्रसित व्यक्तियोंको श्रेष्ठताके संकेतद्वारा प्रोत्साहित किया जाय।

पूर्ण विकसित व्यक्तियोंको चार प्रकारके भय होते हैं—१—मृत्युका भय, २—वृद्धत्वका भय, ३—गरीबीका भय, ४—प्रियजनोंके अनिष्टका भय। मृत्यु तो अवश्यम्भावी है। जब हम कहते हैं कि अमुक वयस्क मृत्युसे डरता है, तब हम वास्तवमें यह कहना चाहते हैं कि वह मृत्युसे नहीं अपने पापोंके दुष्परिणामोंसे भयभीत होता है। वह इस बातसे शंकित रहता है कि अब उसे अपनी दुष्टताके कर्मोंकी सजा मिलेगी। उसकी अन्तश्चेतना ऐसा अनुभव करती है कि इस दिव्य जीवनका मैंने जो दुरुपयोग किया है, उसके फलस्वरूप मरनेके पश्चात् मुझे दुर्गतिमें जाना पड़ेगा, अतः मनुष्यको अपने कार्य उन्नत करने चाहिये। आत्मोन्नतिके कामों—सद्ग्रन्थावलोकन, परोपकार, सेवा, त्याग, तपश्चर्या, साधना—सत्कर्मोंमें निरत रहना चाहिये। ऐसे कार्य करने चाहिये कि उसे पछताना या आत्मभर्त्सना न करनी पड़े। आप ऐसा जीवन व्यतीत कीजिये कि आत्मग्लानि उत्पन्न न हो। मृत्युको अधिक उन्नत अवस्थामें जानेकी एक स्थिति मानिये। जब कोई व्यक्ति वर्तमानकी अपेक्षा अधिक अच्छी, उन्नत और सुखकर अवस्थामें जाता है, तब उसे कष्ट नहीं, प्रसन्नता होती है। अपने जीवनको धार्मिक बनाकर शुभ भावनाओंमें निरत रह सत्कर्म करनेसे मृत्युका भय छूट सकता है।

वृद्धावस्थाको जीवनका अन्त नहीं, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टियोंसे समुन्नत जीवनका प्रवेशद्वार मानिये। वृद्धावस्था आदरकी पात्र है। वह घृणाकी वस्तु नहीं है। वृद्ध जवानोंकी अपेक्षा शारीरिक शक्तिको छोड़कर हर प्रकारसे बढ़ा हुआ होता है। वृद्धावस्था वह परिपुष्ट समुन्नत दशा है, जिसके लिये प्रकृति आरम्भसे तैयारी करती है। अतः बुढ़ापेका डर मनसे सदाके लिये निकाल दीजिये।

गरीबीका भय व्यर्थ है, यदि आपका जीवन संयम और दूरदर्शितासे व्यतीत हो रहा है। आप जिस स्थिति, जिस अवस्था—हैसियत या आयके व्यक्ति हों, कुछ-न-कुछ अवश्य बचा सकते हैं। यह संचित धन आपको गरीबीसे सुरक्षित रख सकता है।

प्रियजनोंके अनिष्टका भय त्याज्य है। आप उनके प्रति शुभ भावनाएँ रखिये, यथासम्भव सेवा कीजिये, उनके लिये बलिदान करनेको प्रस्तुत रहिये। बस, इससे अधिक आप कुछ नहीं कर सकते। समाजमें मजबूरियाँ होती हैं। आदमी उनमें फँसकर जो हो जाय, उसके प्रति कोई चारा नहीं है!

मानसिक संतुलन स्थिर रखनेके लिये मनोबलकी अतीव आवश्यकता है। जिसका मनोबल बढ़ा हुआ है, वह द्वन्द्वोंसे मुक्त रहता है। मनोबल वह शक्ति है, जो हमारे समस्त अन्तर्द्वन्द्वोंके ऊपर नियन्त्रण रखती है। समुन्नत मनोबलसे हमारी क्रियाएँ शुभ रहती हैं। ध्यान और एकाग्रताके अभ्यासद्वारा मनोबलकी वृद्धि करते रहिये। विचार, भाव तथा आचार—इन तीनोंका पूर्ण सामञ्जस्य रखिये। शुभ मति,

शुभ विचार तथा इन शुभ संस्कारोंके शुभ परिणामस्वरूप अच्छा आचार रखनेसे मनोबल बढ़ता है। गंदगीकी ओर प्रवृत्त होने, दुराचार करने, विषय-वासनामें लगे रहने, अपनी शक्तिसे बड़ा काम ले लेनेसे मनोबल घटता है। सद्विचार सीखें। उन्नत विचारोंसे सद्भाव, सद्भावसे सदाचार उत्पन्न होता है। पहले छोटे कार्योंमें सफलता प्राप्त करें, फिर अपेक्षाकृत कुछ बड़े कामोंको हाथमें लें और इस प्रकार मनोबलको बढ़ाते रहें। धीरे-धीरे सफलता प्राप्त करते रहनेसे मनुष्यको अपनी शक्तियोंके प्रति विश्वास बढ़ जाता है और निर्णयात्मक बुद्धि जाग्रत् होती है।

ध्यानका अभ्यास करनेसे मानसिक संतुलन बना रहता है। ध्यान जम जानेपर मनुष्य जब चाहे तब चित्तवृत्ति और विचार-शक्तियोंका प्रवाह फेंक सकता है। इसके लिये दीर्घकालीन सतत अभ्यासकी आवश्यकता है।

अपने कार्यों, संकल्पों और मन्तव्योंमें तन्मय हो जाइये और व्यर्थके निकम्मे चिन्तनसे बचिये। जो अपने उद्देश्यमें तन्मय रहता है, वह संतुलित रहता है। निकम्मा सदैव व्यग्र और अशान्त बना रहता है। गीतामें वर्णित कर्मयोगका तात्पर्य यही है कि कुशलतापूर्वक निष्कामभावसे अपने कर्ममें तन्मय हो जाइये, उद्देश्यहीन चिन्तनसे दूर रहिये, कर्मरत व्यक्ति पूर्ण संतुलित होता है। आपका जीवन सदुद्देश्योंकी प्राप्तिमें व्यतीत होना चाहिये और कार्यक्रम सदा धर्ममय होना चाहिये।
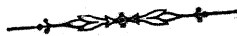
प्रतिस्पर्द्धाकी भावनासे हानि

जीवन गति है । जीवन-धारा एक सरिताके प्रवाहकी भाँति सतत गतिशील है । जैसे एक ही स्थानपर टिका या रुका हुआ होनेके कारण जल दूषित हो जाता है, वैसे ही जीवन-प्रवाहमें संतोष भी हानिकारक सिद्ध हो सकता है । पूर्ण परिश्रम करनेपर जो कुछ प्राप्त हो हमें उससे संतोष करना चाहिये—यह ठीक है; किंतु उतावलापन, सदा आगे बढ़ने और अपनी गति, सामाजिक स्थिति, पद, घर-बार, सौन्दर्य इत्यादिको सदा दूसरोंसे मिलाना, तुलनात्मक दृष्टिसे अपनेको नीचा पाना, फिर रात-दिन उसी फिक्रमें पड़े रहना—प्रतिस्पर्द्धाकी यह भावना सीमाका अतिक्रमण करनेसे घातक दुष्परिणामोंको उत्पन्न कर मनुष्यका जीवन अशान्तिसे भर देनेवाली है ।

हमारा अमुक मित्र उन्नतिकी दौड़में हमसे आगे निकल गया, अमुकको उच्च पद-प्रतिष्ठा, गौरव प्राप्त हो गया, अमुककी पत्नी कितनी सुन्दर है, अमुकका निवास-स्थान कितना भव्य है, पुत्र-पुत्री कितने सभ्य हैं—आदि-आदि प्रतिस्पर्द्धाजनक भावनाएँ मानसिक तनाव-

की सृष्टि कर पाचन-शक्तिको निर्बल कर देती हैं। नसोंके तने रहनेसे सुख-शान्ति प्राप्त नहीं होते और मनुष्य सदा अपने विरोधी विचारों, दूषित कल्पनाओंको ही मनमें पोसता रहता है।

प्रतिस्पर्द्धासे चिन्ता और ईर्ष्या उत्पन्न होती हैं और पेटमें कब्ज, अपच तथा अल्सरकी बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, त्वचाकी बीमारियाँ फूटती हैं और शरीरका समग्र स्नायु-मण्डल अनियन्त्रित हो जाता है। भूख नहीं लगती और मनुष्य दुबला होता जाता है।

श्री एडवर्ड विगम अपनी पुस्तक 'आनन्द-प्राप्तिके नये उपाय' में लिखते हैं—

जब आपको जीवन-यापनकी भौतिक सुविधाएँ प्राप्त हो जायँ, भोजन, वस्त्र, मकान, अच्छा स्वास्थ्य इत्यादि—तो आपकी प्रसन्नता या दुःख बहुत कुछ इस बातपर निर्भर है कि आप किस प्रकार अपने आपको दूसरोंसे मिलाते या तुलना करते हैं। यदि आप उनसे एक बातमें अपने आपको पूरा या ऊँचा उठा हुआ पाते हैं, तो किसी दूसरे तत्त्वमें गिरा हुआ, अविश्वासी या निर्धन पाते हैं। आप अपने व्यक्तित्वके इस गिरे हुए पक्षपर निरन्तर चिन्तन कर मनको चिन्ता और कल्पित वेदनाके भारसे भर लेते हैं। यदि आप अपने गुण, सुविधाओं और समृद्धियों अर्थात् अपने उन्नत पक्षसे दूसरोंका मिलान करते रहें और अपने प्रति हितैषी बने रहें, तो आप जीवनके प्रति सतत एक चाव, नयी रुचि, उत्साह और उन्नतिकी ओर लगे रहेंगे। आपकी योग्यताएँ उत्तरोत्तर बढ़ती रहेंगी और विवेक परिपक्व हो जायगा।

मनुष्य सर्वप्रथम आत्म-स्थायित्व चाहता है अर्थात् मरना नहीं चाहता। वह अपने शरीरको रोग और मृत्युसे सुरक्षित रखना चाहता है। इसी सिद्धान्तको गहराईसे देखें तो हम कह सकते हैं कि हम अपने अहंकी रक्षा चाहते हैं, अपने व्यक्तित्वपर आक्रमण करनेवालोंसे बचना चाहते हैं, अपनेको अपकीर्तिसे बचाना चाहते हैं। दूसरे हमारे विषयमें क्या सोचते हैं, यह बात हमारे विषयमें उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं, जितनी यह बात कि स्वयं अपने ही विषयमें उनके माध्यमसे सोची गयी घृणित या गिरी हुई मान्यताएँ। इसी बातको यों कहिये कि हम भ्रमवश यों ही सोचने लगते हैं कि अमुक हमें गरीब समझता होगा; अमुक हमें मूर्ख, मंदमति कहता होगा; अमुक हमें अप्रतिष्ठित समझता होगा इत्यादि। इनमेंसे अधिकांश हमारी झूठी कल्पनाएँ ही होती हैं; क्योंकि इस विशाल जन-समाजको इतना अवकाश कहाँ कि केवल हमारी ही टीका-टिप्पणी करता रहे। उसे अन्य बहुत-से महत्त्वपूर्ण कार्य हैं।

मनुष्य समस्त कार्योंके मूलमें दूसरोंद्वारा अपने कार्योंकी प्रशंसा प्राप्त करना चाहता है। जब हम समझते हैं कि कोई हमें पसंद नहीं कर रहा है, तो हम अपने आपको हीन, कमजोर और अरक्षित-सा समझने लगते हैं। जौन डिवि कहते हैं, 'मानव-प्रवृत्तिकी सबसे उत्कट अभिलाषा महत्त्वपूर्ण पद प्राप्त करना ही है। लोग महत्ता प्राप्त करनेके लिये भूखे रहते हैं पर उत्तमोत्तम वस्त्र, आलीशान मकान, मोटर-बंगला इत्यादि दिखावटी चीजें एकत्रित करते हैं।

तनिक विचार करें केवल वस्त्रोंपर ही आप कितना अपव्यय केवल महत्ता-प्राप्तिके लिये कर देते हैं। अच्छे वस्त्र या आभूषण पहिनकर आप प्रतिस्पर्द्धामें मन-ही-मन ऊँचे उठ जाते हैं और एक मिथ्या दर्पसे फूल उठते हैं। 'मैं इनसे श्रेष्ठ हूँ, ऊँचा हूँ, मेरी बराबरीका कोई नहीं है। (चाहे वह वस्त्राभूषण-जैसी क्षुद्र बातमें ही सही)।' इस प्रकारकी एक भी चीज मिलते ही आप अन्य गुणोंमें भी अपने-आपको दूसरोंके समान मान बैठते हैं। इस कल्पित श्रेष्ठता और उच्चताकी भावनासे आपके अहं-भावकी क्षणिक तृप्ति होती है। स्पर्द्धा-द्वारा अपनेको श्रेष्ठ या निकृष्ट, ऊँचा उठा हुआ अथवा नीचा गिरा हुआ समझना मानव-प्रकृतिका एक निगूढ़तम रहस्य है। इसके भले-बुरे उपयोगपर हमारे जीवनका सुख या दुःख निर्भर है। यदि हम इस तुलनात्मक वृत्तिका सदुपयोग करें तो सुखी, अन्यथा दुखी बने रहेंगे।

अपने आपको इसलिये मत धिक्कारिये कि आप अपनेको हीन पाते हैं। समझदारीसे यदि आप अपनी तुलना दूसरोंसे करें और सत्यतासे परखें, तो आपको सौन्दर्य, स्वास्थ्य, धन, प्रतिष्ठा, स्थिति आदिकी नीचाईसे उत्पन्न ग्लानि उत्पन्न न होगी। वास्तवमें आप गलती यह कर बैठते हैं कि अपने व्यक्तित्वकी दुर्बलताओंको दूसरोंके व्यक्तित्वकी अच्छाइयों या विशिष्टताओंसे मिलाने लगते हैं। आपमें कुछ कमजोरियाँ हैं, तो स्मरण रखिये जिन्हें आप श्रेष्ठ समझते हैं, उन व्यक्तियोंमें भी निर्बलताएँ हैं। उनकी अच्छाइयाँ देखते हैं तो कृपया अपने व्यक्तित्वको सहानुभूतिसे परखकर अपनी

विशिष्टताएँ भी खोजिये। आपको अवश्य कुछ-न-कुछ अच्छाइयाँ अपनेमें मिलेंगी जो आपको आगे बढ़ने, सद्गुणोंका विकास करनेकी प्रेरणा देंगी।

आत्म-विश्वास स्वयं एक भावनाग्रन्थि है, एक स्वस्थ मानसिक आदत है, तो दूसरी ओर आत्महीनता अर्थात् अपने विपक्षमें सोचना और अपनेको दूसरोंसे नीचा समझना एक दूसरी ग्रन्थि हैं, एक अस्वस्थ मानसिक आदत है। तुलनात्मक दृष्टिसे दूसरी अस्वस्थ आदतके गुलाम बनना दुखी जीवन बितानेकी तैयारी करना है। गलत चीजोंकी तुलनासे मनुष्यके जीवनमें भारी असंतोष छा जाता है। अतः या तो आप अपनी अच्छाइयोंको दूसरोंकी अच्छाइयोंसे मिलाइये अथवा मिलानका प्रश्न ही न उठाइये।

अपनी तुलनात्मक दृष्टिका विश्लेषण कीजिये। थोड़ी देरके लिये यह सोचिये कि आखिर वे कौन-सी बातें हैं जिनसे आप अपना दूसरोंसे मिलान करने बैठे हैं? धन, प्रतिष्ठा, प्रभुता, महत्ता, पत्नी, सौन्दर्य, स्वास्थ्य, बुद्धि—अवश्य इन्हींमेंसे कोई भावना आपके मनमें विद्रोह मचा रही है। प्रारम्भमें तो यही मानिये कि ईश्वरने उपर्युक्त सब गुणोंमें सबको सब चीजें समान मात्रामें प्रदान नहीं की हैं। किसीमें एक अधिक है तो किसीमें दूसरी बढ़ी हुई है। एक व्यक्ति बुद्धिमान् विद्वान् है, तो उसमें शारीरिक सौन्दर्य बिल्कुल नहीं है, दूसरा रुपये-पैसेवाला है तो उसे समाजसे आदर और प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं। तीसरेके पास सौन्दर्य है, तो चरित्र नहीं है। संक्षेपमें प्रत्येकका अपना-अपना क्षेत्र

पृथक्-पृथक् है । जीवन एक दौड़ है । इस दौड़में हम सब अपने ढंगसे दौड़ रहे हैं । कोई आगे है तो कोई पीछे ।

एडवर्ड एल० थौर्नडाइक कहते हैं, 'हम सदा किसी-न-किसी व्यक्तिसे आगे निकलते जा रहे हैं । हमारे आगे दो व्यक्ति भाग रहे हैं, तो दस व्यक्ति पीछे भी तो छूटे जा रहे हैं । फिर हम उन पीछेवाले व्यक्तियोंको देखकर थोड़ा-सा संतोष क्यों न लें और नयी प्रेरणासे आगे चलनेवाले दो व्यक्तियोंको हरानेकी हिम्मत क्यों न करें ।'

वास्तवमें हमें चाहिये कि अपनी विद्या, बुद्धि, धन आदिको समूचे समाजकी विद्या, बुद्धि, धन आदिसे तुलना न करें । एक सुन्दर स्त्रीको चाहिये कि वह यह सोचकर दुखी न रहे कि हाय, मैं सबसे सुन्दर स्त्री क्यों न हुई । उसे अपने मुहल्ले, ग्राम या प्रान्तकी साधारण सौन्दर्यवाली स्त्रियोंसे मिलान कर ही सुख-संतोष करना चाहिये । गलत मिलान करनेकी प्रवृत्ति प्रायः बचपनमें उत्पन्न होती है । माता-पिता एवं शिक्षकोंका कर्तव्य है कि उचित दिशाओं—स्थितियोंमें ही तुलनाकी प्रवृत्तिको विकसित होने दें । आप अच्छाइयोंको अच्छाइयोंसे ही मिलाइये और उत्साहपूर्वक उनकी अभिवृद्धिका प्रयत्न कीजिये । यह समझकर हतोत्साह न हो जाइये कि यह कठिन या कष्टसाध्य है । गलत चीजोंकी तुलना करना और अपनेको कमजोर पाकर चिन्तित होना हीनत्वकी भावना-ग्रन्थि उत्पन्न करना है । सावधान !

जीवनकी भूलें

सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी विचारक रूसोने अपने आत्मचरितमें लिखा है कि 'वही आत्मचरित श्रेष्ठ है, जिसमें लेखक बिना किसी बनावटके सही रूपमें अपने चरित्रको प्रकट करे। उसने जो भूलें की हों उन्हें स्पष्टतः स्वीकार करे; उनके लिये विक्षोभ प्रकट करे और जनताको अपना वास्तविक रूप देखने दे।

महात्मा गाँधीजीने अपनी आत्मकथामें जहाँ अन्य कार्योंका निर्देश किया है, स्वयं अपनी भूलोंका भी विवेचन कर डाला है। 'सत्यके प्रयोग' यह उनकी अनुभूतियोंका नाम है। ये अनुभव अच्छे-बुरे जैसे भी हों जनताके समक्ष आने चाहिये, जिससे वे स्वयं उचित-अनुचित, नीरक्षीरका विवेक कर श्रेष्ठ मार्गपर चलते रहें।

भूल मनुष्यकी एक बड़ी निर्बलता है। हममेंसे कदाचित् ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा, जिसने जीवनमें भूलें न की हों अथवा जो सर्वथा भूलोंसे मुक्त हो। यदि यह कहा जाय कि मनुष्य भूलोंका पुतला है, तो भी कोई अतिशयोक्ति न होगी! भूलें अनेक प्रकारकी हो सकती हैं—लेन-देनकी भूलें, पाठ याद न करनेकी भूलें, वासनाके कुचक्र अथवा कुसंगमें पड़कर की गयी बचपनकी भूलें; माता-पिता, अफसर या बड़े व्यक्तियोंसे की गयी अशिष्टतासम्बन्धी भूलें, भावना-प्रवाह, उत्तेजना, विक्षोभ, क्रोध, प्रेमोन्मादसे उत्पन्न भूलें। भूलोंका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक और विशद है। पिछले दिनों साम्प्रदायिक विद्वेषमें आकर रक्तपात, हिंसा, बलात्कार-जैसे जघन्य कार्य हुए। युद्धके कारण वस्तुएँ महँगी हुईं और रिश्वत, काला बाजार, दहेज

इत्यादिकी भूलें समाजमें उठ खड़ी हुईं। घरोंमें मार-पीट, अत्याचार, गालीगलौज, पड़ोसमें अदावत, बाजारोंकी दुर्घटनाएँ, शराबके नशेमें किये गये क्षणिक अत्याचार, मानहानि या व्यभिचार, जूआ और सट्टा—ये सब भूलोंके ही विभिन्न प्रकार हैं।

भूलोंके कारण अनेक हैं। कहीं राग है, तो कहीं द्वेष; कहीं प्रलोभन है, तो कहीं आलस्य; कहीं आवेश है, तो कहीं विक्षोभ। हृदय या भावनाके आन्तरिक आवेगके वशमें होकर प्रायः हम कुछ-का-कुछ कर बैठते हैं। जब मानसिक क्षोभका तूफान कम होता है, चित्त स्थिर होता है और विवेक जाग्रत् होता है, तब अपनी भूलोंपर आत्मग्लानि होती है।

आवेश और उत्तेजना एक प्रकारके मानसिक तूफान हैं। जैसे वायुमण्डलमें तूफान आनेसे पेड़-पौधे काँप उठते हैं, पत्तियाँ थरथराने, हिलने लगती हैं, टहनियाँ टूट-टूटकर गिर जाती हैं, धूल उड़नेसे नेत्रोंमें धूल छा जाती है, कुछ दीखता नहीं, इसी प्रकार अन्तर्मुखी आवेग आनेपर रक्तका संचार बढ़ जाता है, मनुष्य विचित्र चेष्टाएँ करता है, उत्तेजनाका आन्तरिक आन्दोलन हमारे शुभ विचारों और विवेकको कुण्ठित कर देता है; काम, क्रोध, लोभ, मोह, घृणा, भय आदिके आवेश सम्पूर्ण शरीरको थरथरा डालते हैं। अशान्त स्थितिमें बुद्धि ठीक प्रकार कार्य नहीं करती और प्रायः इमसे छोटी-बड़ी भूलें हो जाती हैं।

कुछ भूलें अज्ञान, अशिक्षा या कुसंगके कारण होती हैं। ऐसे व्यक्ति एक प्रकारके गहन मानसिक अंधकारमें निवास करते हैं और उन्हें अपनी गलतीका ज्ञान ही नहीं होता। ज्ञान-वृद्धि होनेपर उन्हें धीरे-धीरे अपनी भूलका पता चलता है।

आलस्य हमारी भूलोंका निर्माता बनता है। मान लीजिये आपका यह नित्यका कर्म है कि रात्रिमें सोनेके पूर्व घरके किवाड़ अच्छी तरह बंद कर शय्या ग्रहण करते हैं। आलस्य आया और भूल गये। उसी दिन चोरी हो गयी। यह चोरी आपकी भूलका दुष्परिणाम है। कुंडी लगाना भूलना, ताला-कुंडीके मामलेमें असावधानी, वस्तुओंको, पेटियोंकी चाभी आदिको नियत स्थानपर न रखना, बाहरसे आकर वस्त्र इत्यादि अस्त-व्यस्त फेंक देना, तेलकी शीशी फर्शपर छोड़ देना, चीनीके प्याले साफ न कर यों ही पड़े रहने देना, मामूली फटे हुए वस्त्रको न सिलवाना, जूते पालिस न करना, दफ्तर या रेलवे स्टेशनपर देरसे जाना, पत्रोत्तर न देना—आलस्यजनित भूलें हैं। आपको जुखाम है, सिरदर्द है, शरीर दुखता है और आप उसकी ओर ध्यान नहीं देते हैं तो यह भूल बढ़कर किसी भी बड़े रोगमें विकसित हो सकती है। दीवारमें पीपलका छोटा-सा पौधा जड़ पकड़ गया है और आप उसे उखाड़नेमें आलस्य कर रहे हैं, तो सम्भव है कि इस आलस्यके कारण किसी दिन घर ही टूटकर गिर पड़े।

लेन-देनकी भूलें बड़े भयंकर दुष्परिणाम दिखलाती हैं। एक बार ऋण लेनेके पश्चात् यदि उसकी अदायगीका उचित प्रबन्ध न हो और आलस्य चलता रहे, तो दिवालिया होनेमें कोई संदेह नहीं। आप बाजारमें निकलते हैं। आपका मन कभी उत्तम वस्त्र, नयी-नयी वस्तुओं, फैशनकी चीजों, पुस्तकों इत्यादिपर जाता है। अपनी सामर्थ्यकी ओर न देखकर आप तुरंत खरीद बैठते हैं। उधार ही सही, मूल्य फिर चुका देंगे। हमें वेतन तो मिलेगा ही। इधर

दूकानदारका बिल बढ़ता जाता है। बढ़ते-बढ़ते हाथमें आनेसे पूर्व ही वेतन समाप्त हो जाता है। बड़े-बड़े विद्वान्, राजनीतिज्ञ, मन्त्री, उपदेशक ऋणके मामलेमें आलसी रहते हैं। बैकन कुशल विद्वान् था, किंतु अपव्ययके कारण वह ऋणग्रस्त हो गया था। उसे सदा रुपयेकी इच्छा रहने लगी। वह रिश्वत लेने लगा। उसकी आवश्यकताएँ बढ़ीं। रिश्वतमें पकड़ा गया, उसके शत्रुओंकी बन आयी, मुकदमा चला, उसका पतन हुआ। पिट इंगलैंडमें देशकी सम्पत्तिका जिम्मेदार रहा था, पर स्वयं हमेशा कर्जदार रहा। पिटकी मृत्युपर उसके आलस्यके कारण राष्ट्रने चालीस हजार पौंड महाजनोंको दिये थे। लार्ड मेलविल जैसे घरके हिसाब-किताबमें आलसी था, वैसे ही राष्ट्रके व्ययके सम्बन्धमें लापरवाह रहा। फाक्स नामक व्यक्ति बड़ा धनाढ्य था, पर जुआ खेलनेके व्यसनके कारण एक दिनमें उसने ग्यारह हजार पौंड हारे थे। शेरिडन-जैसा नाट्यकार सदैव ऋणमें रहा। उसने एक बार छः दिनमें अपनी पत्नीके १६०० पौंड व्यय कर डाले थे। रुपये-सम्बन्धी ये भूलें निश्चय ही जीवनपर्यन्त दुःख देनेवाली हैं।

बिना पर्याप्त सोचे-विचारे यों ही किसीको वचन दे देना, प्रतिज्ञाबद्ध हो जाना, फिर उस वचन-पालनमें अपनेको असमर्थ पाना, लज्जित होकर अपनी भूल स्वीकार करना—इस प्रकारकी भूलें प्रायः अपनी शक्तिके विषयमें गलत धारणा या अपनी सामर्थ्यको खूब बढ़ा-चढ़ाकर देखनेसे उत्पन्न होती हैं। कुछ व्यक्ति स्वप्निल जगत्‌में विचरण कर यथार्थता और अपनी छोटी शक्तिको भूलकर ऐसे लम्बे-

चौड़े वायदे कर लेते हैं, कि आयुभर उन्हें पूर्ण नहीं कर पाते। किसी बड़े व्यापारको बिना समुचित पूँजीके हाथमें ले लेना, पत्र-प्रकाशन, प्रेस-संचालन, अथवा लेन-देनके पेशे छोटी पूँजीको स्वाहा कर बैठते हैं।

विवाह, दहेज, मृत्युभोज, यात्रा अथवा भोगविलासमें अपव्यय कर दूसरोंपर झूठी शान जमानेकी भूल बड़ी दुःखदायी सिद्ध होती है। इसी प्रकार अनियन्त्रित बच्चोंको जन्म देनेवाले माता-पिताको वृद्ध होनेपर अपनी भूलके लिये पछताना पड़ता है। इन क्षणिक बातोंसे दूसरोंपर न शान ही जमती है, न पैसे ही पास रहते हैं।

बुद्धि और तर्ककी अनन्त शक्तियोंके बावजूद मनुष्य कभी प्रमाद, कभी आलस्य, उत्तेजना, भावना या प्रलोभनवश कहीं-न-कहीं भूल कर ही बैठता है। भूल हो जाना एक स्वाभाविक कमजोरी है; किंतु हमें ध्यान यही रखना चाहिये कि वही भूल दुबारा न दोहरायी जाय। भूलकी पुनरावृत्ति करना कदाचित् मनुष्यकी सबसे बड़ी भूल है।

प्रायः देखा जाता है कि व्यक्ति एक भूलको दबानेके लिये चार-छः और नयी भूलें करते हैं। फिर इनमेंसे कोई भूल प्रकट होनेपर उसे छिपानेके लिये नित-नया उपक्रम करते हैं। इस क्रमका निरन्तर विस्तार होता चलता है। वास्तवमें भूल छिपती नहीं, देर-सबेर स्वतः प्रकट हो जाती है। भूलको छिपाना अग्निको रूईमें दबा या छिपा-कर रखनेके समान कठिन है। जबतक उसे ठीक न किया जाय,

तबतक वही भूल नयी-नयी भूलोंके रूपमें प्रकट होती और परेशान करती रहती है। उसका निवारण करना ही स्थायी रूपसे उससे मुक्त होनेका साधन है।

आध्यात्मिक दृष्टिसे छिपानेके स्थानपर भूलको स्वीकार कर लेना और भविष्यमें कभी न करनेका दृढ़ संकल्प स्थायी रूपसे करना आत्मसुधारका साधन है। आप चाहे कितने भी बड़े हों, चाहे किसी पद, स्थान, स्तर, पेशेके हों, भूलको सुधारकर सही मार्गपर आरूढ़ रहनेके लिये प्रस्तुत रहिये। भूलको स्वीकार करनेमें हीनता नहीं, बड़प्पन है; संकल्पकी दृढ़ता सतर्कताकी प्रेरणा है। भूलकी स्वीकृति यह स्पष्ट करती है कि आप आत्म-उत्थानके लिये जागरूक हैं। आगे बढ़ना चाहते हैं। छोटी भूलका भी प्रायश्चित्त तभी हो सकता है जब आप उसपर आत्मग्लानिका अनुभव करें और उसकी पुनरावृत्ति न होने दें। अपनी भूलका उत्तरदायित्व स्वयं अपनेपर ही लीजिये, दूसरेपर व्यर्थ ही न थोपिये।

अवश्य ही, जहाँ किसी स्वीकारोक्तिसे नयी विपरीत स्थिति उत्पन्न होती हो, वहाँ मनमें ही आत्मग्लानि कर लेनी चाहिये, सबके सामने उसे प्रकट नहीं करना चाहिये। भूलोंका यथार्थ ज्ञान होनेसे मनुष्यका जीवन नये मार्गसे प्रवाहित होना प्रारम्भ होता है। सूरदासको जब नारीके प्रेममें अनुरक्त होनेकी बासनामूलक भूलका ज्ञान हुआ तो वे उस घृणित मार्गसे बचकर महान् भक्त तथा महाकवि बन गये। भूलसे लाभ उठाकर सदा आत्मोन्नतिमें संलग्न रहिये।

अपने आपका स्वामी बनकर रहिये !

(१)

अपने आपका स्वामी बनकर रहिये ! आप कहेंगे, 'हम तो स्वयं अपने स्वामी आप हैं ही; फिर इसका क्या तात्पर्य है ?'

यदि आप अपनी इन्द्रियों, मानसिक विकारों और अन्तर्द्वन्द्वोंके वशमें हैं; यदि मनके झकोरोंमें बह जाते हैं, यदि आपको विविध क्षुद्र प्रलोभन नाच नचाया करते हैं और आप इनके वशमें हैं, तो वास्तवमें आप स्वामी नहीं, गुलाम ही हैं । अनियन्त्रित इन्द्रियोंकी दासता ऐसी ही है, जैसे कठपुतलीमें बँधे हुए सूक्ष्म तन्तु । जिधरको तन्तु हिले, उधरको ही कठपुतलीने हाथ-पाँव हिलाये । स्वयं कठपुतलीका कोई अस्तित्व नहीं है । उसी प्रकार इन्द्रियोंके दासका क्या ठिकाना !

मनुष्यके जीवनका पूरा विकास गलत स्थानों, गलत विचारों और गलत दृष्टिकोणोंसे मन और शरीरको बचाकर उचित मार्गपर आरूढ़ करानेसे होता है। यदि इन्द्रियोंको बेलगाम, यों ही जिधर चाहें चलनेके लिये छोड़ दिया जाय, तो निश्चय जानिये, वे आपको ऐसे गड्ढेमें ले जाकर पटकेंगी, जहाँसे उठना असम्भव हो जायगा। इसीलिये भारतीय संस्कृतिमें संयमको विशेष महत्ता प्रदान की गयी है।

मनुष्यकी वासनाएँ अनन्त हैं; इच्छाओंकी कोई गिनती नहीं, तृष्णाओंकी संख्या उतनी ही है जितने आकाशमें सितारे। एक वासना, एक इच्छा या एक तृष्णाके पूर्ण होते ही दस नयी तृष्णाओंका जन्म हो जाता है। इस प्रकार कामनाओं और नित्य नयी आवश्यकताओंका मोह-बन्धन लगातार हमें बाँधे रहता है। हम सांसारिक भोग-विलासके हरदम दास बने रहते हैं; इच्छाओंके प्रपञ्चमें जकड़े रहते हैं।

एक विद्वान्ने सत्य ही लिखा है, 'दुनियाको मत बाँधो, अपनेको बाँध लो।' अपनी इन्द्रियोंको वशमें कर लो तो तुम विजयी कहलाओगे।

अपनी इन्द्रियोंकी रखवाली वैसे ही करो, जैसे एक कर्तव्यनिष्ठ सिपाही खजानेके दरवाजेकी रक्षा करता है। यदि चोरोंको अवसर मिलेगा तो इन्हीं दरवाजोंसे घुसकर सारा खजाना खाली कर देंगे।

इसलिये खबरदार! दरवाजोंपर गफलत न होने देना। इन्द्रियों-पर पापका अधिकार न होने पाये, अन्यथा धर्म, नीति, चरित्र, पुण्य, कीर्ति, यश, प्रतिष्ठाका खजाना लुट जायगा।

मनके संयमसे स्वर्ग मिलता है, किंतु अनियन्त्रित इन्द्रियाँ तो नरककी ओर ले दौड़ती हैं। क्या तुम नहीं जानते कि उत्तम स्वास्थ्य, दीर्घजीवन, दिव्य बुद्धि और सांसारिक सम्पदाएँ—इन्द्रिय-निग्रहसे ही मिलते हैं, जिसने इन्द्रियोंके ऊपर काबू पा लिया है, वह हर परिस्थितिमें पर्वतकी तरह दृढ़ और स्थिर रह सकता है।

संयम वह गुण है जिसपर भारतीय संस्कृति टिकी है। हम एक संयमी जाति हैं। हमारे यहाँ संयमका बड़ा व्यापक प्रयोग है।

हमें चाहिये कि खान-पान, वाणी, विचार, चिन्तन—सर्वत्र ही आत्मसंयमका प्रयोग करें। हमारा मन जब फालतू, व्यर्थके अनीतिकर चिन्तनमें फँसता है, तो हमें उसपर कठोर नियन्त्रण करना चाहिये। जब क्षुद्र अनुराग, मोह, शंका आदि मनोविकारोंके बन्धनमें बँधता है, तब उसका निग्रह करना चाहिये। जब दूसरोंकी खराबियोंकी थोथी आलोचनामें फँसता है, तब उसे संयमपूर्वक रोकना चाहिये।

(२)

दैनिक जीवनमें ही संयमका आत्मशिक्षण और अभ्यास होना चाहिये। यदि हम समझें कि दो-चार दिनके साधारणसे अभ्याससे यह कार्य हो जायगा, तो यह हमारी भूल है। संयमका क्षेत्र अति विस्तृत है। प्रत्येक मोर्चेपर संयमका अभ्यास आवश्यक है।

मान लीजिये, आपके मनमें स्वादिष्ट भोजनकी प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। आप पहले अपना दैनिक भोजन करते हैं। उसके बाद कुछ दूध-रबड़ी खाते हैं। फिर मिठाई सामने आ जाती है तो आप उस ओर आकृष्ट हो जाते हैं और स्वास्थ्यकी कुछ परवा न

कर अनाप-शनाप मिठाई खा जाते हैं । यह असंयम आपके स्वास्थ्यको नष्ट करनेवाला और आत्मिक पतनका द्योतक है । अनियन्त्रित जिह्वावाले व्यक्ति कभी जीवनका आनन्द नहीं ले पाते । अधिक भोजनका परिणाम अधिक आलस्य और अहितकर चिन्तन है । इन्द्रियोंको और भी उत्तेजित करने और विकारोंको बढ़ानेका साधन है ।

आप किसी मादक द्रव्य—मद्य, भंग, सिग्रेट, गाँजा, चाय, काफीके बन्धनमें बँध गये हैं, इनके बिना आपको शून्यता प्रतीत होती है । अतः समझ लीजिये कि आपके चरित्रमें संयमकी कमी है ।

आपके नेत्र घृणास्पद, वासनासे भीगे दृश्योंको देखनेको दौड़ते हैं । बड़े वेगसे सिनेमाके चल-चित्रों, नृत्यों, नग्न मानव-शरीरोंकी ओर आकृष्ट होते हैं, तो यह मनकी दुर्बलताके चिह्न हैं ।

आपके कान संगीत (प्रायः उत्तेजक निन्द्य गाने) की ओर भागते हैं । अपने वास्तविक उद्देश्यपर मन एकाग्र न कर आप उस सस्ते संगीतकी ओर खिंच जाते हैं, तो आप बन्धनमें पड़ गये हैं ।

आपको जहाँ बोलना चाहिये, वहाँ आप बोलते नहीं । जहाँ नहीं बोलना चाहिये, वहाँ निरन्तर बकवास करते हैं, भटक जाते हैं, आवेशमें आ जाते हैं, अपशब्दों तकका उच्चारण कर बैठते हैं और सबके बुरे बनते हैं, इस अवसरपर भी आपको आत्मसंयमसे ही लाभ हो सकता है ।

साँझसे ही आप बिस्तर पकड़ लेते हैं और दस घंटे निद्रा या तन्द्रामें पड़े रहते हैं । मध्याह्नको भी भोजनके पश्चात् एक-दो घंटे सो जाते हैं । निद्रासे ही पीछा नहीं छूटता । सारे दिन निद्रा ही सताया

करती है। ऐसी अमर्यादित निद्राके वशमें रहनेवाला कैसे कुछ ठोस कार्य कर सकता है? अधिक भोजनका फल अधिक निद्रा, अधिक निद्राका अर्थ आलस्य और आलस्यका अर्थ सार्वत्रिक पतन और सर्वनाश है।

यदि संयम न हो और हमारे कार्य ऊपर लिखे तरीकोंसे ही चलते रहें, तो हम अपना समग्र जीवन खान-पान, व्यर्थ चिन्तन, दोष-दर्शन, इन्द्रिय-पूर्ति और निद्रामें ही समाप्त कर दें। पर ऐसा नहीं होता। ईश्वरने हमें एक ऐसी शक्ति दी है, जिसे विवेक कहते हैं। यह विवेक हमें मर्यादा, नियम-बन्धन और नाप-तोल कर चलना सिखाता है। विवेक होनेपर हम स्वयं अपने मनके द्रष्टा बन जाते हैं। अपने मनके व्यापारकी अच्छाई-बुराई देखते हैं। निरुपयोगी और फालतू क्रियाओंका निरीक्षण करते हैं।

भीष्म एवं युधिष्ठिरके संवादमेंसे ये वाक्य विचारणीय हैं—

आत्मा नदी संयमपुण्यतीर्था सत्योदका शीलतटा दयोर्मिः।
तत्रावगाहं कुरु पाण्डुपुत्र ! न वारिणा शुध्यति चान्तरात्मा ॥

धर्मराज ! तुम उस आत्मारूपी नदीमें डुबकी लगाकर स्नान करो, जो संयमरूपी पवित्र तीर्थ है, जिसमें सत्यरूपी जल भरा है, शील जिसका तट है और जिसमें दयारूपी लहरें उठ रही हैं। इसीसे आत्मा शुद्ध होगी। जलसे अन्तरात्माकी शुद्धि नहीं हो सकती।

तमोगुणों अर्थात् प्रमाद, आलस्य, मोह, निद्रा, वासना, शिथिलता—आदिसे मुक्तिके लिये केवल संयमके अभ्यासकी आवश्यकता है। विषयोंके ध्यान अथवा चिन्तनसे उनमें आसक्ति हो जाती है, उस आसक्तिसे उनकी प्राप्तिकी इच्छा होती है और

तमोगुणके इच्छित फल मिलनेसे सर्वनाश हो जाता है। अतः चौबीसों घंटों अपने आपको संयमपूर्ण नियमोंमें बाँध रखना चाहिये।

नियम-बन्धन एक मानसिक बन्धन है। जब आप मनमें यह दृढ़ निश्चय करते हैं कि अमुक नियमोंसे रहेंगे या अमुक-अमुक नियमोंका जीवनमें पालन करेंगे, तो आप मन-ही-मन एक गुप्त शक्तिसे अपने जीवन और कार्योंको बँधा हुआ पाते हैं। नियमोंके पालनका निश्चय ही एक साधन है। इसमें प्रारम्भमें मन और शरीरको कुछ कठिनाई अवश्य पड़ती है, पर बार-बार नियमोंका पालन करनेसे मनका नियन्त्रण हो जाता है।

नियम हमें संयमकी शिक्षा देनेवाले अमूल्य अंकुश हैं, जो हमें उच्च प्रकारके सांस्कृतिक जीवनकी ओर ऊँचा उठाते हैं। नियमकी जंजीरोंमें बँधकर मनुष्य व्यर्थके निरुपयोगी कार्योंसे छूट जाता है। मन व्यर्थकी क्रियाओंसे बच जाता है। मनकी स्वतन्त्रताकी एक विशेष सीमा निर्धारित हो जाती है। इसकी मर्यादाके बाहर जाते ही हम चौंक जाते हैं। गुप्त मन हमें नियमोल्लङ्घन करनेपर प्रताडित करता है। वस्तुतः हम फिर मनकी लगामको खींचकर उसकी निर्बाध स्वतन्त्रतापर प्रतिबन्ध लगा देते हैं।

नियमोंमें बँधकर मनुष्यकी शक्तिका विकास होता है। व्यर्थ चिन्तन, व्यर्थके कार्य और इन्द्रियोंके प्रलोभनोंसे बचकर आहार-विहारमें संयम लानेसे मनुष्यका शरीर श्रमी, बुद्धि विवेकवती और मन शक्तिशाली बनता है। जितेन्द्रियता व्यक्तिके निर्माणमें सर्वाधिक महत्त्व रखती है।

प्रकृति अपने नियम नहीं छोड़ती। इस संसारकी प्रत्येक गति कुछ गुप्त नियमोंके अनुसार चल रही है। ऋतुओंका आना-जाना, वृक्षोंके फल-फूल, पत्तियोंका उद्भव, जीवविज्ञानके नाना कार्य भौतिक विज्ञानके अनेक नियमोंपर चल रहे हैं। सृष्टि अपने नियम नहीं छोड़ती। समस्त विज्ञान हमें नियमोंका महत्त्व स्पष्ट कर रहे हैं। फिर, मनुष्य अपने नियमोंको छोड़कर कैसे उन्नति कर सकता है? मनुष्यकी अपरिमित शक्तिका विकास मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक नियमोंके पालनसे ही हो सकता है।

उदाहरणके लिये शारीरिक नियमोंको ही ले लीजिये। शरीर एक पेचीदा यन्त्र है। पर्याप्त श्रम, नियमित तथा संतुलित भोजन, मनोरञ्जन, छः-आठ घंटेकी गहरी निश्चिन्त निद्रा, पर्याप्त आराम, प्रसन्नता आदि आवश्यक हैं। यदि इनमेंसे किसी भी नियमको भङ्ग कर लिया जाता है, तो जीवन अव्यवस्थित हो जाता है। फलतः रोग और शारीरिक कष्ट उत्पन्न हो जाते हैं। यही कारण है कि सजाके डरसे कोई भी शारीरिक नियमोंका उल्लङ्घन नहीं कर पाते। मानसिक और बौद्धिक नियमोंका अनेक बार अतिक्रमण होता है और मनका संतुलन नष्ट हो जाता है। अतः अपने आपको कठोर नियमोंके बन्धनमें बाँधे रखिये। इससे आपकी सभी शक्तियाँ बढ़ती रहेंगी और अपव्यय न होगा। नियम टूटते ही संयम नष्ट हो जाता है और शक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। मन-इन्द्रियोंके गुलाम न रहकर इनको नियन्त्रणमें रखना ही अपने आपका स्वामी बनकर रहना है।

ईश्वरीय शक्तिकी जड़ आपके अंदर है

. संसारमें हाथी, घोड़े, भैंसे, बैल इत्यादि बड़े शक्तिशाली जीव हैं। इनकी शारीरिक शक्तिकी सहायतासे मनुष्य बड़े-बड़े लट्ठे एक स्थानसे दूसरे स्थानपर ले जाता है, पेड़ गिराता है, खेत जोतता है, कुँओंमेंसे जल निकालता है और भारी-भरकम शिलाखण्डोंको ढोता है। घोड़े तीव्र गतिसे एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जाते हैं और मनुष्यकी आज्ञाओंका पालन करते हैं; परंतु स्वयं हाथी, घोड़े, बैल इत्यादिको यह ज्ञान नहीं है कि शक्ति उनके अंदर छिपी है। वे उनकी पीठपर बैठे या डंडेसे हाँकते हुए आदमीमें शक्ति समझते हैं और चार पसलीके आदमीको आत्मसमर्पण कर देते हैं। यदि उन्हें किसी प्रकार यह ज्ञान हो जाय कि आदमीमें उनकी अपेक्षा बहुत कम शक्ति है, तो वे क्षणभरमें उसे धराशायी कर सकते हैं। घोड़े, हाथी कभी उसके वाहन नहीं रह सकते। सम्भव है वे मानवको ही अपना वाहन बना लें, पर उन्हें अपने जीवनभर अपनी गुप्त शक्तियोंका ज्ञान नहीं होता और वे छोटेसे मनुष्यके गुलाम बने रहते हैं।

मानव-समाजमें भी उपर्युक्त नियम लागू होता है। हमें दो प्रकारके व्यक्ति मिलते हैं। एक तो वे हैं, जिन्हें अभीतक अपनी गुप्त शक्तियोंका ज्ञान नहीं हुआ है, अन्धकारमें पड़े परतन्त्रता और बेबसीका जीवन व्यतीत कर रहे हैं। दूसरे वे हैं, जिन्हें अपनी शक्तियोंका ज्ञान हो चुका है। अधिकांश व्यक्ति प्रथम वर्गके हैं जिन्हें शक्तिका ज्ञान नहीं है। ये व्यक्ति सदा किस्मतको कोसा

करते हैं। कभी संसारकी प्रतिकूलताको दोष दिया करते हैं। उन्हें स्वयं अपने ऊपर विश्वास नहीं है, अतः वे अपना जीवन परवशता, मजबूरी और लाचारीमें काट रहे हैं।

विश्वास कीजिये, आपमें अनन्त शक्तियाँ भरी पड़ी हैं। ईश्वरने अपने पुत्र—मनुष्यको असीम शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक, दैवी, आत्मिक शक्तियोंसे परिपूर्ण कर पृथ्वीपर भेजा है। आपकी शक्तियाँ इन्द्रके वज्रोंसे अधिक शक्तिशालिनी हैं। आपका मस्तिष्क शक्तियोंका विशाल भण्डार है। आपके शरीरके अङ्ग-अङ्गमें बल-स्फूर्ति और तेज भरा हुआ है। आपकी आत्मा अद्भुत दैवी सामर्थ्योंकी पुञ्ज है। सूर्यके तेज तथा हृदयस्थ आत्मतेजमें कोई भेद नहीं है।

सच मानिये, आप ईश्वरके अंश हैं। ईश्वर सर्वोच्च शक्तियोंके केन्द्रबिन्दु हैं। वस्तुतः वे सभी शक्तियाँ बीजरूपसे आपमें विद्यमान हैं जो ईश्वरमें हैं। ईश्वर सत्-चित्-आनन्दस्वरूप हैं। अभी आप अपने आपको शरीर मानते हैं; पर वास्तवमें आप सत्-चित्-आनन्दस्वरूप आत्मा हैं। आप स्थूल नहीं, सूक्ष्म हैं। आप आत्मा हैं। आप अमर हैं। आप विश्वमें व्याप्त ईश्वरी शक्ति हैं। आप दिव्य हैं। मनमें यह भाव मत लाइये कि 'मैं नीच हूँ। अशक्त हूँ। डरपोक अथवा कायर हूँ।' शक्तिकी जड़ आपके भीतर है। ईश्वरका राज्य आपके भीतर है। आप व्यर्थ ही ईश्वरीय शक्तियोंको दुर्बल मानवके बनाये मठ-आश्रमोंमें अथवा गिरजाघरोंमें ढूँढ़ते फिरते हैं। ईश्वरीय दिव्यतम शक्तिका आदिस्रोत तो स्वयं आपके अन्तरिक्षमें प्रवाहित हो रहा है। उसीको खोज निकालिये और दिव्य जीवन व्यतीत कीजिये।

कभी न कहिये कि आप अमुक कार्य करनेके योग्य नहीं हैं अथवा आपमें उसके लिये पर्याप्त बल या साधन नहीं हैं। आपमें सब प्रकारके उच्चतम सामर्थ्य भरे पड़े हैं। आप अपने निश्चय, बल, संकल्पकी दृढ़ता, अटूट परिश्रमसे जो चाहें कर सकते हैं, आपकी सदैव विजय होनी है। यदि अपने इष्ट मार्गपर लगे रहें तो आप परिस्थितियोंको अवश्य बदल सकेंगे। पराजयका विचार मनमें रखना एक खतरा है। इसे सदाके लिये निकाल देना चाहिये। जैसा विचार मनमें आयेगा, वैसा ही कार्य प्रकट होगा। जैसा बीज होगा, वैसा ही वृक्ष उत्पन्न होगा। अतः कमजोरी, निर्बलता, पराजय, हीनत्वके विचार रखना एक खतरा है। कभी भी वह कटु फल उत्पन्न कर सकता है; क्योंकि विचार तो एक सूक्ष्म सक्रिय तत्त्व है। विचारोंके परमाणु मनःप्रदेशमें बिखरकर उसे अपने अनुकूल बना लेते हैं। राग, द्वेष, घृणा, स्वार्थ और ईर्ष्याके विचारोंका दूषित वातावरण मनमें अशान्ति उत्पन्न करता और संतुलनको छिन्न-भिन्न कर देता है, नाना प्रकारके उद्वेग और उलझनें उत्पन्न कर देता है। अशान्ति, भय, घबराहट, चिड़चिड़ापन, अस्थिरता सब गलत प्रकारके विचारोंके दुष्परिणाम हैं।

अतः अपनी शक्तिके प्रति मनमें अविश्वासकी दीन-हीन भावना मत आने दीजिये। अपने मानसिक वातावरणको भय, भ्रान्ति, शंका, संदेह और चिन्ताके मनोवेगोंसे मुक्त रखिये। ये निकृष्ट विचार मनुष्यकी शक्तिको पंगु करनेवाले हैं, अन्तःकरणकी श्रद्धाकी दुर्बलताके सूचक हैं। अपने ऊपर विश्वास करना ऐसा मन्त्र है जिससे बल बढ़ता है।

जैसा हम देखते, सुनते या सोचते हैं, वैसा ही हमारे अन्तर्जगत्का निर्माण होता है। हम जो-जो वस्तुएँ बाह्य संसारमें देखते हैं, हमारी अभिरुचिके अनुसार उनका प्रभाव हमारे अन्तः-करणपर पड़ता है। प्रत्येक अच्छी मालूम होनेवाली प्रतिक्रियासे हमारे मनमें एक मानसिक मार्ग बनता है। क्रमशः वैसा ही चिन्तन, विचार या कार्य करनेसे यह मानसिक मार्ग दृढ़ बनता जाता है। अन्तमें एक विचार ही आदत बनकर मनुष्यको अपना दास बना लेता है।

जो व्यक्ति अपनी शक्तियोंके प्रति असीम विश्वास बनाये रखने और उन्हें निरन्तर बढ़ानेका अभ्यास करता है, वह उन्नतिके पथपर चलता है। दूसरोंकी और अपने चरित्रकी अच्छाइयोंपर ध्यान लगाइये। सर्वत्र अच्छाइयाँ, शक्तियाँ, दैवी गुण देखनेसे मनुष्य स्वयं शक्तियों और गुणोंका केन्द्र बन जाता है।

अच्छाई देखनेकी आदत एक प्रकारका पारस है। जिसके पास अच्छाई देखनेकी आदत है, वह उसीकी शक्तिसे दिव्य गुणोंकी वृद्धि करता है। उस केन्द्रसे ऐसा विद्युत्-प्रकाश प्रसारित होता है, जिससे सर्वत्र सत्यता और दिव्यताका प्रकाश होता है। जिस स्थानपर नैतिक माधुर्य एकीभूत हो जाता है, वहीं सच्चा आत्मिक सौन्दर्य विद्यमान है। अतः यह मानकर चलिये कि आप असीम शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियोंके मालिक हैं।

शक्तियोंका निरन्तर उपयोग कीजिये

जो शक्तियाँ ईश्वरीय देनके रूपमें प्रयोग, उपकार या समाज-सेवा आदिके लिये आपको दी गयी हैं, उनका निरन्तर उपयोग कीजिये। प्रतिदिन उन्हें कार्यमें लेनेसे शक्तियोंका विकास होता

है, पर निश्चेष्ट छोड़ देनेसे वे क्षीण हो जाती हैं। अंग्रेजीमें एक कहावत है—'प्रतिदिन काममें अपनेवाली चाबी तेज चमकती है।' अर्थात् जो चाबी रोज काममें नहीं आती, वह जंग लगकर नष्ट हो जाती है। यही कहावत हमारी शक्तियोंके सम्बन्धमें भी है। हम जिस-जिस शक्तिसे काम लेते रहेंगे, वही पुष्ट रहेगी, शेष नष्ट हो जायगी। शक्तियाँ आपसे यह माँग करती हैं कि उनसे निरन्तर काम लिया जाय, कभी खाली न छोड़ा जाय। वे उस भूतकी तरह हैं जिसे कुछ-न-कुछ काम चाहिये, जो कभी भी आलस्यमें नहीं बैठ सकता।

उदाहरणके लिये अपने शरीरको ही ले लीजिये। यदि आपको खूब खिलाया-पिलाया जाय और जेलखानेमें बंद कर दिया जाय, जहाँ आप सारे दिन चारपाईपर पड़े रहें, तो पाचनक्रिया और रक्त-संचारमें खराबी आने लगेगी, शरीर दुबला हो जायगा, एक-एक क्षण काटना दूभर हो जायगा, प्रगाढ़ निद्राका आनन्द आपको न मिल सकेगा; भूख-प्यास, चेहरेका सौन्दर्य सब क्षीण हो जायगा। हमारा शरीर एक मशीनकी तरह है। जैसे व्यर्थ पड़े रहनेसे अच्छे-से-अच्छे इंजिनको जंग चाट जाता है और उसे चलाना कठिन हो जाता है, उसी प्रकार पहलवान-से-पहलवान व्यक्ति भी केवल खाये और पड़ा रहे, तो रोगी हो जायगा। आपने प्रायः उन साधुओंको देखा होगा, जो एक हाथ ऊँचा उठाये रहते हैं। बहुत समय व्यतीत होनेपर वह सूख जाता है। उसमें रुधिरका संचार बंद हो जाता है। उस हाथकी शक्तिका उपयोग न होनेसे उसकी शक्तियाँ मारी जाती हैं। अतः हमें चाहिये कि अपने शरीरसे पर्याप्त कार्य लें, किसी अवयवको आलस्यके जंगमें न फँसने दें। शारीरिक शक्तियोंका

उपयोग करनेसे शरीरका अङ्ग-अङ्ग शक्तिसे दमक उठेगा, हम बलवान् बन जायँगे, पुष्ट और बलिष्ठ हाथ-पाँवके स्वामी बनेंगे। व्यायाम क्या है? व्यायाम वह विधि है जिसके द्वारा शरीरके सभी अवयवोंसे काम लिया जाता है। फलतः शक्तियाँ बढ़ती हैं।

शरीरकी भाँति ही मस्तिष्क और बुद्धि भी निरन्तर उपयोग, नये-नये विषयोंके अध्ययन, स्वाध्याय, मनन, पठन-पाठन, भ्रमण, सद्ग्रन्थावलोकनसे बढ़ती है। प्रत्येक पुस्तक एक ऐसे मस्तिष्कका सत्सङ्ग है जिसके साथ रहकर हम नया ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। नये-नये व्यक्तियोंसे मिलिये; नये दृश्य, नयी-नयी घटनाएँ देखिये और उनमें सार-तत्त्व, अनुभवपूर्ण उपयोगी तत्त्वोंको ग्रहण कीजिये। इन अनुभवोंसे आपको जीवनयात्रामें लाभ होगा।

ग्रहण-शक्ति बढ़ाते चलिये

आपके अनुभव, संसारका इतिहास, समाजमें इर्द-गिर्द होनेवाली अनेक ऐसी घटनाएँ हैं, जिनसे आपका ज्ञान बढ़ सकता है। आपकी प्रत्येक गलती आपको गुप्तरूपसे कुछ शिक्षा, कुछ उपदेश देती है, आपको आगे बढ़ाती है। इन अनुभवों, ग्राह्य वस्तुओं एवं उपदेशोंमें आप अपनी ग्रहण-शक्तिकी योग्यताके अनुसार ही उन्हें ग्रहण कर सकते हैं। यदि आप अपनी ग्रहण-शक्तिको बढ़ावें; जो देखते, सुनते या अनुभव करते हैं, उसे ग्रहण करें, स्मृतिमें रक्खें, तो प्रगतिके पथपर आगे बढ़ सकते हैं। जो घटनाएँ या अनुभव आपको मिलें, उन्हें ठीक तरह समझें, शङ्काओंका समाधान करें, सार-सार ग्रहण करें और व्यर्थको भूलें, भविष्यमें गलती न करें तो पर्याप्त उन्नति कर सकते हैं।

यह विश्वास रखिये कि परिस्थिति-निर्माणकी योग्यता आपमें भरी हुई है। हर व्यक्ति स्वयं अपने पुरुषार्थसे अपने संसारका निर्माणकर्ता है। आप उच्चतम ईश्वरीय शक्तियोंकी सामर्थ्य लेकर चल रहे हैं। कोई दुष्ट आपका मार्ग अवरुद्ध नहीं कर सकता, बाधाएँ ठहर नहीं सकतीं; क्योंकि आपके शरीर, मन, कर्मसे परमेश्वरकी दिव्य शक्तियाँ प्रवाहित हो रही हैं। ईश्वर आपके द्वारा अपने शुभ कार्य कर रहा है। ईश्वर आपके भीतरसे चमक रहा है। ईश्वरत्वको अपने द्वारा प्रकट कीजिये, ईश्वरमें रहिये-सहिये। ईश्वर होकर सात्त्विक पदार्थ खाइये और ईश्वर होकर ही पवित्र पदार्थ पीजिये। ईश्वरमें श्वास लीजिये और सत्का साक्षात् कीजिये। शेष शक्तियाँ स्वयं आपके पीछे-पीछे आती रहेंगी।

यस्याखिलामीवहभिः सुमङ्गलै-
र्वाचो विमिश्रा गुणकर्मजन्मभिः।
प्राणन्ति शुम्भन्ति पुनन्ति वै जगत्
यास्तद्विरक्ताः शवशोभना मताः॥

(श्रीमद्भा० १०। ३८। १२)

जब समस्त पापोंके नाशक प्रभुके परम मङ्गलमय गुण, कर्म और जन्मकी लीलाओंसे युक्त होकर वाणी उनका गान करती है, तब उस गानसे संसारमें जीवनकी स्फूर्ति होने लगती है, शोभाका संचार हो जाता है, सारी अपवित्रताएँ धुलकर पवित्रताका साम्राज्य छा जाता है; परंतु जिस वाणीसे उनके गुण, लीला और जन्मकी कथाएँ नहीं गायी जातीं, वह मुर्देको ही शोभित करनेवाली है।

शक्ति, सामर्थ्य और सफलता

मनुष्य शक्ति, सामर्थ्य और सफलताका सिपाही है, अज्ञान एवं मोहवश होकर अपने-आपको दीन, हीन, शक्तिविहीन समझता है। अपनी दैवी शक्तियोंको विस्मृतकर कायरका जीवन व्यतीत करना कितनी बड़ी मूर्खता है। दीनावस्थामें जन्म लिया, अभाव और दुःखोंमें पलते-पनपते रहे और विषादमय जीवन व्यतीत करते हुए मृत्युको प्राप्त हो गये—ऐसा जीवन किस अर्थ? यह तो सृष्टिकर्ता आदिपिता परमात्माका अपमान है।

परमेश्वर चाहते हैं कि मनुष्य अपनी गुप्त शक्ति, अगाध सामर्थ्य और सफलताको पहचानें और सामर्थ्यवान् जीवन व्यतीत करें, प्रतिष्ठित रहें, निरन्तर समुन्नत रहें। हम सबके लिये परमेश्वरने

यश, ऐश्वर्य, मान, प्रतिष्ठाका बृहत् भण्डार इस विश्वके कोने-कोनेमें संचित कर रक्खा है । इन्हें हम योग्यता, ईमानदारी एवं परिश्रमसे प्राप्त करते हैं ।

हमारी शक्तियोंका गुप्त केन्द्र हमारा अन्तर्मन है । हमारा मन सागरमें तैरते हुए आइस बर्ग (बर्फका पर्वत) की तरह है । जिस प्रकार आइस बर्गका आठवाँ भाग ऊपर सतहपर और शेष जलमग्न रहता है, उसी प्रकार मनुष्यकी कुछ ही शक्तियोंका विकास हो पाता है । हमारे मनके सात भाग अविकसित, निश्चेष्ट और आलस्यमें ही पड़े रहते हैं । हमारे गुप्त मनमें मानसिक, बौद्धिक एवं आत्मिक शक्तियों एवं सामर्थ्योंका एक विशाल अंश विकासकी प्रतीक्षा और अवसर देखा करता है । हमारी गुप्त सामर्थ्य मनकी गुप्त कन्दराओंमें सुप्तावस्थामें निश्चेष्ट पड़ी जंग खाया करती है ।

शक्ति और सामर्थ्यका गुप्त केन्द्र आपका गुप्त मन ही है । इसमें आपकी नाना गुप्त शक्तियाँ, योग्यताएँ और प्रतिभाएँ संचित रहती हैं । दूसरे शब्दोंमें, आपकी चेतनताके गुप्त भागमें शक्तिका वह केन्द्र रहता है, जिसे अज्ञात चेतना (Sub-conscious and Un-conscious) कहते हैं । इस केन्द्रस्थलमें अनेक मनोभाव, विचार, कल्पनाएँ और अनुभूतियाँ एकत्रित रहती हैं । आपके संकल्प, मिथ्याविश्वास, भावनाएँ चुपचाप आपके जाग्रत् जीवनके कार्य-व्यापारको क्षण-क्षण प्रभावित किया करते हैं । इस केन्द्रके स्वास्थ्य, समुचित विकास और संतुलनपर आपकी सफलता निर्भर है । अज्ञात चेतनासे कार्य लेनेवाला आपका गुप्त मन जाग्रत् मनकी अपेक्षा अधिक सशक्त,

जागरूक और सचेत है । तुच्छ-से-तुच्छ, हल्की-से-हल्की, छोटी-छोटी अनुभूतियाँ इसमें एकत्रित रहती हैं । दिन-रातके चौबीसों घंटे अन्तश्चेतनाका गुप्त व्यापार (Action) चला करता है । अज्ञात चेतनाका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है ।

एक महात्माने अन्तश्चेतनाकी शक्ति और सामर्थ्यकी ओर संकेत करते हुए लिखा है, 'मेरे हृदयमें किसी अज्ञात देव-शक्तिका निवास है । वह मुझसे जैसा करवाती है, वैसा ही मैं करता हूँ ।'

आपके लिये श्रेयस्कर यही है कि आप अपने गुप्त मनकी असंख्य शक्तियोंपर विश्वासकर जीवनमें प्रविष्ट हों । गुप्त मनसे ही शक्ति-सामर्थ्यका स्रोत फूट निकलेगा, आपकी व्यक्तिगत शक्तियोंका विकास होगा—ऐसा मानकर चलें । गुप्त मनके विकासका श्रेष्ठतम मनोवैज्ञानिक नियम सूचना या सजेश्चन (Suggestion and Auto-Suggestion) है । जो गुण, जो मानसिक, शारीरिक या बौद्धिक भावनात्मक शक्तियाँ आपको इष्ट हों, उन्हें दृढ़तापूर्वक गुप्त मनमें दुहराइये, चेतनाके स्तरपर रखिये, उन्हींमें रमण कीजिये । सूचनानुगामिता अर्थात् दिये हुए सजेश्चनोंके अनुसार कार्य करना आपके गुप्त मनका गुण है । संकेतोंकी दृढ़तासे पुनरावृत्ति कर आप स्वस्थ, विजयी, सामर्थ्यपूर्ण अन्तर्मनका निर्माण कर सकते हैं । अच्छी आत्मप्रेरणाएँ जब दृढ़तासे चेतनाके स्तरपर लायी जाती हैं, तब उनसे नवीन सामर्थ्योंका निर्माण होता है ।

डा० गणपुलेका विचार है कि 'अन्तर्मनकी सूचनानुगामिताकी कोई सीमा नहीं है । इसी नींवपर मानसोपचारकी इमारत खड़ी

की जा सकती है। अन्तर्मन यदि सूचनानुगामी न होता तो मानसोपचार शायद ही सम्भव हो सकता।' जो बात रोगोंके लिये सत्य है, वही शक्ति-सामर्थ्य-वृद्धिके लिये और भी सत्य है। यदि हम गुप्त मनको शक्ति-सामर्थ्यकी सूचनाओं (Suggestions) में ओतप्रोत रक्खें और दृढ़तापूर्वक उनमें विश्वास करें तो आन्तरिक शक्तिके केन्द्रको जाग्रत् कर सकते हैं। हमारे यहाँ कीतन, मनन, चिन्तन एवं अखण्ड जाप संकेत-विधियाँ ही हैं। अखण्ड-कीर्तन, पठन, भजन, पूजन इत्यादिसे हमारे गुप्त मनकी शुभ-सात्त्विक शक्तियाँ जाग्रत् होती हैं। यदि हम अन्तर्मनको शक्ति-सामर्थ्यकी शुभ सूचनाएँ देना प्रारम्भ कर दें तो धीरे-धीरे वह उन्हें ग्रहण करने लगेगा और तदनुकूल उसका निर्माण हो जायगा। व्यक्तिमात्रको इसी महान् शक्तिकेन्द्रके शोधनद्वारा आन्तरिक सामर्थ्योंकी अभिवृद्धि करनी चाहिये।

विश्वास कीजिये, आपके भीतर ऐसी-ऐसी विशेषताएँ और गुप्त शक्तियाँ भरी पड़ी हैं कि उनके विकास एवं प्रदर्शनसे आप संसारको चमत्कृत कर सकते हैं। आपकी एक मौलिकता है, अपने व्यक्तित्वका अपना ही महत्त्व है। ये विशेषताएँ विशेषरूपसे आपको ही दी गयी हैं। अपनी रुचि, स्वभाव और चरित्रका अध्ययन कीजिये। अर्थात् अपनी विशेषता मालूम कीजिये—यही अग्रसर होनेकी आधार-शिला है। विश्वका प्रत्येक पुरुष, बालक, स्त्री, यहाँतक कि जानवरतक एक निजी विशेषता लेकर पृथ्वीतलपर आया है। परमेश्वरने अन्य शक्तियाँ तो सामान्यरूपमें ही प्रदान की हैं, किंतु

प्रत्येक व्यक्तिमें एक विशिष्टता (Strong point), एक महत्ता एक खास तत्त्व अन्य तत्त्वोंकी अपेक्षा तीव्रतर है। जब कोई मनुष्य अपनी इस विशेषताको जान जाता है और निरन्तर उसीके विकासमें अग्रसर होता है, तब उस विशेष दिशामें वह सर्वाधिक उत्कृष्टताका उपार्जन करता है। उच्चतर स्थान सदा रिक्त रहता है। योग्यतम व्यक्तिके लिये हमेशा गुंजाइश रहती है।

क्या आपने कभी अपनी विशेताएँ, अपनी प्रतिभा (Talents) को जाननेकी चेष्टा की है? क्या आपने आत्मनिरीक्षण किया है? प्रत्येक-प्रगतिशील व्यक्ति अपने-आपको तर्ककी कसौटीपर कसकर इस महान् सत्यका साक्षात्कार कर सकता है। आप व्यापक दृष्टिसे अपने व्यक्तित्व, गुणों और विशेषताओंका अध्ययन करें और अपने मुख्य गुणका विकास प्रारम्भ करें। आत्मनिरीक्षण वह साधन है, जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपने चरित्रको समझनेका प्रयत्न कर सकता है।

आत्मनिरीक्षणमें शान्त चित्त और स्थिर बुद्धि रखिये। इससे नीर-क्षीर-विवेकमें सहायता प्राप्त होती है। आवेश, उद्वेग और जल्दबाजीमें फँसे हुए व्यक्ति प्रायः शान्तचित्त हो अपने व्यक्तित्वका अध्ययन नहीं कर पाते। वे उद्विग्न रहकर नीर-क्षीरको पृथक् करनेवाले विवेकसे सहायता नहीं ले सकते। कुछ व्यक्ति विचारों या धर्म, मत इत्यादिकी संकीर्णता तथा पाण्डित्यके मिथ्या दम्भमें अपने आत्माको इतना जकड़ लेते हैं कि विवेकका सच्चा प्रकाश उनमें नहीं हो पाता। संकीर्णता, परदोषदर्शन, अहंकार, दम्भ उनके विवेकको पंगु कर देते हैं। ज्ञानका मुक्त प्रभाव अवरुद्ध

हो जाता है । उनकी वाणी तेजहीन और निस्सार हो जाती है ।

मानसिक आलस्य (अर्थात् हानिकर मिथ्या विश्वासोंमें आबद्ध रहना, दकियानूसी विचार रखना) की घृणित गुदड़ी उतार फेंको और सत्यके व्यापक रूपको अनुभव करनेके लिये विवेकद्वारा रूढ़ियोंसे ऊपर उठो । स्वयं अपनी ओरसे मौलिक विचारधारामें संलग्न हो जाओ । जो व्यक्ति अपनी ओरसे प्रत्येक विषय एवं परिस्थितिपर विचार कर सकता है, वह समस्याका हल अवश्य निकाल लेता है ।

आत्मनिरीक्षणसे मनका विकार दूर होता है और सत्यका प्रकाश प्रकट होता है । अपनी त्रुटियाँ ज्ञात होती हैं तथा सही मार्गपर आरूढ़ होनेके लिये आत्मिक बल प्राप्त होता है ।

शान्तचित्त हो नेत्र मूँदकर किसी शान्त स्थानपर बैठ जाओ, शरीर और मनको शिथिल कर लो और सब सांसारिक विचारोंको हटाकर केवल 'आत्मनिरीक्षण' की भावनापर चित्तवृत्तियोंको एकाग्र करो । एक-एक कर अपने सम्पूर्ण दिन, सप्ताह, मास, वर्ष, जीवनके कार्योंकी आलोचना करो । जो कार्य तुम्हारे आदर्शोंसे गिरें, उनके प्रति ग्लानि तथा जो कसौटीपर खरे उतरें, उनके प्रति संतोष प्रकट करो । इस अन्तर्दृष्टिसे मनमें हल्के कार्य स्वतः दूर होने लगेंगे और मन स्थायी महत्त्वके कार्योंमें ही रमण करेगा ।

उज्ज्वल भविष्यके लिये मनमें नयी-नयी कल्पनाओंके सुमधुर स्वप्न भरे-पूरे रखिये, 'मैं अपना जीवन सफल, सुखद, प्रेममय रक्खूँगा । मैं संसारमें आशा, उत्साह, बल, सुख-शान्तिकी अभिवृद्धि

करूँगा । चित्रकारी, संगीत, काव्य, विद्याद्वारा संसारमें आनन्द उत्पन्न करूँगा । स्वयं मेरा तथा मेरे सम्पर्कमें आनेवाले अन्य व्यक्तियोंका जीवन सुख-शान्तिमय होगा ।' आदि विचार एवं प्रेरक कल्पनाएँ मनमें जाग्रत् रखनेसे हमारा गुप्त मन इन्हीं मानसिक दशाओंमें चलता है । वस्तुतः मानसिक समृद्धिके लिये ऐसी उत्तम प्रेरणाएँ अति आवश्यक हैं ।

ध्यानपूर्वक आत्मध्वनिको सुनते और तदनुसार कार्य करते चलिये । आत्मध्वनि पुष्ट, स्वस्थ और कल्याणकारी मार्गद्रष्टा है । उसका अनुसरण कर कार्य करनेसे अकल्याणकारी विचारों और दूषित कल्पनाओंसे मुक्ति प्राप्त होती है । सौ चक्षुओंवाले (Argus) की भाँति यह आवश्यक है कि आप मनकी प्रत्येक क्रियाका सूक्ष्म निरीक्षण करते और विरोधी घृणित विचारोंका तिरस्कार करते रहें । चित्तके प्रलोभनके साथ न प्रवाहित हो जायँ वरं उससे पृथक् होकर मनके द्रष्टा बनें । क्रमशः मनका व्यापार देखते-देखते और उसपर नियन्त्रण करते-करते आप तुरीयावस्थामें प्रविष्ट हो जायँगे । यही अभ्यास राजयोगकी सर्वोच्च समाधि है । जो साधक चित्तका निरीक्षण और नियन्त्रण कर मनोव्यापारको सही दिशामें रखनेका अभ्यास कर लेता है, उसने मानो साधनाकी पहली मंजिल पार कर ली है ।

जीवनमें किसी निश्चित उद्देश्यकी रचना कीजिये । यह पर्याप्त सोच-विचारका विषय है । अधूरे सोच-विचारका दुष्परिणाम उद्देश्यको पुनः-पुनः छोड़ना होता है । फिर साधक किसी भी दिशामें आगे

नहीं बढ़ पाता । अतः मित्रोंसे, विशेषज्ञों तथा स्वयं अपने अन्तर्मनसे विचार-विमर्श कर अपने जीवनोद्देश्यका निर्णय कीजिये और फिर पूर्ण श्रद्धासे उसकी प्राप्तिमें संलग्न हो जाइये ।

श्रद्धा या आत्मविश्वास आपकी महत्त्वपूर्ण शक्ति है । जिन-जिन तत्त्वोंमें आपकी श्रद्धा है, वे आपको अवश्यमेव प्राप्त होनेवाले हैं । श्रद्धा आपकी सभी शक्तियोंके मूलमें रहनेवाली सार-स्वरूप है । प्रत्येक कार्य इसीके द्वारा सम्पन्न होता है । विश्वके सब सामर्थ्यवान् व्यक्ति इसी दिव्य शक्तिके बलपर जीवन-युद्धमें विजयी हुए हैं । यह आपके व्यक्तित्वमें पर्याप्त मात्रामें मौजूद है । इसे जाग्रत् भर करना है ।

'मैं निर्विघ्न आगे बढ़ सकता हूँ । शक्ति और सामर्थ्य मुझमें प्रचुरतासे विद्यमान हैं । मैं साधारण कार्योंमें अपनी मौलिकता प्रकट करता हूँ और पूरे जोरसे कार्य करता हूँ । सफलता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है ।'—जब मनुष्य इन संकेतोंमें पूर्ण विश्वाससे अग्रसर होता है, तब आत्मश्रद्धाकी दिव्य शक्ति उसमें धीरे-धीरे स्वतः प्रकट होती है ।

विश्वास कीजिये कि आप शक्तिमान् हैं । विश्वास कीजिये कि अतुलित सामर्थ्योंका भंडार आपमें प्रचुरतासे भरा पड़ा है । विश्वास कीजिये कि आप जिस क्षेत्रमें चलेंगे, सफलता लेकर रहेंगे । विश्वास कीजिये कि आप अपनी सम्पूर्ण शक्ति एक ध्येयकी प्राप्तिमें एकाग्र कर देंगे । सच्चे धैर्य और लगनसे उसपर डटे रहेंगे । सत्य संकल्पसे अग्रसर होते रहेंगे । सत्यके प्रकाशमय रूपको देखेंगे ।

मनःशक्तिको अपनी शक्तियोंपर केन्द्रित रखनेसे आत्मश्रद्धाकी वृद्धि होती है ।

जिस क्षण मनुष्यको अपनी शक्तियों, गुप्त सामर्थ्यों, गुप्त ज्ञानका विश्वास हो गया, उसी क्षणसे वह जीवन-जागृतिका एक नया पृष्ठ खोलता है । इस जागरण (Awakening) को सब धर्मोंसे उच्च समझिये । इसमें गहरी सत्यता निहित है । इस आत्मश्रद्धाके दिव्य बलको अनुभव कीजिये और अपने लक्ष्य, क्षेत्र या कार्यमें लगाइये । आपको नवीनता और सामर्थ्यका अनुभव होगा । स्मरण रखिये, श्रद्धा आपके आत्माका एक प्रमुख अंश है । मनुष्यकी सब सिद्धियाँ श्रद्धाके अनुपातमें ही प्राप्त होती हैं ।

अनुभूत नियम है—'प्रत्येकको उसकी आत्मश्रद्धा उसके आत्मविश्वासके अनुसार ही प्राप्त होती है ।'—यही महानियम मनोवाञ्छित वस्तु (सफलता) का निर्णय करता है । जितनी श्रद्धा, उतनी बल-बुद्धि, शक्ति और सामर्थ्य प्राप्त होता है ।

हम निरन्तर इस असीम शक्तिमय जगत्में आत्मश्रद्धाके अनुसार क्रीड़ा कर रहे हैं । हमारा जीवन-प्राण और सफलता हमें अपने विश्वासों और प्रयत्नोंके अनुसार प्राप्त हो रहा है । विघ्नोंके कारण जो आत्मश्रद्धा लुप्त हो चुकी है, उसे प्राप्त करनेमें सतत प्रयत्नशील रहिये । संशय, भय, कायरताका शिरश्छेद कीजिये । दृढ़ निश्चय, तीव्र इच्छा और प्रबल प्रयत्नद्वारा अपनी गुप्त सामर्थ्यको प्रकट कीजिये । शक्ति, सामर्थ्य और सफलता आपकी होकर रहेंगी ।

करूँगा। चित्रकारी, संगीत, काव्य, विद्याद्वारा संसारमें आनन्द उत्पन्न करूँगा। स्वयं मेरा तथा मेरे सम्पर्कमें आनेवाले अन्य व्यक्तियोंका जीवन सुख-शान्तिमय होगा।' आदि विचार एवं प्रेरक कल्पनाएँ मनमें जाग्रत् रखनेसे हमारा गुप्त मन इन्हीं मानसिक दशाओंमें चलता है। वस्तुतः मानसिक समृद्धिके लिये ऐसी उत्तम प्रेरणाएँ अति आवश्यक हैं।

ध्यानपूर्वक आत्मध्वनिको सुनते और तदनुसार कार्य करते चलिये। आत्मध्वनि पुष्ट, स्वस्थ और कल्याणकारी मार्गद्रष्टा है। उसका अनुसरण कर कार्य करनेसे अकल्याणकारी विचारों और दूषित कल्पनाओंसे मुक्ति प्राप्त होती है। सौ चक्षुओंवाले (Argus) की भाँति यह आवश्यक है कि आप मनकी प्रत्येक क्रियाका सूक्ष्म निरीक्षण करते और विरोधी घृणित विचारोंका तिरस्कार करते रहें। चित्तके प्रलोभनके साथ न प्रवाहित हो जायँ वरं उससे पृथक् होकर मनके द्रष्टा बनें। क्रमशः मनका व्यापार देखते-देखते और उसपर नियन्त्रण करते-करते आप तुरीयावस्थामें प्रविष्ट हो जायँगे। यही अभ्यास राजयोगकी सर्वोच्च समाधि है। जो साधक चित्तका निरीक्षण और नियन्त्रण कर मनोव्यापारको सही दिशामें रखनेका अभ्यास कर लेता है, उसने मानो साधनाकी पहली मंजिल पार कर ली है।

जीवनमें किसी निश्चित उद्देश्यकी रचना कीजिये। यह पर्याप्त सोच-विचारका विषय है। अधूरे सोच-विचारका दुष्परिणाम उद्देश्यको पुनः-पुनः छोड़ना होता है। फिर साधक किसी भी दिशामें आगे

नहीं बढ़ पाता । अतः मित्रोंसे, विशेषज्ञों तथा स्वयं अपने अन्तर्मनसे विचार-विमर्श कर अपने जीवनोद्देश्यका निर्णय कीजिये और फिर पूर्ण श्रद्धासे उसकी प्राप्तिमें संलग्न हो जाइये ।

श्रद्धा या आत्मविश्वास आपकी महत्त्वपूर्ण शक्ति है । जिन-जिन तत्त्वोंमें आपकी श्रद्धा है, वे आपको अवश्यमेव प्राप्त होनेवाले हैं । श्रद्धा आपकी सभी शक्तियोंके मूलमें रहनेवाली सार-स्वरूप है । प्रत्येक कार्य इसीके द्वारा सम्पन्न होता है । विश्वके सब सामर्थ्यवान् व्यक्ति इसी दिव्य शक्तिके बलपर जीवन-युद्धमें विजयी हुए हैं । यह आपके व्यक्तित्वमें पर्याप्त मात्रामें मौजूद है । इसे जाग्रत् भर करना है ।

'मैं निर्विघ्न आगे बढ़ सकता हूँ । शक्ति और सामर्थ्य मुझमें प्रचुरतासे विद्यमान हैं । मैं साधारण कार्योंमें अपनी मौलिकता प्रकट करता हूँ और पूरे जोरसे कार्य करता हूँ । सफलता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है ।'—जब मनुष्य इन संकेतोंमें पूर्ण विश्वाससे अग्रसर होता है, तब आत्मश्रद्धाकी दिव्य शक्ति उसमें धीरे-धीरे स्वतः प्रकट होती है ।

विश्वास कीजिये कि आप शक्तिमान् हैं । विश्वास कीजिये कि अतुलित सामर्थ्योंका भंडार आपमें प्रचुरतासे भरा पड़ा है । विश्वास कीजिये कि आप जिस क्षेत्रमें चलेंगे, सफलता लेकर रहेंगे । विश्वास कीजिये कि आप अपनी सम्पूर्ण शक्ति एक ध्येयकी प्राप्तिमें एकाग्र कर देंगे । सच्चे धैर्य और लगनसे उसपर डटे रहेंगे । सत्य संकल्पसे अग्रसर होते रहेंगे । सत्यके प्रकाशमय रूपको देखेंगे ।

मन:शक्तिको अपनी शक्तियोंपर केन्द्रित रखनेसे आत्मश्रद्धाकी वृद्धि होती है ।

जिस क्षण मनुष्यको अपनी शक्तियों, गुप्त सामर्थ्यों, गुप्त ज्ञानका विश्वास हो गया, उसी क्षणसे वह जीवन-जागृतिका एक नया पृष्ठ खोलता है । इस जागरण (Awakening) को सब धर्मोंसे उच्च समझिये । इसमें गहरी सत्यता निहित है । इस आत्मश्रद्धाके दिव्य बलको अनुभव कीजिये और अपने लक्ष्य, क्षेत्र या कार्यमें लगाइये । आपको नवीनता और सामर्थ्यका अनुभव होगा । स्मरण रखिये, श्रद्धा आपके आत्माका एक प्रमुख अंश है । मनुष्यकी सब सिद्धियाँ श्रद्धाके अनुपातमें ही प्राप्त होती हैं ।

अनुभूत नियम है—'प्रत्येकको उसकी आत्मश्रद्धा उसके आत्मविश्वासके अनुसार ही प्राप्त होती है ।'—यही महानियम मनोवाञ्छित वस्तु (सफलता) का निर्णय करता है । जितनी श्रद्धा, उतनी बल-बुद्धि, शक्ति और सामर्थ्य प्राप्त होता है ।

हम निरन्तर इस असीम शक्तिमय जगत्में आत्मश्रद्धाके अनुसार क्रीड़ा कर रहे हैं । हमारा जीवन-प्राण और सफलता हमें अपने विश्वासों और प्रयत्नोंके अनुसार प्राप्त हो रहा है । विघ्नोंके कारण जो आत्मश्रद्धा लुप्त हो चुकी है, उसे प्राप्त करनेमें सतत प्रयत्नशील रहिये । संशय, भय, कायरताका शिरश्छेद कीजिये । दृढ़ निश्चय, तीव्र इच्छा और प्रबल प्रयत्नद्वारा अपनी गुप्त सामर्थ्यको प्रकट कीजिये । शक्ति, सामर्थ्य और सफलता आपकी होकर रहेंगी ।